
एक
डाली
डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली

एक डाली रजनी गंधा की



डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली

साहित्य केन्द्र प्रकाशन
ई ५/२०, कृष्णनगर, दिल्ली-११००५१

मूल्य : बारह रुपये

वर्तमान संस्करण : १९७४

प्रकाशक : ओ३मप्रकाश शर्मा
साहित्य केन्द्र प्रकाशन
ई ५/२०, कृष्णनगर, दिल्ली-५१

मुद्रक : के० डी० कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा
कुकरेजा प्रेस, नवीन शाहदरा में मुद्रित ।

१

'मीना !'

'गुड ईवनिंग मीना !'

'हल्लो··· !'

'ओह, गुड लक, मिस मीना !'

'जन्म-दिन मुबारक हो !'

'लॉट ऑफ थैंक्स एण्ड चीयर्स फॉर दिस ग्राण्ड पार्टी !'

'हल्लो मिस···

'विश यू मैनी मैनी सच हैप्पी बर्थ-डेज !'——

'आइये···आइये मिस्टर भारद्वाज, आइ यम वैरी ग्लैड !'

'गुड ईवनिंग मिसेज लाल, कम इन !'

'हल्लो···'

कुछ ऐसा ही शोर-गुल था राय साहब की कोठी पर। आज मिस मीना का जन्म-दिन था, जिसके उपलक्ष्य में उसके पिता अवध बिहारी सिंह ने विशाल पार्टी का आयोजन किया था। अवध बिहारी सिंह दिल्ली के मशहूर वकील थे। कायस्थ होने पर भी वे अपने नाम के आगे 'सिंह' लगाना पसंद करते थे। अधेड़ अवस्था और सांवले रंग के होने पर भी उनका चेहरा भरा हुआ और रुआबदार था। काले और सफेद बालों के मिश्रण ने उनके चेहरे पर परिपक्वता और गंभीरता की छाप लगा दी थी। इस समय वे विलायती सर्ज का शानदार सूट पहने हुए अतिथियों की आवभगत में लगे हुए थे।

मीना इन्हीं अवघ बिहारी सिंह की मंझली लड़की थी। आज उसकी सोलहवीं वर्षगांठ थी। अपने पिता से वह ठीक विपरीत थी। वकील साहब ठिगने और मोटे थे तो मीना पतली-छरहरी और बरफ के सदृश निर्मल और स्वच्छ वर्ण वाली। यौवनागम से यद्यपि उसके अंग भर गये थे, फिर भी उसके चेहरे पर वही शैशव का भोलापन विद्यमान था। चांदी-सा उज्ज्वल माथा, रक्तिम अधर, चपल ग्रीवा और प्यासी मदभरी आँखें सबको अपनी ओर आकृष्ट करने को पर्याप्त थीं। चम्पा की कली के समान कमनीय अंगुलियाँ और एड़ी तक लटकती घुँघराली लटें। पतली भवें, नुकीली नासिका और छोटी-सी ठुड्डी। उन्नत वक्षःस्थल और कृश कटि। कुछ भारी जांघें और छोटे-छोटे पैर। सारे शरीर में एक स्वाभाविक-सी कोमलता विद्यमान थी। बात-बात में उसका चेहरा गुलाबी हो उठता था। ऐसी लग रही थी मानो गुलाब के फूलों का ढेर हो, जिसे छूते ही संभवत कुम्हला जाय, मैला हो जाय। प्यार का एक ऐसा झरना, जिसकी हर अदा से, शरीर के प्रत्येक लोच से मद-सा झर रहा था; और प्रत्येक उसकी ओर देखता, देखे बिना रह भी कैसे सकता था! प्रत्येक अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार रस पी रहा था, पर सभी अतृप्त थे, सभी उसे प्रत्यक्षतः और कनखियों से देख रहे थे।

जनवरी के अन्त की गुलाबी सर्दी होने पर भी मीना ने सुनहली लैस की लेवेण्डर रंग की साड़ी और साड़ी के नीचे हल्के-नीले रंग का ऊनी स्वेटर पहन रखा था; पर फिर भी वक्षःस्थल का उभार उस ऊनी आवृत्त को छिन्न-भिन्न कर बाहर झाँकने को सतत चेष्टारत-सा था। कानों में हीरे के टॉप्स और गले में पतली-सी सोने की चेन उसके रूप को आभा-सी प्रदान कर रही थी। साड़ी का पल्ला बाएँ कंधे पर अव्यवस्थित-सा पड़ा था, जो बार-बार नीचे ढलक जाता था। सिर खुला हुआ और सिर पर लम्बे केश सुन्दरता से संवारे हुए थे। पीछे की ओर वेणी लटक रही थी जिसमें पुष्पों का गुच्छा गूंथा हुआ था। नाक में कोई भूषण नहीं था, हाथों में एक-एक पतली चूड़ी पड़ी हुई थी। पैरों में न झांझर थे और न बिछिया। हां, रेशमी मोजे अवश्य थे और मोजों पर थे काले सुन्दर जूते।

उस समय सन्ध्या के प्रकाश में उसका स्वाभाविक रूप और शृंगार सभी को मात कर रहा था।

'एट होम' का समय था, सन्ध्या के छह बजे। और मेहमानों का स्वागत कर रहे थे स्वयं अवध बिहारी सिंह और उनकी धर्मपत्नी रेखा। मेहमानों का आना शुरू हो गया था। अवध बिहारी सिंह परिपक्व अवस्था के होने पर भी स्वभाव के रसिक थे। दिल्ली के प्रसिद्ध वकीलों में उनकी गणना होती थी और हाईकोर्ट में उनकी धाक थी। उन्होंने जो भी मुकदमा लड़ा, उसमें जीते ही, इसीलिए वे आसपास के परिचित क्षेत्र में 'लक्की एडवोकेट' माने जाते थे। उनकी दलीलें और युक्तियाँ इतनी पैनी और सटीक होती थीं कि सामने वाला वकील दूसरी या तीसरी पेशी में ही घबरा जाता था। यही कारण था कि लक्ष्मी की उनपर असीम कृपा थी, और घर में कंचन बरसता रहता था।

स्वभाव से रसिक और खाऊ-खर्चू आदमी होने की वजह से उनका परिचित क्षेत्र भी विशाल था जिसमें सब तरह के व्यक्ति थे। डाक्टर, इंजीनियर, बैरिस्टर, जज, एडवोकेट, मिनिस्टर आदि प्रत्येक पद और तबके के आदमियों से उनका सम्पर्क था। यही कारण था कि आज के इस 'एट-होम' में नहीं-नहीं करते हुए भी काफी तादाद में लोग एकत्र हो गये थे।

आज अवध बिहारी सिंह की पोशाक ही बदली हुई थी। विलायती सर्ज का शानदार सूट और गले में चुस्त टाई, पैरों में चमचमाता ब्लेक लेदर का नफीस जूता। रुआबदार चेहरा, गंभीर स्वर और बड़ी-बड़ी उभरी हुई आंखें उनके सफल व्यक्तित्व की परिचायक थीं। हँस-हँसकर वे मेहमानों का स्वागत कर रहे थे और किसीको 'हल्लो', किसी से हाथ मिलाकर और किसी के नमस्कार के प्रत्युत्तर में गर्दन हिलाकर यथाशक्ति सभी की अभ्यर्थना कर रहे थे और उनके इस काम में हाथ बँटा रही थीं उनकी धर्मपत्नी रेखा।

रेखा वकील साहब की दूसरी पत्नी थी। पहली पत्नी आज से छह साल पहले टाइफाइड से मर गई थी। वकील साहब ने बहुत प्रयत्न किया,

पैसे को पानी की तरह बहाया और ऊँचे से उँचा उसका इलाज कराया, पर हालत बिगड़ती ही चली गई। और एक दिन—आज से छह साल पहले—अपनी एकमात्र बेटी मीना को बिलखती छोड़ स्वर्ग सिधार गई।

वकील साहब साल-डेढ़ साल तक अकेले रहे। वे स्वतंत्र विचारों के और पाश्चात्य रंग-ढंग में पले और बड़े हुए थे। जितने वे स्वयं अपने विचारों में स्वतंत्र थे, वैसे ही अपनी संतान को भी देखना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने मीना की शिक्षा प्रारंभ से ही 'कान्वेंट' से शुरू कराई। वे स्वच्छन्द जीवन और स्वतंत्र विचारों के हामी थे।

पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने निश्चय किया था कि अब वे दूसरी शादी नहीं करेंगे। वे स्वयं जिस किसी तरह से तकलीफ भुगत लेंगे, परन्तु मीना को किंचित् भी कष्ट नहीं होने देंगे और अपने लिये नहीं, मीना का ध्यान करके ही उन्होंने दूसरी शादी न करने का निश्चय किया था। पर उनके जीवन में पत्नी की मृत्यु से जो रिक्तता आई, वह घनीभूत होती गई और एकान्त उन्हें खलने लगा। फलस्वरूप शराब उनकी सहचरी बन गई। यद्यपि वे पहले भी पीते थे और मित्रों के साथ पार्टियों में जी भरकर पीते थे, परन्तु फिर भी वे संयम में रहते थे। सूर्योदय के पश्चात् सार्वजनि[illegible]न में जाते समय उनके चेहरे पर रात्रि-विलास का कोई चिह्न नहीं रहता था।

पत्नी की मृत्यु के बाद उनके जीवन में शिथिलता आती गई और शराब अधिकाधिक उनके मुँह लगती गई। मित्रों और संबंधियों ने इसे भांपा, और जबरदस्ती हाँ-ना करते उनसे दूसरी शादी करने की हामी भरवा ही ली। मीना भी इतनी बड़ी हवेली में अकेली भयभीत-सी रहती थी और वह भी चाहती थी कि पिताजी दूसरी शादी कर लें तो अच्छा ही है। मीना ने भी पिताजी के सामने हठ किया और इस हठ के आगे झुक कर पहली पत्नी की मृत्यु के दो वर्ष बाद वकील साहब ने रेखा से विधिवत् विवाह कर लिया।

इन तीन-चार वर्षों में रेखा वकील साहब के जीवन से अभ्यस्त हो गई थी। यद्यपि दोनों की आयु में अत्यधिक अन्तर था, फिर भी रेखा

चेहरे पर ऐसा कोई भी भाव आने नहीं देती थी जिससे उसकी मन:स्थिति पति के सामने स्पष्ट हो जाय। शराब का जो दौर वकील साहब के जीवन में बढ़ गया था, वह किसी भी प्रकार कम नहीं हुआ था और रात को जब सोते समय या आलिंगन लेते समय उनके मुख से शराब का जो भभका निकलता, उससे रेखा को मतली-सी आने लगती। फिर भी वह मन मसोस-कर चुप रहती, और जब कुछ ही क्षणों के बाद वकील साहब की उत्तेजना शान्त हो जाती तो वे हाँफने लगते और पीठ फेरकर सो जाते। रेखा चुपचाप पड़ी रहती। उसे अपना गत जीवन और स्वयं के निर्मित, इन्द्र-धनुषी खयाल आते और उन स्वप्नों में विचरती-विचरती जब वह यथार्थ की ठोस भूमि पर आती तो उसके गले से रुलाई फूट पड़ती; पर वह दुःख के उस वेग को मन ही मन पी लेती।

आज मीना के 'बर्थ-डे' पर वह भी आने वाले मेहमानों के स्वागत में पति का हाथ बँटा रही थी। फूलदार गुलाबी साड़ी आज उसने पहन रखी थी और साड़ी के अन्दर नीले पारदर्शी कपड़े से बनी चोली उसके वक्ष:स्थल के उभार को स्पष्ट अंकित कर रही थी। भरा हुआ शरीर, नाक-नक्श और आजानुचुम्बित सघन केश राशि से बने कलात्मक जूड़े [illegible] हीरे का नग दिप्-दिप् कर रहा था। तराशा हुआ सुन्दर चेहरा, पतली भवें, लम्बे नोकदार नयन और नुकीली नासिका, जिसमें पहना हुआ छोटा-सा हीरक-खण्ड चेहरे को कांतिमान बनाये रखने में समर्थ था। पतले-पतले, प्यासे, दान देने को उतावले से होंठ, छोटे कान और छोटी-सी चिबुक। उन्नत वक्ष:स्थल पर कठोर घुमावदार नितम्ब व्यक्तित्व पर प्रामाणिक मुद्रा लगा रहे थे। कृश कटि, लम्बी भुजाएँ और पतली-पतली कमनीय अँगुलियाँ, जिनमें एक-दो स्वर्ण की अँगूठियाँ पहनी हुई थीं। छरहरा बदन और उछलता यौवन, अनार के दानों से छोटे-छोटे दाँत और चाँदनी-सा शुभ्र मधुर हास्य। साँझ की इस नशीली हवा में रेखा का व्यक्तित्व मादकता-सी ही बिखेर रहा था। लोग मधुरता से रेखा को देखते, और ईर्ष्या से वकील साहब पर नजर डाल मीना को 'चीयर्स' कहते हुए अपना-अपना स्थान ग्रहण कर रहे थे। सभी प्रसन्न थे, सभी चहक रहे थे।

मेहमानों में सभी समुदायों के व्यक्ति थे। अधिकतर लोग कोट-पेंट अथवा सूट में थे और स्त्रियाँ विविध मैच करती साड़ियों में। पर इस गुलाबी सर्दी के मौसम में भी कुछ मेहमानों ने चिकन के काम वाला कुर्ता पहन रखा था और नीचे सफेद पायजामा। कोई शेरवानी में, कोई चूड़ीदार पायजामे में तो कुछ सेठ परम्परागत राजस्थानी पोशाक, अंगरखा और पगड़ी पहनकर भी आ गये थे। सिर अधिकतर लोगों के नंगे थे, पर कोई फैल्ट केप लगाये, तो कोई लखनऊ की दुपलिया टोपी, कोई टोप तो कोई-कोई मेहमान जोधपुरी साफे की धज में भी दिखाई दे देते थे। स्त्रियों में भी अधिकतर की पोशाक साड़ियाँ ही थीं, पर 'स्कर्ट' और 'गाउन' भी कई स्त्रियों के शरीरों पर फब रहे थे। मीना की अधिकतर सहेलियाँ पाश्चात्य वेशभूषा में ही दिखाई देती थीं। अधिकतर सहेलियाँ चोटी गूँथे दिखाई देती थीं, पर 'बॉब्ड हेयर', ऊँची एड़ी के सेंडिल और चुस्त पोशाक वाली सहेलियों की भी कमी नहीं थी। सभी अपने-आप में मस्त थीं या गुनगुना रही थीं और मीना यथासंभव सभी सहेलियों की आवभगत में लगी हुई थी।

कनिंग रोड पर स्थित अवध बिहारी सिंह की इस विशाल कोठी से लगा उन[illegible] स्वयं का बड़ा भारी उद्यान था। वकील साहब उद्यान के शौकीन थ[illegible]र उन्होंने काफी पैसा खर्च कर तथा परिश्रमपूर्वक इस उद्यान को [illegible]जाया था। बीचोबीच संगमरमर का एक फव्वारा था और चारों तरफ छोटी-छोटी छतरियाँ। फव्वारे के पानी में रंग-बिरंगी तैरती मछलियाँ प्रत्येक का मन मोह लेती थीं। विदेशों से दुर्लभ गुलाब की किस्में मंगा-मंगाकर उद्यान में रखी थीं और प्रत्येक प्रकार, प्रत्येक जाति और वर्ण के पुष्प उस उद्यान की शोभा बढ़ा रहे थे। इस समय वकील साहब के उद्यान की शोभा देखते ही बनती थी। चारों ओर छोटी-छोटी हरी दूब मंद-मंद मुस्करा रही थी और बीच-बीच में खिले पुष्प ऐसे लग रहे थे मानो वकील साहब के उद्यान की शोभा बढ़ाने के लिए प्रकृति ने स्वयं धानी रंग की साड़ी पहन रखी हो; और ये पुष्प उस साड़ी में छपे बेल-बूटों से प्रतीत हो रहे थे। दो दिन पहले ही वकील साहब ने दूब कटवा दी थी और उस पर मोटा बेलन फिरवा दिया था। दूब

कट जाने से जो पीली-पीली झाँई-सी दिखाई पड़ने लगती है, इन दो दिनों के पानी देने से वह पीलापन लुप्त हो गया था और मखमली दूब आँखों में गुदगुदी-सी पैदा कर रही थी। फव्वारे से एक ओर हटकर एक कदम्ब का पेड़ था जिस पर सुनहरा झूला पड़ा था। और उसके दोनों ओर मौलश्री के पेड़ उस उद्यान की शोभा बढ़ाने में पर्याप्त थे। मुख्य द्वार के दोनों ओर गहबरे 'रात की रानी' के ऊँचे पौधे लगे हुए थे जिनकी नशीली मदमस्त महक आने वाले अतिथियों के दिलों में एक अजीब-सी हलचल मचा रही थी। जुही के छोटे-छोटे किलकते पुष्प, रंग-बिरंगे पुष्पों की गुल-मेंहदी, पीत पराग से पूर्ण सूरजमुखी, केक्टस, हेम्फन, न्यूले, वेवनस, गार्डे आदि देशी-विदेशी पौधे उस उद्यान की शोभा अगणित रूप से बढ़ाने में समर्थ थे।

उद्यान के बीचों-बीच एक लम्बी मेज लगी हुई थी जिस पर सफेद झक् मेजपोश बिछा हुआ था। टेबल पर वे सब उपहार पड़े थे जो आने वाले मेहमान मीना को देने के लिए लाये थे। टेबल के दोनों ओर दो छोटी-छोटी टेबलें सजी थीं जिनपर रक्तिम कपड़ा बिछा था और दोनों मेजें गुलदस्तों से पटी पड़ी थीं।

उद्यान में चारों ओर बिजली का फिटिंग था। इस सम[illegible] धीरे-धीरे साँझ घुलने लगी थी और रात्रि का नशीला अंधकार पृथ्वी को समेटने के लिए आतुर-सा रेंक रहा था। चारों ओर की ट्यूब लाइटों से निकला दूधिया प्रकाश साँझ को और गहबरा रहा था। उद्यान का पत्ता-पत्ता मुस्करा रहा था और उस मुस्कराहट के बीच बैठे मेहमान परस्पर चुहल, हँसी-विनोद और क्रीड़ा से मुस्करा रहे थे, हँस रहे थे और खिलखिला रहे थे।

धीरे-धीरे खाना-पीना शुरू हो गया था। खानसामा मेहमानों की आवभगत में व्यस्त थे। शर्बत, मदिरा, टोस्ट, चाय, नमकीन, पेस्ट्री, मिठाइयाँ, मोहनभोग, 'फ्रूट सलाद', 'ऐरेटेड वाटर', सिगरेट, सिगार, पान आदि की 'सर्विस' शुरू हो गई थी। प्रत्येक अपनी-अपनी रुचि के अनुसार चीजें मंगाता और हँसी-ठिठोली के बीच उनकी गरमागरम बहसें उस

वातावरण को और रंगीन कर रही थीं।

जब सब मेहमान बैठ गये और खाना-पीना प्रारंभ हो गया, तो अवध बिहारी सिंह उस दूधिया प्रकाश में मीना को लेकर मुख्य कक्ष से बाहर आये। पहले की मीना ने अब इस समय बिल्कुल ही रूप बदल लिया था। श्वेत शुभ्र साड़ी, जो तरतीब से उसके गौर शरीर के चारों ओर लिपटी हुई थी। उन्नत भाल, तीक्ष्ण नुकीले नयन और होंठों पर मंद-मंद मुस्कराहट। उस हरियाली में, दूधिया प्रकाश में मीना ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो विशाल स्वच्छ सरोवर में कोई कमल खिल गया हो और हवा के झोंकों से झूम-झूमकर इठला रहा हो। उसकी नपी तुली-चाल और तन्वंगी देह-यष्टि सबके आकर्षण का केन्द्र थी। उसके शरीर पर के सारे आभूषण मोती के थे और उस झिलमिल प्रकाश में वे मोती सहस्र-सहस्र किरणें बिखेरकर फिज़ा को और रंगीन बना रहे थे।

मीना को देखते ही सब अकचकाकर खड़े हो गये। ऐसा लग रहा था मानो पुष्पधन्वा ने एक ही कुसुम-शर से समस्त समुदाय को बेंध दिया हो। ... बिहारी सिंह मीना को लेकर प्रत्येक छतरी के पास जाते, उनसे परिचय करवाते, और फिर आगे बढ़ जाते। बारी-बारी से वे सब छतरियों के पास गये और मीना का उनसे परिचय करवाया। लोग खड़े होते, प्रशंसात्मक दृष्टि से उसे देखते और 'चीयर्स' देकर अपने स्थान पर बैठ जाते। नीची निगाह किये और मुस्कराहट के साथ वह प्रत्येक 'चीयर्स' और बधाई के प्रत्युत्तर में धन्यवाद देती और अपने पिता के साथ आगे बढ़ जाती।

विभिन्न टेबलों पर विभिन्न विषयों की चर्चाएँ चल रही थीं। एक टेबल के चारों ओर बैठे लोगों में राजनीति पर गरमागरम बहस चल रही थी। चीन और उसका परमाणु अस्त्र चर्चा का मुख्य विषय था।

'मैं कहता हूँ, चीन जिस तेजी से बढ़ रहा है, यदि उस पर अंकुश नहीं लगा तो शीघ्र ही वह विश्व की दूसरी प्रधान शक्ति बन जाएगा।' एक ने कहा।

'और अब तो उसने प्रक्षेपणास्त्र भी बना दिये हैं जो हजारों मील दूर बैठे निरपराध लोगों का भी संहार करने में समर्थ हैं।' दूसरे ने हाँ में

हाँ मिलाई।

'कुछ नहीं है यार, माओ का यह बुखार है जो शीघ्र ही उतर जाएगा। उसके अपने घर में इतनी जबरदस्त फूट है कि...'

'पर घर में फूट होते हुए भी इण्डिया के लिए तो सिरदर्द बन गया।' पहले ने समोसे का टुकड़ा कतरते हुए उत्तर दिया।

'कोच्छ नांई, चीन की जनता को बरगलाने का प्रोपेगण्डा है।' एक बंगाली महाशय बीच में ही कूद पड़े।

'पर एक बात तो माननी ही पड़ेगी, उसने जिस तेजी से विज्ञान में प्रगति की है, वह तो काबिले-तारीफ है।' दूसरा धीरे-धीरे फुसफुसाहट के स्वर में बोला।

'ओय होय, मैं कहता हूँ, अब इण्डिया इतना 'वीक' नहीं है कि वह इस गीदड़ भभकी से डर जाय। सन् त्रेसठ का जमाना लद चुका।' चौथा सज्जन बोला।

'और अबकी वह इधर आया तो साले को छठी का दूध याद आ जाएगा।' दूसरे ने बात का समर्थन किया।

'पर एक बात समझ नहीं आ रही है या... ...ाक किस बल-बूते पर चीन से सांठ-गांठ बढ़ा रहा है, उसे तो इण्डि...ा के त्रेसठ-चौंसठ के किस्से से सबक लेना चाहिए।' पहले ने जिज्ञासा प्रगट की।

'जब तक सिर पर नहीं पड़ती, तब तक अक्ल नहीं आती। मैं कहता हूँ, दोनों ही एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं, दोनों का दोनों से स्वार्थ है, और दोनों अपने आप में सिमटे दूसरे को उल्लू बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अपनी बिगड़ती हुई जनता को शान्त रखने और उनपर तानाशाही करने के लिए कुछ न कुछ हौआ तो होना जरूरी ही है, और वह हौआ बना रखा है 'इण्डिया' को। एक कह रहा है 'इण्डिया' ताकतवर है, अतः उससे बचाव के लिए शस्त्र-संग्रह आवश्यक है, और दूसरा अपनी जनता को इस 'प्वाइण्ट' पर घसीट रहा है कि हिमालय और उसके आस-पास का प्रदेश तो अपना ही है। और दोनों ही अपने आप में दुःखी और परेशान हैं।' पहला बोला।

उसका भाषण इतना लम्बा इसलिए हो गया था कि दूसरे साथी खाने-पीने में तल्लीन थे। जब वह चुप हुआ तो तीसरा बोला, 'करेक्ट···करेक्ट···ग्राइ सेकण्ड इट···'

'ग्रॉफ कोर्स···' एक ग्रावाज टेबल के कोने से सुनाई दी।

बात का ग्रागे बढ़ना रुक गया, क्योंकि तब तक ग्रवध बिहारी सिंह मीना को लेकर परिचय के लिए उस टेबल के पास पहुँच चुके थे।

एक दूसरी टेबल पर बातचीत चल रही थी रीता फारिया की। एक सज्जन रीता फारिया को ग्रभारतीय घोषित कर रहे थे ग्रौर कह रहे थे, 'व्यर्थ है ये ढकोसले, ब्यूटी क्वीन ग्रौर 'वर्ल्ड क्वीन' के खिताब। मैं पूछता हूँ क्या तुक है इसमें कि हजारों रुपये बरबाद कर 'फॉरेन' जाग्रो, ग्रौर वहाँ ग्रपने ग्रंग-ग्रंग का नाप दो। सीना इतना, नितम्ब इतने, कूल्हे इतने ! क्या मिलता है इससे···। ब्यूटी है तो उसकी रक्षा करो, महको, मचलो, पर इस प्रकार ग्रर्द्धनग्न पोशाक में दूसरों के सामने ग्रपने ग्रंगों का प्रदर्शन करना संस्कृति का पतन है, निम्नता है ग्रौर गिरावट परिचायक है।' बोलनेवाले सज्जन सौन्दर्यरसिक थे, ग्रौर उनके मुख शब्द इस प्रकार निकल रहे थे मानो ग्रस्सी मिलीमीटर की बन्दूक से गोलियाँ निकल रही हों। टेबल पर बैठे ग्रन्य श्रोता खाने ग्रौर सुनने दोनों में तल्लीन थे।

'लाहौल वला कूवत। मैं पूछता हूँ, हुस्न घर की चारदीवारी में कैद रहा तो उसका जायका ही क्या ? जंगल में मोर नाचा, किसने देखा।' ग्रधेड़ उम्र के लखनवी टोपी लगाये एक नवाब साहब बोल उठे।

'हुस्न कोई सोने का गहना नहीं कि उसे तिजोरी में बन्द कर उसपर ताला लगाया जा सके। वह तो एक महक है जो हवा में घुल-मिलकर चारों तरफ फैल जाती है।' एक रसिक-से दिखाई देनेवाले युवक ने नवाब साहब का समर्थन किया।

'नो···नो···इट इज टोटली रोंग मिस्टर नवाब, हमारी इण्डिया की कल्चर इस बात की परमिशन नहीं देती कि हम ग्रपने शरीर को नंगा कर दूसरों के लिए प्रदर्शनी बन जाएँ। नारी की शालीनता ग्रौर

उसकी ब्यूटी नंगेपन में नहीं, सजावट में है, ग्रंगों को छिपाने में है।' एक सज्जन ने ग्रपनी थ्योरी दृढ़ता के साथ टेबल पर पेश की।

'पर मैं पूछता हूँ ग्रापको इण्डिया की कल्चर का ज्ञान भी है। ग्रजन्ता ग्रौर एलोरा की मूर्तियाँ क्या प्रगट करती हैं ? कामोत्तेजक दृश्य, प्रणय-निवेदन, चुम्बनों का ग्रादान-प्रदान ग्रौर नग्न कामातुर शरीर-यष्टि से मंडित ये चित्र इण्डिया के नहीं ? क्या भारत की संस्कृति इस बात से इन्कार करती है कि ये चित्र भारतीयों के नहीं, विदेशियों द्वारा निर्मित हैं। इण्डिया की कल्चर में कहाँ लुकाव-छुपाव है, क्या ग्रजन्ता एलोरा की गुफाग्रों में ? कालिदास ग्रौर दण्डी के काव्य में, मेघदूत ग्रौर शाकुन्तल जैसे साहित्य में ? बिहारी के दोहों में ? मैं पूछता हूँ, कहां गोपनीयता है ? छिपाव है कहाँ पर ? बंधन ग्रौर सीमा की जकड़न है ? क्या यह भारतीय संस्कृति नहीं ? क्या यह साहित्य भारत का नहीं ? क्या भारतवासियों को इन पर गर्व नहीं ?' एक शुभ्र-सा परिधान धारण किये हुए सज्जन तर्क प्रस्तुत कर रहे थे।

'करेक्ट मिस्टर चोपड़ा, पर ग्राप एक भू कर रहे हैं। इस कलात्मक साहित्य ग्रौर पश्चिम की इस ग्रंगप्रदर्शन प्रवृत्ति में जमीन-ग्रास्मान का ग्रन्तर है। उसमें इतना होते हुए भी शान्ति है, ग्राँखों को सुखकर ग्रौर मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करने वाला है। उसे देखकर हमारी वासनाएँ नहीं जागतीं, ग्रंग नहीं फड़कते ग्रौर न ही चेहरे का रक्त गरम होता है, ग्रपितु उन्हें देखकर वास्तविक निर्मल सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। वास्तविकता से हमारा परिचय होता है ग्रौर हम ग्रनिर्वचनीय ग्रानन्द में डूब जाते हैं। इसके विपरीत पश्चिम की इस प्रवृत्ति में क्या है, ग्रंगों का प्रदर्शन ग्रौर इस प्रकार से प्रदर्शन, कि सोई हुई वासनाएँ जाग जाएँ, खून खौलकर चेहरे पर जमने लग जाए ग्रौर हृदय में एक ग्रजीब-सी प्यास, ग्रजीब-सी भूख ग्रौर काम का बवण्डर चक्कर लगाने लग जाए। इसमें उन्मादकता है, उसमें शान्ति है, इसमें तृष्णा है, उसमें तृप्ति है। दोनों को हम एक धरातल पर नहीं तोल सकते, दोनों संस्कृतियों में ग्रन्तर ही नहीं, महान ग्रन्तर है।' एक सज्जन ने ग्रपना प्रबल तर्क प्रस्तुत किया।

कार 'जो भी हो यार, पर यह है मजेदार। आँखों को 'फुल आइ विटा-मिन' मिलता है, और...'और उसके आगे के शब्द रसगुल्ले के नीचे दब गये।

सभी हँस पड़े। बीच में ही एक सिख सरदार बोल उठे, 'पर इस फारिया ने किया गजब यार। पट्ठी निकली इण्डिया से और बस गई अमेरिका में। अमेरिका वाले उस पर ऐसे लट्टू हुए कि बस। इण्डिया का फूल और महकने लगा अमेरिका में...'

तभी एक खानसामा ट्रे में चार 'फ्रूट सलाद' लेकर वहाँ पहुँच गया। चारों मित्र उस 'फ्रूट सलाद' पर टूट पड़े और आगे की बातचीत इन्हीं गिलासों में विलीन हो गई।

एक अन्य तीसरी टेबल पर इसी प्रकार 'कला' पर भाषण हो रहा था। एक लम्बे-दुबले सज्जन जिनके लम्बे-लम्बे बाल बेतरतीब से बिखरे हुए थे, हाथ में आइसक्रीम की प्लेट लिए बोल रहे थे, 'यह है हमारा भारतीय आर्ट, जिस पर एक नहीं, दो नहीं, सैकड़ों विदेशी न्यौछावर हैं। यह कोई मजाक नहीं है, बल्कि आर्ट की नेच्युरिटी है।' और 'नेच्यूरिटी' शब्द कहते-कहते गर्दन में खम देकर हाथ को इस प्रकार का झटका दिया कि आइसक्रीम की प्लेट हाथ से छिटककर दूर जा गिरी और सारी आइस-क्रीम कपड़ों पर बिखर गई। चारों तरफ हँसी का एक फव्वारा फूट पड़ा।

इसी प्रकार अन्य टेबलों पर भी चर्चाओं का बाजार गर्म था। कहीं 'समाज-सुधार', कहीं 'पाश्चात्य शिक्षा', तो कहीं 'ज्योतिष' को आधार बनाकर वाद-विवाद चल रहा था। सभी एक-दूसरे से उलझे हुए थे, सभी तन्मय थे, मग्न थे। अपनी-अपनी बात कहने को उतावले थे, और अपनी श्रेष्ठता का सिक्का जमाने को तत्पर थे।

रात का अंधेरा घिर गया था, पर उस उद्यान में दूधिया प्रकाश से छिपकर अंधकार किसी एक कोने में चुपचाप सिमटकर बैठा था! अधि-कांश मेहमान आ गये थे, और अब कभी-कभी इक्की-दुक्की ही कार का हार्न सुनाई देता। अवध बिहारी सिंह सभी मेहमानों की खातिर-तवज्जह करते-करते मीना को साथ ले उद्यान के बीचों-बीच पड़ी गोल मेज की

ओर बढ़ रहे थे। सभी मेहमान उठ-उठ कर गोल मेज के इर्द-गिर्द जमा हो गये थे। कुछ शौकीनमिजाज और कुछ वे, जिन्होंने इतना अधिक खा लिया था कि उठकर गोल मेज के पास जाने में परेशानी अनुभव कर रहे थे अपनी कुर्सियों पर ही बैठे रहे। हाँ, उन्होंने अब और अधिक आराम से पैर फैला दिये थे, पीठ कुर्सी के 'बैक' से टिका दी थी और धीरे-धीरे सिगरेट के कश लेते हुए धुँए के छल्ले बना-बनाकर हवा में उड़ा रहे थे। शराब की मस्त महक उनके दिमागों पर छा रही थी और धीरे-धीरे वे निढाल-से हो रहे थे।

बीच में पड़ी गोल मेज पर से कपड़ा हटा लिया गया। मेज के बीचों-बीच रंग-बिरंगे फूलों की कसीदाकारी से सजा केक पड़ा था, जिसके चारों ओर मोती टंके थे। केक के बीचोंबीच सोलह मोटी-मोटी मोमबत्तियाँ थी जिन पर रंग-बिरंगी पॉलिश की हुई थी।

सब लोगों के इकट्ठा हो जाने पर अवध बिहारी सिंह बोले, 'तो लेडीज एण्ड जेण्ट्स! आज बेबी मीना की सोलहवीं बर्थ-डे है। उसने अपने जीवन में पन्द्रह बसन्त देखे हैं और आज वह सोलहवें बसन्त को चूमने जा रही है। मैं उसके प्रसन्नता और स्वतन्त्र जीवन, उन्मुक्त विचार और सफल 'पर्सनेलिटी' की कामना करता हुआ मोमबत्तियाँ जला रहा हूँ।' और कहते-कहते नौकर के हाथ से जलती लौ लेकर सभी मोमबत्तियाँ जला दीं।

'थ्री चियर्स टू मिस मीना...हिप्-हिप्...'

'हुर्रे...'

और इस आनन्द ध्वनि तथा हिप्-हिप् हुर्रे के साथ मीना ने एक ही फूँक में वे सभी मोमबत्तियाँ बुझा दीं! लोग चारों ओर से मीना को 'चीयर्स' दे रहे थे, उसकी प्रशंसा कर रहे थे और उसकी 'ब्यूटी' के प्रति शुभ कामना प्रगट कर रहे थे।

थोड़ी ही देर के बाद एक ताल से तालियाँ बजने लगीं और पाश्चात्य धुन पर आधुनिक एक गीत की कड़ी के साथ मर्द और औरतें सभी एक-दूसरे की कमर में हाथ डाले, मेज के इर्द-गिर्द थिरक रहे थे। टेबल के पीछे

थोड़ी ही दूर पर पर्दा तान कर स्टेज बनाया गया था, जहाँ से हल्की-हल्की 'रॉक एण्ड रोल' की धुन आ रही थी और उस धुन पर जवान जोड़े थिरक रहे थे। उनके पैरों में गति थी और दिल में उफान। सभी अपने-अपने 'कपल' ढूँढ़ रहे थे और जो 'कपल' बन गये थे, वे मेज के इर्द-गिर्द मचल रहे थे, फिसल रहे थे, थिरक रहे थे।

'विल यू टेक मी मिस मीना?' एक नवयुवक ने प्रस्ताव किया। विशाल छाती, उन्नत ललाट, घुँघराले बाल और ललाट पर थिरकती-सी नटखट लट। उसके अधरों पर लापरवाही से मुस्कराहट थिरक रही थी और प्यासी आँखें मीना के साथ के लिए याचना-सी कर ही थीं।

'ओह यू!' और मीना ने शरारत से उसकी आँखों में झाँका और अपना हाथ बढ़ा दिया।

नवयुवक का नाम था महेन्द्र। दिल्ली के प्रसिद्ध डॉक्टर एच० एन० नारंग का सुपुत्र और इस समय यूनीवर्सिटी में एम० ए० फाइनल में पढ़ रहा था। स्वभाव से शरारती, उच्छृंखल और बिना नाथ के साँड की तरह जीवन बिताने वाला। तीखे नाक-नक्श और हृष्ट-पुष्ट शरीर लड़कियों के आकर्षण के लिए पर्याप्त था और यही कारण था कि यूनीवर्सिटी की छात्राओं और छात्रों में वह लोकप्रिय था। पाश्चात्य रहन-सहन, वेशभूषा और सभ्यता-संस्कृति में रंगे उस नवयुवक का उद्देश्य ही था, खाओ, पीओ और मौज करो। क्लास में जब कभी प्रोफेसर गैरहाजिर होते तो वह अपनी इस फिलासफी की इतनी सुन्दर और सटीक व्याख्या प्रस्तुत करता कि छात्र-छात्राओं के मानस-पटल पर ऐश-आराम का एक चित्र खिंच जाता और उनके पैर अपने-आप थिरकने लग जाते।

यूनीवर्सिटी में जब भी कोई 'कल्चरल प्रोग्राम' होता या ड्रामा होता तो महेन्द्र सबसे पहले उसमें पार्ट लेता। पिछले तीन-चार महीने पहले ही जब ड्रामा खेला गया था तो महेन्द्र ने उसमें मुख्य 'रोल' संभाला था। मीना का भी एक यूरोपीय नृत्य इसमें रखा गया था और वहीं पहले-पहल मीना का इस नवयुवक से परिचय हुआ था।

पहली ही दृष्टि में मीना की आँखों में यह नवयुवक चढ़ गया था।

महेन्द्र स्वयं इसीकी फिराक में था। जब अभ्यास समाप्त हुआ और सभी भाग लेने वाले अपने-अपने घर जाने लगे, तो मीना भी अकेली एक ओर अपनी कार की ओर बढ़ गई।

महेन्द्र ने मीना को जाते हुए देखा, तो लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ उसके साथ हो लिया और दोनों हाथ मसलते हुए बोला, 'एक्सक्यूज मी मिस मीना···गिव मी ए वन मिनट ओनली।'

मीना रुक गई और उसके चेहरे की ओर देखते हुए बोली, 'कहिए।'

'क्या आप मेरे साथ एक कप चाय पी सकेंगी गेलार्ड में, बहुत थक गया हूँ अभ्यास करते-करते···'

मीना दो क्षण मौन रही। मौन को तोड़ते हुए महेन्द्र बोला, 'मैं आपको धन्यवाद देता हूँ मिस मीना कि आप इतना सुन्दर नाच लेती हैं। आपके अंगों में जो लचक और नजाकत है, वह यूनीवर्सिटी में और किसी भी अन्य लड़की में नहीं।'

'आप पूरी यूनीवर्सिटी की बात कैसे कह सकते हैं, मुझसे भी ज्यादा'···।'

'नो·· नो···मिस मीना···आइ यम करेक्ट, डेडली करेक्ट', बा.. काटता हुआ महेन्द्र बोला, 'पिछले छह सालों से मैं यूनीवर्सिटी में हूँ और स्टेज पर हूँ। यूनीवर्सिटी का शायद ही कोई फंक्शन हुआ हो जिसमें मैं नहीं होऊँ। पिछले तीन सालों से मैं गणतंत्र दिवस पर यूनीवर्सिटी को 'रीप्रेजेण्ट' कर रहा हूँ और एक कलाकार के नाते मैं कई लड़कियों के सम्पर्क में आया हूँ और उनका नृत्य देख चुका हूँ। पर आज आपका नृत्य देखकर मैं विस्मयाभिभूत हो गया। आपके नाजुक अंगों की लचक और अंग-प्रदर्शन शीघ्र ही उन्नति के सर्वश्रेष्ठ पद पर आपको बिठा देंगे, इसमें सन्देह नहीं।'

अपनी प्रशंसा सुन मीना खिल उठी। उसने एक भरपूर नजर से महेन्द्र को देखा।

'आइ से करेक्ट मिस मीना,' महेन्द्र मुस्कराहट बिखेरता हुआ बोला, 'शायद मैं भूल नहीं करता तो आप राय साहब अवध बिहारी

सिंह की सुपुत्री हैं ?'

मीना के सहमतिसूचक सिर हिलाने पर आशा और उत्साह से महेन्द्र बोला, 'मैं डाक्टर एच० एन० नारंग का पुत्र हूँ। मेरे पिता यहाँ के सफल डाक्टर हैं और महीने की सात-आठ हजार की प्रेक्टिस आसानी से कर लेते हैं। हमारी कोठी जफर शाह रोड पर है।'

मीना उत्साहीन-सी धीरे-धीरे महेन्द्र के आकर्षण में खिंची जा रही थी और जब उसने दूसरी बार चाय का आग्रह किया तो मीना मान गई। ड्राइवर को किताबें देकर घर जाने का आदेश दे खुद महेन्द्र के साथ चल पड़ी।

'गेलार्ड' लोगों से खचाखच भरा हुआ था। भाँति-भाँति की आवाजें और शोरगुल वातावरण में एक अजीब-सी मादकता भर रहा था।

कोने की एक मेज पर बैठ, सामने की सीट पर मीना को बैठने का संकेत करते हुए महेन्द्र ने पूछा, 'क्या मँगाऊँ मिस मीना···भूख तो लगी ही होगी।'

यद्यपि प्रात के ग्यारह-बारह बज गये थे और भूख भी लग गई थी, फिर भी मीना पहली ही बार में इतना अधिक खुलना ठीक नहीं समझती थी, इसलिए मना करती हुई बोली, 'नहीं, सुबह हैवी नाश्ता लेकर चली थी। दोपहर मैं और पिताजी साथ ही भोजन करते हैं। सिर्फ चाय ही चलेगी।'

बैरे के आने पर महेन्द्र दो चिकन प्लेट और बाद में दो कॉफी का आर्डर देकर बोला, 'तो क्या मैं जान सकता हूँ, हुजूर की कोठी कहाँ है ?'

'कर्निंग रोड पर।' मीना ने संक्षिप्त-सा-उत्तर दिया।

'सच, मीना कुमारी,' बात का सिलसिला जोड़ता हुआ महेन्द्र बोला, 'आपका नृत्य सधा हुआ है। लय और गति पर जब आपके पैर थिरकते हैं तो ऐसा लगता है मानो गगन पथ पर इन्द्रधनुष थिरक रहा हो। शायद आपने नृत्य का घर पर अभ्यास किया है ?'

कॉफी की एक 'सिप' लेते हुए मीना ने थोड़े-से खम के साथ गर्दन हिला दी।

'मैं सोचता था आपका पिताजी से परिचय करा दूँ। पर आज नहीं, आज आप बहुत थक गईं प्रतीत होती हैं।'

दोनों ने कॉफी पी ली थी। महेन्द्र ने बिल चुकाया और दोनों बाहर आ गये। फिर दूसरे दिन मिलने का वायदा कर मीना एक पास में खड़ी खाली टैक्सी में जा बैठी और महेन्द्र भी गुनगुनाता हुआ टा···टा कर दूसरी तरफ चला गया। आज वह अत्यन्त प्रसन्न था। मीना जैसा सुगंधित पुष्प उसके हाथ लग जाय तो फिर कहना ही क्या! और उसने जब अपने सम्पर्क में आई अन्य लड़कियों से मीना की तुलना की तो मीना उन सबमें कहीं इक्कीस ही ठहरती थी। आज के इस परिचय और साथ में चाय पिला देने को वह एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानता था। 'चलो, चारा तो फेंका ही है, देखें कब मछली फँसती है!'—उसके होंठों से शब्द बुदबुदाए। वह दो मिनट ठहरा और वापस लौटकर 'गेलार्ड' में जा बैठा।

यहीं से धीरे-धीरे परिचय बढ़ा और इन तीन-चार महीनों में वह मीना के काफी नजदीक आ गया था। वह सधा हुआ शिकारी था। वह जानता था कि उतावली और अचानक हमला कर देने से शिकार भीत हो जाता है और भाग खड़ा होता है। धीरे-धीरे समय की रस्सी शिकार को बाँधो और छोड़ दो। जब वह छटपटाने लगे तो अलग हो जाओ और जब छटपटाते-छटपटाते बेताब हो जाय तो एक ही झटके में शिकार का सफाया कर दो।

इससे पूर्व वह मीना के साथ कई बार इस कोठी में भी आ चुका था और वकील साहब से भी सम्पर्क बढ़ा लिया था। आज भी जब उसने मीना के साथ नृत्य की याचना की तो मीना की आँखों में मस्ती भर गई और अपना हाथ बढ़ा दिया।

'रॉक एण्ड रोल' की मादक धुन फिजा में तैर रही थी और उस धुन पर जवान जोड़ों के नृत्य गतिशील थे, पैर थिरक रहे थे। 'कपल' बन रहे थे, नाच रहे थे, विश्राम ले रहे थे और विलायती शराब के जाम चढ़ा दुगने जोश से नृत्य के लिए उतर रहे थे।

मीना ने आँख उठाकर देखा, उसके पिता अवध बिहारी सिंह मिसेज

भारद्वाज की कमर में हाथ डाले थिरक रहे थे, एक ओर डा० नारंग भी किसी मिसेज के साथ नृत्य में तल्लीन थे ! नाचते-नाचते जब भी डाक्टर नारंग मुंह आगे बढ़ाते तो साथ में नाचने वाली मुंह पीछे हटा लेती थी। पर आखिर डाक्टर नारंग 'किस' लेने में सफल हो ही गए थे और इस पर जोरों का कहकहा हवा में गूंज पड़ा। मीना एक अजीब पुलक से भर गई।

'वेटर' और खानसामा मुस्तैदी से अपनी-अपनी 'सर्व' में लगे हुए थे। विलायती शराब के कार्क उड़ रहे थे और उसकी गंध हवा में तैर रही थी। जो भी 'कपल' थक कर बैठता, खानसामा तुरन्त एक जाम आगे कर देता और वे आँखों ही आँखों में धन्यवाद देते-से उसे हलक के नीचे उतार देते।

अवध बिहारी सिंह का यह आठवाँ जाम था। दो-तीन जाम पीने तक तो उन्हें पता ही नहीं चलता था। न···न···करते हुए भी वकील साहब ने एक जाम मिसेज भारद्वाज के गले के नीचे उतार दिया था और जाम हलक से नीचे जाते ही मिसेज भारद्वाज की आँखें रंगीन हो गईं। पैर चंचल हो उठे और धड़कता यौवन वकील साहब के सीने में समा जाने की कोशिश करने लगा।

मीना और महेन्द्र भी थिरकने लगे थे। नाचते-नाचते मीना ने पूछा, 'विश् यू ए पेग···'

महेन्द्र ने मीना की कमर दबा दी। उसके उन्नत उरोज और उसकी तीखी नोकें महेन्द्र के सीने में चुभने-सी लगीं। महेन्द्र गुदगुदा उठा। बोला, 'क्या आपके होंठों से भी अधिक मादक है शराब !'

मीना का चेहरा कान तक गुलाबी हो उठा। महेन्द्र झुका और उसके पतले-पतले रक्तिम अधरों का हल्का-सा चुम्बन ले लिया, ऐसे कि जैसे किसीने सावधानी से डाली पर से गुलाब का फूल चुना हो।

मीना की नजरें ऊपर उठीं और महेन्द्र की आँखों में खुप-सी गईं, होंठ फड़फड़ा उठे, 'नॉटी···'

'ब्यूटी मीना, हैवन ब्यूटी···' और महेन्द्र तथा मीना थिरकते हुए दूसरा 'राउण्ड' पार कर गये।

एक झन्नाटे के साथ 'रॉक एण्ड रोल' की धुन रुकी और फिजा में सन्नाटा-सा छा गया। अभी तक जो सब एक स्वप्निल वातावरण में थिरक रहे थे, रुक गए। सभी के हाथ कमर पर से अलग हो गये और तब उनका ध्यान अस्त-व्यस्त कपड़ों पर गया। जल्दी-जल्दी से सब कपड़े व्यवस्थित करने लगीं और एक मोहपाश से छूटती हुई-सी कुर्सियों पर जा बैठीं।

मीना के हाथों 'केक' काटा गया और खानसामों द्वारा थोड़ा-थोड़ा सभी को बाँट दिया गया। एक बार फिर 'थ्री चीयर्स टू मीनाज बर्थ-डे··· हिप् हिप्···का घोष हुआ और वातावरण खामोश हो गया।

'लास्ट आयटम' मीना का नृत्य था, जिसे सभी देखने को आतुर थे। मीना ड्रेस बदलने अन्दर चली गई थी। प्रकाश का केन्द्र 'स्टेज' की ओर हो गया था। समस्त आमंत्रित सज्जनों ने अपनी कुर्सियों का मुँह स्टेज की ओर कर दिया था।

शान्त वातावरण में कार की आवाज गूँजी और वकील साहब की कोठी के सामने आकर खट् से रुक गई। कार से उतरे डाक्टर भारद्वाज और उनका शिष्य। भारद्वाज को देखते ही वकील साहब ...ज से नीचे उतर पड़े और चार कदम आगे बढ़कर डाक्टर भारद्वाज को बाँहों में भींच लिया। सभी निमन्त्रित सज्जनों की आँखें इन नवागन्तुकों पर आकर ठहर गईं।

डाक्टर भारद्वाज अधेड़ अवस्था के बलिष्ठ पुरुष थे। मांसल शरीर, भव्य प्रभावात्मक चेहरा और उस पर बड़ी-बड़ी उभरी हुई आँखें। उठी हुई नाक और मेघ-गम्भीर स्वर, उन्नत ललाट और दिप्-दिप् करता भाल। तन्दुरुस्ती ने उनके गौर शरीर को आकर्षक बना दिया था। डेकोट के मकर्ई सूट में डाक्टर भारद्वाज फब रहे थे। पैंतालीस के आसपास पहुँचने पर भी कोई यह नहीं कह सकता था कि यही वह व्यक्ति है जो यूनीवर्सिटी में दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर है। क्लास और यूनीवर्सिटी में डाक्टर साहब इतने लोकप्रिय हैं कि दर्शन जैसे रूखे विषय को भी क्लास दत्तचित्त होकर सुनती थी। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के आदमी थे और दो बार जर्मनी,

अमेरिका तथा इँगलैंड जा आए थे। इनके भाषणों ने वहाँ भारतीयता की धाक जमा दी थी और डाक्टर भारद्वाज के सम्मान और प्रशंसा में पत्रों के कॉलम के कॉलम रंग गए थे।

डाक्टर भारद्वाज दर्शन के प्रकाण्ड पंडित होने पर भी रसिक और सहृदय थे। काव्य में उनकी असाधारण रुचि थी और बात ही बात में वे सैकड़ों दोहे और उर्दू के शेर सुनाकर समां बाँध देते थे। उन्हें अपने-आप की वक्तृत्व-कला पर विश्वास था, और जब वे दर्शन की गुत्थी सुलझाने लगते तो उसे इस प्रकार से स्पष्ट करते जैसे कोई भाषण न होकर रस की अजस्र धारा बह रही हो। देश से और बाहर से कई छात्र उनके निर्देशन में शोध करने को व्यग्र रहते, पर उनकी भी तो सीमाएँ थीं।

डाक्टर भारद्वाज अवध बिहारी सिंह के पुराने दोस्त थे। दोनों शतरज के शौकीन, और जब वे बाजी लेकर बैठ जाते तो समय का पता ही नहीं चलता था।

डॉक्टर भारद्वाज की कोठी भी कनिंग रोड पर ही थी। वकील साहब की कोठी से कुछ दूर हटकर। मुश्किल से आधा मील का फ[illegible] होगा। हफ्ते में दो-तीन बार तो दोनों मित्र मिलते ही और जब मि[illegible] तो ढेर सारी बातें होतीं, हंसी-मजाक होते, चुहलबाजियाँ होतीं और ऐसा लगता मानो वे आनन्द के सागर में नहा रहे हों। समय गुजरने का उन्हें भान ही नहीं रहता।

आज मीना का जन्म-दिन था और ऐसे अवसर पर डाक्टर साहब की अनुपस्थिति खल रही थी। वकील साहब का नौकर दो बार उनकी कोठी पर जा आया था, पर प्रत्येक बार यही उत्तर मिला कि न मालूम कहाँ गए हैं। कुछ कहकर भी तो नहीं गए।

और जब मिसेज भारद्वाज आईं, परन्तु उनके साथ डाक्टर साहब को नहीं देखा, तो वकील साहब से रहा नहीं गया। पास जाकर फुसफुसाये, 'भाभी! क्या बात है? भाई साहब से लड़ाई हो गई है क्या?'

परन्तु मेहमानों की आवभगत ने उत्तर सुनने को अवकाश ही नहीं दिया।

दूसरी बार जब 'रॉक एण्ड रोल' की धुन पर 'कपल' बन रहे थे तो वकील साहब ने जानबूझकर मिसेज भारद्वाज को चुना था। 'राउण्ड' में भी वकील साहब ने ऐसा ही प्रश्न किया था तो मिसेज भारद्वाज मुस्करा कर रहस्यमय ढंग से फुसफुसाई थीं, 'तो ठीक ही तो हुआ न···तुम्हें कहाँ घाटा है? वे होते तो क्या हम···'

और पूरा उत्तर सुनने से पहले ही वकील साहब ने मुस्कराकर मिसेज भारद्वाज की पतली कमर पकड़ अपने सीने पर जोरों से भींच लिया था और मिसेज भारद्वाज के मुँह से बरबस 'उई' निकल गया था।

मिसेज भारद्वाज का वास्तविक नाम नीला था। आधुनिक सभ्यता और विचारों में पली वह एक सुन्दर रमणी थी। धनी बाप की बेटी थी और बचपन पूरे लाड़-प्यार के साथ व्यतीत हुआ था। 'कान्वेंट' स्कूल में पढ़ी थी और बाद में यूनीवर्सिटी से अंग्रेज़ी विषय में एम० ए० किया था। तीखे नाक-नक्श और छरहरा मांसल गौर शरीर उसकी वास्तविक उम्र पर पर्दा डालने को पर्याप्त था। अवस्था होगी करीब चौंतीस-पैंतीस साल की, पर लगती वह इससे बहुत कम थी। [illegible]धुनिक सौन्दर्य-प्रसाधनों का खुलकर उपयोग करती और 'स्वच्छन्द जीव[illegible]ी वास्तविक जीवन है' उसकी मान्यता थी और इस मान्यता को वह [illegible]दे जीवन में सबसे अधिक महत्त्व देती थी।

वह कभी भी दबकर नहीं रही। न पिता के घर में और न पति के घर में। किसी भी प्रकार का बंधन या रुकावट उसके लिए असह्य था और जहाँ भी उसे महसूस होता कि उसे कृत्रिम बंधनों में जकड़ा जा रहा है, वह उसे छिन्न-भिन्न करने को प्रस्तुत रहती। छोटी-छोटी बातों पर उसके और डॉक्टर भारद्वाज के बीच कई बार झड़पें हो जातीं, पर वह झुकती नहीं थी। वह एक ऐसा फौलाद था, जो टूट सकता था, पर झुकने में असमर्थ था।

उसका छरहरा शरीर, बड़े-बड़े कजरारे नयन, उन्नत भाल, तीखी नासिका और गौर शरीर-यष्टि उसके व्यक्तित्व को भव्यता प्रदान करते। प्रत्येक प्रकार की ड्रेस उसे खूब फबती। सभा-सोसाइटियों की वह प्राण

थी। पैसों की परवाह थी नहीं और घर में किसी भी प्रकार का अभाव उसे दृष्टिगोचर नहीं होता था। 'कम्पेन' मिल जाने पर वह यदा-कदा 'ड्रिंक' भी कर लेती, पर 'ड्रिंक' अभी तक डाक्टर भारद्वाज से छिपकर ही किया जाता। आज भी उसने वकील साहब के साथ नाचते-नाचते ढेढ़-दो पैग हलक के नीचे उतार दिये थे, जिससे उसके भाल पर पसीना चू रहा था और मन की तरंगें हवा पर सवार थीं।

मिसेज भारद्वाज के आने के बाद भी वकील साहब ने दो बार उनकी कोठी पर फोन किया था और दोनों ही बार उनके नौकर से ही उत्तर मिला था।

और अब, जबकि डाक्टर भारद्वाज आये, उनकी प्रसन्नता बढ़नी स्वाभाविक ही थी और इस प्रसन्नतातिरेक में वकील साहब ने आगे बढ़कर उन्हें बाँहों में भर लिया था।

'हद कर दी आपने भी मिस्टर भारद्वाज, आज ही मीना की बर्थडे थी और आज ही आपको 'एबसेन्ट' रहना था।' वकील साहब के स्वर में स्पष्ट उपालंभ था।

'क्या करूँ यार, तुम्हीं सोचो, मीना की 'बर्थडे' हो और मैं गैर-हाजिर रहूँ! पर एक 'मीटिंग' में ऐसा उलझ गया कि निकलने का कोई रास्ता ही नहीं था। ज्यों त्यों कर पिण्ड छुड़ाकर भागता आया हूँ।' भारद्वाज की आवाज में विवशता स्पष्ट झलक रही थी।

'मीटिंग...मीटिंग...मीटिंग...इसके अलावा भी तुम्हारे पास कोई काम है, जब देखो तब मीटिंग,' और फिर फुसफुसाते से बोले, 'चलो कोई बात नहीं, थोड़ी-सी देर और करते तो ये सारी चिड़ियाँ उड़ जातीं। फिर तो टापते ही...'

डाक्टर भारद्वाज मुस्कराये, 'कोई बात नहीं राय! तुम ही सही। मेरे दोस्त हो, चिड़िया तो फँसाओ, मैं उसे टीप लूँगा।' और दोनों जोरों से खो...खो करके हँस पड़े।

हँसते-हँसाते दोनों 'स्टेज' तक पहुँचे। डाक्टर भारद्वाज के पीछे-पीछे मौन उनका शिष्य भी चल रहा था।

'डाक्टर साहब...' मंच के पास जाकर अपना स्थान ढूँढ़ने और आगे की आज्ञा के लिए आनन्द बोला।

डाक्टर साहब घूम पड़े, 'ओह तुम!...आओ चलें, उधर बैठ जायँ।' कहते-कहते डाक्टर भारद्वाज ने एक ओर इशारा कर दिया।

वकील साहब उस नवयुवक को देखने लगे जिसे अभी-अभी डाक्टर साहब ने आज्ञा दी थी। भरा-भरा गोल चेहरा, सिर पर छोटे-छोटे बाल, उन्नत भाल और ज्ञान की खोज में भटकती-सी तेजस्वी आँखें। शरीर पर सफेद झक् खद्दर की धोती और उस पर खद्दर का ही मोटा सफेद कुरता। पैरों में चप्पल! साधारण वेशभूषा होने पर भी उसका व्यक्तित्व अलग से ही पहचाना जाता था।

'आप,' वकील साहब ने डाक्टर भारद्वाज की ओर प्रश्नात्मक रूप में पूछा और फिर नवयुवक की ओर घूमकर बोले, 'शायद आपसे पहली बार ही मिलना हो रहा है?'

नवयुवक कुछ जवाब देता उससे पहले ही डाक्टर भारद्वाज आँखों में चमक भर आनन्द के कंधे पर हाथ रखते हुए बोले, 'राय! यह मेरा अत्यन्त प्रिय शिष्य है। मेधावी, नूतन सूझ-बूझ वाला, तार्किक और विचक्षण। विचक्षण इस रूप में कि इसकी मान्यताएँ अलग हैं, सिद्धान्त अलग हैं और सोचने तथा समझने का ढंग अपना खुद का है। वाराणसी विश्वविद्यालय का मेधावी छात्र भारतीय दर्शन पर मेरे सान्निध्य में रिसर्च करना चाहता है। अभी इसे आए पन्द्रह-बीस दिन ही हुए हैं, पर इस थोड़े से समय में ही मैं इसके विचारों का कायल हो गया हूँ। यद्यपि मेरे और इसके विचारों में भिन्नता है, परन्तु फिर भी इसके विचार अव-हेलना के योग्य नहीं।'

बातचीत हो ही रही थी कि पाश्चात्य नृत्य वेशभूषा में मीना वहाँ आ पहुँची। उसका परिधान पूर्णतः बदल गया था। अभी थोड़ी देर पहले की मीना और इस मीना में जमीन-आसमान का अन्तर था। वह मीना शुभ्र साड़ी में लिपटी दूधिया प्रकाश में ऐसी लग रही थी मानो स्वच्छ ताल पर हुमसकर कमल खिला हो। उसकी भारतीय वेशभूषा चारों ओर

शान्ति की किरणें बिखेर रही थी। परन्तु अब···इस समय की मीना उससे सर्वथा विपरीत थी। चेहरे पर गुलाबी पाउडर, रूज और लिपस्टिक के हल्के से स्पर्श से उसका चेहरा गुलाब की तरह मादक और मस्त बन गया था। आँखों की कोर से निकली काजल की लकीर ने आँखों को और पैना तथा विषमय बना दिया था। मद्य के किंचित् स्पर्श से आँखों के डोरे लाल हो गये थे और उनमें अजीब-सी मस्ती भर गई थी। बालों का स्टाइल पूर्णतः पाश्चात्य ढंग का था। छोटी-छोटी बल खाती लटें सर्पिणियों की भाँति ललाट पर रेंग रही थीं और पीछे की ओर बालों को घुमाकर ऐसा रूप दे दिया था कि वे 'बाब्ड' से प्रतीत हो रहे थे। कान या नाक में किसी भी प्रकार का आभूषण नहीं था।

'वी' टाइप का चुस्त और फिट 'स्कर्ट' पहना हुआ था जिसमें शरीर का भराव मुश्किल से समा रहा था। कठोर, उन्नत नितम्ब उस स्कर्ट से छिपे, पर बाहर फट पड़ने को आतुर ऐसे लग रहे थे मानो दो कबूतरों को जबरदस्ती से बाँधकर ढक दिया हो और वे मुक्त गगन में उड़ने के लिए फड़फड़ा रहे हों।

लाल रंग के इस चुस्त स्कर्ट के नीचे लाल रंग का ही ऊँचे टखने वाला पेंट था, जो शरीर से पूर्णतः चिपका हुआ था और उससे शरीर का छोटे से छोटा उभार भी स्पष्ट झलक रहा था। पूर्णतः लाल स्कर्ट और पेंट में मीना ऐसी लग रही थी, मानो तप्त जलता हुआ लाल अंगारा हो, जिसपर हजारों पतंगे मर मिटने के लिये आतुर हों। इस बाँकपन, अदा और सौन्दर्य के साथ-साथ उसकी नशीली चितवन गजब ढा रही थी।

'गुडनाइट अंकिल !' मीना ने एकदम से डाक्टर भारद्वाज को संबोधित करते हुए कहा।

'ओह हो, मीना हो भई ! वाह ! आज तो खिल रही हो।' प्रशंसात्मक स्वर में भारद्वाज बोले और कहते-कहते मीना को बगल में दबा लिया।

'आपको प्रणाम करो बेटी मीना,' आनन्द से परिचित कराते हुए अवध बिहारी सिंह बोले, 'मिस्टर आनन्द, डाक्टर भारद्वाज के

योग्यतम शिष्य और भारतीय संस्कृति के प्रबल पोषक। और इसी विषय पर ये डाक्टर के अण्डर में 'रिसर्च' करने का विचार कर रहे हैं।'

आनन्द ने शालीनता से दोनों हाथ जोड़ लिए। प्रत्युत्तर में मीना खिलखिला पड़ी। बोली, 'यह तो इनकी ड्रेस से ही पता चल जाता है, कहने की जरूरत ही क्या है ?'

'हाँ,' प्रत्युत्तर में नम्रता से आनन्द बोला,' प्रत्येक की वेशभूषा उसके विचार, रहन-सहन तथा संस्कृति को स्पष्ट कर देती है।'

'तो क्या मैं भारतीय नहीं हूँ ? केवल कपड़े पहन लेने से तो मैं अभारतीय नहीं बन गई ? मैंने स्कर्ट पहन लिया, क्या इसलिए मेरी संस्कृति अलग हो गई और आपने ये पुराने दकियानूसी धोती-चोला पहन लिया है तो भारतीय संस्कृति के सर्वेसर्वा बन गए। मैं पूछती हूँ, क्या संस्कृति कपड़ों से ही आँकी जाती है ?' मीना मुस्कराती हुई बोली।

'नहीं मीना जी ! कपड़े बदल देने से संस्कृति नहीं बदलती। संस्कृति दिखावट या प्रदर्शन की वस्तु नहीं, वह तो आत्मा का एक ऐसा भाव है जो सम्पूर्ण जीवन को आप्लावित करता चलता है। जीवन के वे क्षण, जिन क्षणों में हम अपनी जैविक आवश्यकताओं से ऊपर उठकर समाज, देश या विश्व के बारे में उसके दुःख-दर्द में भागीदार होते हैं, वे क्षण ही संस्कृति निर्माण में सहायक होते हैं। संस्कृति आदान-प्रदान की वस्तु नहीं और न ही वह नकल से आ सकती है। एक अफ्रीकी कोट-पैंट पहनकर यूरोपियन की नकल तो कर सकता है, पर यूरोप की जो संस्कृति है, उसे वह अफ्रीकी आत्मसात नहीं कर सकेगा। हम भी उस अफ्रीकी के समान ही हैं जिसने नकल करना तो सीख लिया, पर यूरोप की संस्कृति से, उसके प्राण-तत्वों से सर्वथा अनभिज्ञ ही रहे। इसलिए हम सफल नकलची तो हैं, पर यूरोपीय संस्कृति से उतने ही दूर, जितनी दूर वह अफ्रीकी है।'

यह मीना के पहनावे पर भरपूर व्यंग्य था। इससे वह तिलमिला गई, पर चोट को संभालती-सी बोली, 'तो जो धोती और कुरता पहनते हैं, उन्होंने भारतीय संस्कृति आत्मसात कर ली ? वे भारतीय संस्कृति के

प्राण-तत्त्वों से भिन्न हैं ?'

'इसका उत्तर है भी और नहीं भी,' आनन्द उसी शान्त मुद्रा में बोला, 'मैंने अभी आप से कहा था कि केवल कपड़े पहन लेने से संस्कृति नहीं पहचानी जा सकती। संस्कृति के कुछ तत्त्व हैं और उन तत्त्वों को जो अपने जीवन में आत्मसात करता है, वह संस्कृति के उतना ही निकट है। हमारे पूर्वज केवल एक लंगोटी पर ही आश्रित थे, पर उन्होंने उस अमर संस्कृति का प्रादुर्भाव किया, जो अजर-अमर होने के साथ-साथ विश्व को सभ्य बनाने में अग्रसर रही है। हाँ! यह माना जा सकता है कि वेशभूषा का प्रभाव उसके जीवन पर पड़ता है और जैसी वेशभूषा होगी, उसके ज्ञान-तन्तु भी उसी दिशा में अग्रसर होते हैं।'

'इसका तो मतलब यह हुआ कि जितने भी चपरासी-चौकीदार हैं, गरीब और भिखमंगे हैं, धोती और अंगोछे पर जीवित रहने वाले हैं, उसका प्रभाव भी उनके जीवन में पड़ता है और वे भारतीय संस्कृति को पहचानने में सक्षम है। मैं पूछती हूँ, क्या भारतीय संस्कृति इन गरीबों और अनाथों में भटक रही है? ये ही भारतीय संस्कृति के पोषक हैं और यहाँ जितने भी लोग बैठे हैं, करीब-करीब सभी पैंट सूट में हैं, तो ये अभारतीय, भारतीय संस्कृति से हीन और पाश्चात्य संस्कृति के पोषक हैं?' मीना के प्रश्नों में तीखापन आ रहा था।

'आप सही भी हैं और गलत भी। अभी मैंने आपको कहा कि संस्कृति मात्र कपड़ों में ही सिमटी हुई नहीं है, वह इन सबसे बहुत दूर है। परिधान तो केवल परिचायक है। इसीलिये तो मैंने नकलची कहा। केवल कोट-पैंट या सूट पहन लिया, पर इन्हें न तो भारतीय संस्कृति का ज्ञान है और न पाश्चात्य संस्कृति की जानकारी। ये केवल अन्धानुकरण करनेवाले हैं। वेशभूषा से ये शनैः-शनैः भारतीय सांस्कृतिक तत्त्वों से दूर हटते जा रहे हैं और आगे का रास्ता अदृश्य और अस्पष्ट होने से अंधेरे में ही भटक रहे हैं।' आनन्द का प्रत्येक शब्द दृढ़तायुक्त था।

'तो आप भारतीय संस्कृति किसे मानते हैं? कहाँ है वह? कहाँ बैठी है?' मीना का स्वर तीखा होने के साथ-साथ झुँझलाहट-भरा भी

था।

'यहीं आप भूल कर रही हैं मीनाजी! संस्कृति कोई खिलौना या वस्तु नहीं, कि उसे एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रख दें। यह तो एक भाव है, चेतना है, स्फुरण है, जो जीवन में छा जाता है। क्षमा, दया, ममता, करुणा, अक्रोध, धैर्य, अस्तेय, आदि ऐसे सोपान हैं, जिस पर चढ़कर संस्कृति से आत्मसात किया जा सकता है। जो व्यक्ति जितना ही अपने 'स्व' के वृत्त से ऊपर उठकर 'जगत' की परिधि में जाता है, वह उतना ही संस्कृति के सन्निकट है। संस्कृति हृदय को ठंडक देती है, ऊष्णता नहीं, वह मनोविकारों को शान्त करती है, वासनाओं को भड़काती नहीं। माफ करना, आज आपने जो कपड़े पहन रखे हैं, जो कसावट और व्यग्रता इस परिधान में है, क्या इससे शान्ति की किरणें निकलती हैं? क्या यह परिधान चित्त को शान्ति प्रदान करता है? नहीं···मैं कहता हूं सर्वथा नहीं—यह परिधान नग्नता का परिचायक है, हीनावस्था का द्योतक है, इससे वासनाएँ भड़कती हैं, चित्त में उद्वेग उठता है और जीवन में छटपटाहट-सी बढ़ती है। और यही कारण है कि यह वेशभूषा संस्कृति के मार्ग में साधक नहीं, अपितु बाधक है। इससे जीवन का विकास नहीं, निम्नता और गिरावट है। यह वेशभूषा एक प्रकार से भारतीय संस्कृति और नारी जाति के लिए कलंक है।' आनन्द दृढ़ता से अपना पक्ष प्रस्तुत कर रहा था, उसके चेहरे पर वही सौम्य मुस्कराहट थिरक रही थी।

मीना तिलमिला गई। आज उसने इतनी बेलाग और साफ-साफ बातें सुनी थी कि वह भन्नाटे में आ गई। क्रोध से उसका सारा शरीर स्फुलिंग की तरह हो गया। दूर कहीं कुछ मेहमानों में हो हल्ला उठा और अवध बिहारी सिंह मीना को लेकर उधर ही बढ़ गये। मीना कुछ खरा-खरा कहना चाहती थी पर पिता का संकेत पा वह आगे बढ़ गई। वहीं पास पड़ी खाली कुर्सियों पर डाक्टर भारद्वाज और आनन्द बैठ गये। खानसामा टेबल पर नमकीन पेस्ट्री और कॉफी छोड़ गया।

डाक्टर भारद्वाज गुमसुम बैठे थे। होंठ उनके पेस्ट्री कुतरने में लगे थे और अँगुलियों में कॉफी का प्याला पकड़ा हुआ था, विचारधारा न मालूम

किस दिशा में बह रही थी। आनन्द पास ही कुर्सी पर मौन बैठा था, निमग्न। बीच-बीच में उसने एक-दो बार डाक्टर भारद्वाज की ओर कनखियों से देखा, पर वहाँ निर्भाद चेहरा देख वह विचारों में डूब गया—क्या उसने ठीक किया? पर यहाँ तो डाक्टर साहब की आज्ञा से आया था; वे ही अपने साथ लाये थे। तो क्या मुझे मीना को यह सब कुछ नहीं कहना था, जो मैंने कह दिया! क्या उससे उसके दिल पर चोट पहुँची?—तर्क ने प्रत्युत्तर दिया, चोट-वोट कुछ नहीं, जहाँ भी अज्ञानता है, असंगति है, गंदगी है, वहाँ ज्ञान का दीप बालना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में चोट और निचोट के बारे में सोचना ही व्यर्थ है। तो क्या मुझे किसी के घर जाकर मेजबान का निरादर करने का अधिकार है? मेजबान के ही घर पर मेजबान के विचारों को निम्न ठहराना उचित है? क्या मुझे यह सब करना चाहिए था? क्या डाक्टर भारद्वाज के खड़े मेरा संस्कृति पर इस प्रकार से कहना न्यायोचित था? क्या मैंने ठीक किया? क्या···क्या··· कई प्रश्न एक साथ उसके मानस में घुमड़ने लगे। ऐसा लगने लगा कि जैसे यहाँ आकर कुछ उचित नहीं हुआ और उस पर डाक्टर साहब ने कुछ टीका-टिप्पणी भी तो नहीं की। उफ! कितने गहरे हैं डाक्टर साहब, विशाल असीम सागर के समान, जिसके नीचे न मालूम कितनी उथल-पुथल, उखाड़-पछाड़ चलती ही रहती है, पर ऊपर से सर्वदा शान्त·· बिल्कुल शान्त बना रहता है···। तो···तो क्या मुझे···

'आनन्द!' डाक्टर भारद्वाज का मद्धिम पर साधिकार स्वर गूँजा।

'जी डाक्टर साहब,' आनन्द कुछ नया सुनने के लिए डाक्टर साहब की ओर झुका। इस समय उसके हृदय में बवण्डर-सा उठ रहा था।

'तुमने संस्कृति को ठीक समझा और आज संस्कृति की जो किंचित् व्याख्या प्रस्तुत की, वह इन पाश्चात्य पुतलों के लिए आवश्यक भी थी। तुमने जिस प्रकार से मीना···और मीना ही नहीं इस प्रकार की आधुनिक पीढ़ी को जो करारा जवाब दिया, वह तुम्हारे उपयुक्त ही था।

मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ।'

आनन्द के मस्तिष्क का सारा झंझावात एक क्षण में शान्त हो गया। उसके हृदय में जो विचारों का बवण्डर उठ रहा था, डाक्टर साहब की इन शब्द बूँदों से शान्त हुआ। तो डाक्टर साहब मेरे विचारों का समर्थन करते हैं! मैंने यहाँ जो कुछ भी किया ठीक किया, करना ही चाहिये था—समझकर आनन्द एक पुलक से भर गया। शायद डाक्टर साहब का यह भी संकेत है कि मैं ऐसी नकलची और अन्धानुकरण-प्रवृति का विरोध करूँ। स्पष्ट शब्दों में अपनी मान्यताएँ प्रस्तुत करूँ जो समाज को सही दिशा और गति दे सकें। तो मैं अवश्य ऐसा करूँगा। मैं उन सब प्रवृत्तियों का मुँहतोड़ उत्तर दूँगा जो विरोधी हैं, समाजद्रोही हैं और संस्कृति पर कुठाराघात हैं। उसने चुपके से डाक्टर साहब के चेहरे की ओर देखा, वह शान्त था, पूर्ण शान्त—जैसे ज्वार-भाटा उतर जाने के बाद सागर का तल निर्मल और शान्त हो जाता है, ठीक वैसा ही। आनन्द डाक्टर साहब के प्रति श्रद्धा से भर गया।

'स्टेज' पर से मद्धिम-मद्धिम स्वर उभरने लग गया था। अधिकांश कों का ध्यान उधर ही हो गया था। स्टेज के बाहर एक सफेद पर्दा पड़ा था जिसपर कलात्मक रूप से अजन्ता का एक चित्र अंकित किया हुआ था, जिसमें एक नायिका—विरहिनी नायिका अपने प्रियतम को पत्र लिखने के लिए स्याही का प्रयोग न कर अपने आँसुओं का प्रयोग कर रही थी। भावनाओं का एक सफल प्रतिबिम्ब था। पर्दे के पीछे दूधिया प्रकाश से सारा स्टेज जगमगा रहा था।

धीरे-धीरे संगीत का स्वर तीव्र हुआ और एक अज्ञात डोर से सामने पड़ा पर्दा धीरे-धीरे सरकने लगा। स्टेज के बीचों-बीच मीना प्रणाम-मुद्रा में शान्त निश्चल खड़ी थी। लाल—गहरे लाल रंग के वस्त्रों से सज्जित मीना उस स्टेज पर ऐसी लग रही थी मानो कोई आग की लपट हो और प्रचण्ड क्षुधातुर उस आग की लपट में सारा संसार भस्म होने को आतुर हो। उसके हाथ हिले, मानो आग की कोई ज्वाला निकली हो, भूखी

ज्वाला, जो सबको लील जाने को प्रस्तुत हो। दर्शक आश्चर्यचकित रह गए। हल्के नीले प्रकाश में लाल रंग की ज्वाला एक नया ही दृश्य प्रस्तुत कर रही थी। वह अँगूठों के बल खड़ी हुई, शराबी चितवन एक अदा से पूरे दर्शकों पर फेंकी और कमर को इस प्रकार से झटका दिया कि पुष्ट, उन्नत, गोल नितम्ब थरथरा उठे। एक सिहरन-सी दर्शकों में छा गई। हवा में काम की ऐन्द्रीय भूख सनसना उठी, और एक अदा के साथ वह पीछे को झुकी, तो उसके शरीर का उभार-उभार साकार हो उठा। समस्त उद्यान तालियों की गड़गड़ाहट से भर गया।

नीला हरा प्रकाश बिखर गया, और पंचरंगी प्रकाश स्टेज पर फिसलने लगा। पाश्चात्य नृत्य की कई मुद्राएँ सफलता के साथ मीना ने प्रस्तुत कीं और प्रत्येक मुद्रा काम को तीव्र करने वाली थी, शरीर को झनझनाने वाली और शान्त ठंडे खून में उबाल देने वाली थी। चुस्त कपड़े और उन 'टाइट' कपड़ों में फँसा उसका गौर शरीर, उसका तन्दुरुस्त भरा-भरा शरीर, प्रत्येक नवयुवक के लिए एक चेलेंज था, लापरवाही का एक ऐसा चैलेंज, जिसे लपकने के लिए हर बेताब था। उसकी वासनामय सिहरती लालिमा [illegible] आखें जब फिसलती-फिसलती किसी पर जाकर टिकतीं तो वह घायल [illegible] जाता, टूट जाता, बिखर जाता और बिखर कर भी एक अनिर्वचनीय पुलक और आनन्द से भर जाता। उसकी आँखों में नशा था, शराब की लपट थी, रूप की बेताबी थी और लापरवाही की स्याही से लिखा खुला निमन्त्रण था। जिस पर भी वह नजर पड़ती, वह सिहर उठता।

उसकी नजर टटोलती-टटोलती दो-एक बार आनन्द के चेहरे पर भी टिकी। नजरों के साथ-साथ अधर भी किंचित मुस्कराये—मानो कह रहे हों, 'करो मेरा उपहास, पर अब कहाँ जाओगे? क्या इस गिरफ्त से छूट सकोगे?' और एक अदा के साथ चितवन की ऐसी मार होती कि दूसरा होता तो झनझना उठता। पर आनन्द निर्विकार था, उसके चेहरे पर व्यग्रता के कोई भाव नहीं थे, उसके मुख पर वही दृढ़ता की छाप थी, वही मनोहर मुस्कान थी।

खीझकर नजरें हटीं और फिसल गईं। आगे की ओर सरक गईं, पर आनन्द के चेहरे पर कोई भाव नहीं पड़ा।

इसके बाद भी आध-पौन घण्टे तक विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन होता रहा, पर सभी मुद्राएँ एक दूसरी से बढ़कर कामोत्तेजक थीं। एक दूसरी से बढ़कर झनझनाने वाली थीं और एक दूसरी से बढ़कर खून खौलाने वाली थीं। योनि-मुद्रा तो प्रचण्ड ही थी। मीना ने दोनों घुटने टेके, हाथों को कमर पर, पीछे की अंगुलियों से सिर को छुवाने से उसका सीना फट पड़ने लगा, हँस-शावक उड़ जाने के लिए फड़फड़ा उठे और गोल पुष्ट जंघाओं का प्रदंशन किसी भी धैर्यशाली के लिए भी फिसलने के लिए पर्याप्त था। प्रत्येक मुद्रा एक से एक बढ़कर थी, लोगों की आँखों में विस्मय था, आश्चर्य था, प्रशंसा की ललक थी और रूप को पी जाने की, देह को बाँहों में जकड़ लेने की उत्कट चाह थी, सभी प्यासे थे, सभी क्षुधातुर थे, सभी बेचैन थे, सभी अशान्त थे।

एक झन्नाटे के साथ पाश्चात्य धुन बन्द हुई और स्टेज पर शुभ्र पार-दर्शी पर्दा पड़ गया, लोग अभी तक स्वप्निल वातावरण में [illegible] जादू के मोह में ग्रस्त थे, जैसेकि उन पर वशीकरण कर दिया गया है [illegible]र जब वे उससे छूटे तो उन्हें यथार्थता का बोध हुआ और बोध होते ही आकाश तालियों की गड़गड़ाहट से भर गया।

अब इसके बाद फ्रेंच और विलायती शराब का एक और दौर चलना था और उसके बाद मेहमानों को विदा होना था। शायद मनोवैज्ञानिक रूप से वकील साहब यह समझते थे कि नृत्य और मुद्रा-प्रदर्शन के बाद जो दर्शकों की प्यास बढ़ जाएगी, उसे शान्त करने के लिए ऊँची कीमती शराब ही आवश्यक होगी। शराब का इस प्रकार खुला दौर नियम-विरुद्ध था पर वकील साहब पहुँचे हुए थे, ऊँचे से ऊँचे तबके के लोगों से उनकी जान-पहचान थी और कानून को अपनी घर की अलमारियों में बन्द रखते थे। वे उदार थे तो सहृदय भी थे। पैसा लूटना जानते थे, तो लुटाना भी उन्हें आता था।

रति-मुद्रा और क्रीड़ा से क्लान्त-श्रान्त मीना को लेकर राय साहब

डाक्टर भारद्वाज के पास की कुर्सी पर आकर बैठ गये, टेबल के सामने मीना बैठ गई। परिश्रम और नृत्य से वह थक गई थी, ललाट पर छोटे-छोटे स्वेद-किरण थिरक रहे थे, परन्तु फिर भी वह प्रफुल्ल थी, अपनी सफलता पर गर्वित थी।

लोग उठ-उठकर आते, भूखी आँखों से मीना को देखते, उसे बधाई देते और अपने-अपने स्थान पर जाकर बैठ जाते। प्रशंसा के पुष्प-भार से वह दब गई थी। उसके हृदय में विश्व-विजय का सा भाव था और जब डाक्टर भारद्वाज ने कहा, 'मीना एक्सीलेंट, सुन्दर, अति सुन्दर', तब तो मीना हर्ष से फूली नहीं समाई। उसे ऐसा लगने लगा, मानो यहाँ बैठे लोग तुच्छ हैं, निम्न हैं, फूहड़ हैं, कलाहीन हैं और कला के उस स्तर तक पहुँचने में अक्षम हैं, जहाँ मैं इस समय हूँ। और यह भाव आते ही उसके शरीर में फुरहरी दौड़ गई और गर्व से उसकी गर्दन तन गई, चेहरे पर विश्व-विजयी के से भाव स्पष्ट हो गये।

सभी उपस्थित सज्जनों ने उसे बधाइयाँ दी थीं, उसके नृत्य की तारीफ की थी और उसके अंग-प्रदर्शन को सराहा था, पर सामने बैठे आनन्द के मुँह से प्रशंसा तो क्या, शब्द का एक बोल भी नहीं फूटा था। मीना ने इस बात को लक्ष्य किया। 'तो क्या इन्हें मेरा नृत्य पसंद नहीं आया ?' मीना ने मन ही मन सोचा, पर दूसरे ही क्षण उसके ये हृदयस्थ भाव लुप्त हो गये—'ऊँह ! कौन होता है आनन्द, जिसकी मैं परवाह करूँ ? क्यों मैं सोचूँ कि इसे मेरा नृत्य पसंद आया या नहीं ? यह क्या जाने, नृत्य क्या है ? शरीर की लोच क्या होती है ? आँखों का बाँकपन कितना कुटिल होता है, इसे यह अनाड़ी क्या जाने ? हुँह जंगली, असभ्य ···वल्गर···' मीना के होंठ धीरे, बहुत-धीरे बुदबुदा उठे।

खानसामा 'रूह अफजा' की चार बोतलें रख गया था। मीना ने एक उठा ली और 'स्ट्रॉ' से एक घूँट भर लिया। उसके सूखे गले को जरा राहत मिली, पर कान अभी तक आनन्द के मुँह से निकले धन्यवाद को सुनने हेतु बेताब थे। उसके कान उधर ही लगे हुए थे, शायद अब ही कुछ कह दे। वह अपने हृदय को वश में करने के लिए पूरा प्रयत्न कर रही थी।

'कौन है आनन्द ! जान न पहचान, केवल एक इसके तारीफ न कर देने से क्या बिगड़ जाता है'—पर फिर उधर देखते ही एक दूसरे ही आकर्षण में बह जाती। उसका निर्विकार चेहरा, सौम्य आकृति, प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व और ज्ञान-मंथन से तृप्त सतेज आँखें! कितना सम्मोहन है इसकी आँखों में, पर साथ ही कितनी दृढ़ता है इसके चेहरे पर। अभी तक जो मेरी प्रशंसा हुई, वह झूठी थी, नकली थी, मुझे फुसलाने या बहकाने का माध्यम थी। लोगों ने जो तारीफें कीं, वह मेरे व्यक्तित्व से, रूप से, यौवन से रीझकर की थीं। उसमें वास्तविकता कितनी थी, कौन जाने ? पर इस युवक की जो भी सम्मति होगी, वह ठोस, बेलाग और निर्लिप्त होगी। उसमें नकलीपन नहीं होगा, कृत्रिमता नहीं होगी, बल्कि उसमें होगी सचाई, वास्तविकता और यथार्थ तथ्य !—सोचते-सोचते मीना बेताब हो उठी। कब उसने 'रुह-अफजा' की बोतल समाप्त की, ध्यान ही नहीं रहा। उसने भटकते विचारों को एकत्र किया और थोड़ा खंखारकर सावधान होकर बैठ गई।

बात उसे ही छेड़नी पड़ी। बोली, 'क्यों साधु महाराज ! आज के इस प्रोग्राम में आपको कुछ संस्कृति के तत्त्व मिले ?' साधु महाराज' शब्द पर विशेष जोर दिया।

आनन्द ने डाक्टर भारद्वाज की ओर देखा, वे सम्भवतः किसी और ही विचार में लीन थे। फिर उसने अपनी दृष्टि मीना के चेहरे पर जमा दी। बोला, 'सोचता हूँ आज का यह इतना समय बरबाद ही हुआ।'

'क्यों, आपको मीना का नृत्य पसंद नहीं आया ?' अब की वकील साहब ने बीच में दखल दी।

'पसंद ! मैं कहता हूँ, निम्नता की यह पराकाष्ठा थी। वह नृत्य नहीं था, यौवन का एक उद्दाम वेग था जिसे अत्यन्त ही फूहड़ तरीके से प्रदर्शित किया गया।' आनन्द ने सतेज, पर गम्भीर स्वर में उत्तर दिया।

मीना तिलमिला उठी, जैसे कि हजार-हजार बिच्छुओं ने उसे डंस लिया हो। चेहरा क्रोध से लाल भभूका हो गया था। बोली, 'आप क्या जानो कि

नृत्य क्या होता है? आलोचना करनी बहुत सरल है आनन्द बाबू, पर उसकी वास्तविकता और मार्मिकता को समझना बहुत कठिन। और यही आपके साथ भी हुआ है। बिना सोचे-समझे और नृत्यकला का बिना ज्ञान प्राप्त किये ही आपने जो फतवा दिया है, वह अज्ञानता का ही सूचक है।' मीना एक ही साँस में इतना सब कुछ कह गई।

'क्षमा करें मीनाकुमारीजी, मैं जो कुछ भी कहता हूँ, पूर्ण उत्तर-दायित्व के साथ कहता हूँ। शब्दों की सीमा और सामर्थ्य का मुझे ज्ञान है, इसलिए मेरे शब्द कठोर अवश्य थे, पर वे यथार्थता के परिचायक थे। मैंने जो कुछ भी कहा है, अपने उन शब्दों पर मैं अभी तक दृढ़ हूँ।' आनन्द ने पूरे आत्मविश्वास के साथ कहा।

मीना ने जान लिया कि यह नवयुवक उनमें से नहीं है जो रूप और यौवन की गरमी से पिघल जाए। यह फौलाद है, जिस पर छोटी-मोटी चोटें कुछ भी प्रभाव नहीं करतीं। पर मीना भी तो दृढ़ थी, उसने कब झुकना सीखा है? उसने जो चाहा है वही हुआ है। जीवन में शायद ही उसे कभी असफलता का सामना करना पड़ा हो। लोग उसके जीवन में चट्टान बन-कर आये, पर मोम बनकर गये। उसका जीवन ही एक अनोखे वातावरण में पला था। स्वच्छन्द, स्वतन्त्र जीवन ही उसका ध्येय था और यही ध्येय उसके पिता ने उसे समझाया था। गुलामी और परतन्त्रता, फिर वह चाहे पति की हो या और किसी की, उसके लिए हेय थी। उसके पास रूप है, यौवन है, दौलत और खुशियाँ हैं फिर वह क्यों परवाह करे। पर आज··· आज! यह नवयुवक किस धातु का बना है जिस पर मेरा, मेरे सौन्दर्य का किंचित् भी प्रभाव नहीं पड़ता! पर मीना! तू अजेय है, इस प्रकार हार मानना और नीचा देखना तेरी 'डिक्शनरी' में नहीं लिखा'—सोचते-सोचते उसने गर्दन को एक झटका दिया और इस प्रकार से देखा मानो वह अजेय है, अविजित है।

वह आँखों में मद भर भरपूर नजर से आनन्द को देखती हुई बोली, 'तो मैं पूछती हूँ, क्या कमी थी मेरे नृत्य में? क्या खामी आई मेरे अंग-संचालन में? आपको कौन-सी त्रुटि दिखाई दी मेरे मुद्रा-प्रदर्शन में?···'

आनन्द किंचित् मुस्कराया, 'नृत्य, तुम इसे नृत्य कहती हो, मैं इसे नृत्य नहीं, विलास का फूहड़ प्रदर्शन कहता हूँ। यह अंग-संचालन नहीं, काम का, नग्नता का, निम्नता का एक रूप था। यह नृत्य की मुद्राएँ नहीं थीं, कामाग्नि प्रज्वलित करने की आहुतियाँ थीं जिसमें यह सारा समुदाय जल रहा है। अपने अंगों का, अंगों के उभार का यह पूर्णतः अश्लील प्रदर्शन था। मैं इसे नृत्य नहीं, नग्नता की पराकाष्ठा कहता हूँ और इससे घृणा करता हूँ।' आनन्द ने स्थिर मुद्रा से मीना की आँखों से आँखें मिलाकर कहा। एक की आँखों में आग की लपटें थीं, तो दूसरे की आँखों में शीतलता, शुभ्रता, सौम्यता।

'तो क्या आपको नृत्य आता है जो नृत्य पर साधिकार टिप्पणी कर रहे हैं! कहाँ शिक्षा पाई आपने नृत्य की? किससे दीक्षा ली आपने नृत्य की?' इस बार अपेक्षाकृत मीना का स्वर धीमा था।

आनन्द जरा-सा हँसा। होंठों के बीच-बीच से उसकी श्वेत दन्त-पंक्ति चमक उठी। बोला, 'प्रत्येक वस्तु को समझने के लिए उसमें पारंगत होना आवश्यक नहीं है मीनाजी। मुझे गाना नहीं आता है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि मुझे गायन कला की बारीकियों का ज्ञान नहीं है। मैंने कभी मदिरा नहीं चखी, पर इसकी अच्छाई-बुराई का मुझे ज्ञान है। वेश्या के कोठे पर मैं नहीं चढ़ा, पर उनके जीवन, उनकी मजबूरियाँ, विवशता और निम्नता का मुझे ज्ञान है। विश्व में हजारों कलाएँ हैं, उन सभी में हरेक पारंगत नहीं होता, पर उसकी अच्छाई-बुराई से वह परिचित हो सकता है। उसी प्रकार मैं इस प्रकार के तंग कपड़े पहनकर 'स्टेज' पर नहीं नाचा, पर इस नृत्य का जो फूहड़पन था, वह छिप नहीं सकता। तुम नारी हो, पर नारी का जो विकृत और विलासी रूप आपने प्रस्तुत किया, वह सराहने योग्य नहीं। नारी पहले नारी है, बाद में और कुछ। नारी का एक रूप विलासिनी भी है और मैं इसे मानता भी हूँ, पर उसका वह रूप प्रदर्शन की वस्तु नहीं, गोपन-रूप है। आज आपने जो प्रदर्शन किया वह नारी का गौरव नहीं था, इसीलिए यह हेय है, तुच्छ है, निम्न है।'

मीना विहँसी। हँसते समय उसके गालों पर छोटे-छोटे गड्ढ गये। बोली, 'एक बात पूछूँ आनन्दजी, माफ करना, क्या आपकी शा हो गई? यद्यपि यह प्रश्न प्रसंग से हटकर है, फिर भी किसी न किसी से इस प्रश्न से सम्बन्धित अवश्य है, इसीलिए पूछ बैठी।'

'नहीं! अभी तक मेरा विवाह नहीं हुआ।' आनन्द ने संक्षिप्त-उत्तर दिया।

'तो आनन्दजी, आप बताइए कि जब आप किसी नारी के सम्प में आये ही नहीं, फिर उसका कौन-सा रूप विलासी है और कौन-स अविलासी, इसका निर्णय आप कैसे कर सकते हैं? चीनी को बिना च उसका स्वाद वर्णित नहीं किया जा सकता। और मैं सोचती हूँ, इसीलि आपका कथन एकांगी है, अपूर्ण है, वास्तविकता से परे है।'

आनन्द हँसा। बोला, 'इसका उत्तर तो आपको पहले ही मिल चुका है मीनाकुमारी! मैंने अभी-अभी तो कहा था कि प्रत्येक वस्तु को समझने के लिए उससे साक्षात्कार आवश्यक नहीं है। चीनी भले ही मैंने नहीं चखी हो, पर मुझसे पूर्व तो कई लोगों ने चखी थी और उसके स्वाद का वर्णन किया था। वह तो कल्पित नहीं था, असत्य या अप्रामाणिक नहीं था, क्योंकि उन्होंने जो तथ्य दिये वे वास्तविकता पर आधारित थे। उनके तथ्यों को जान लेने से उन पदार्थों के मूल गुणों में अन्तर नहीं पड़ता; और उसी ज्ञान के आधार पर मैं चीनी के स्वाद का उतना ही सटीक और यथार्थ वर्णन कर सकता हूँ जो वास्तविक तथ्यों पर आधारित और प्रामाणिक है। आज एक वायुयान को चलाने की जानकारी कोई भी व्यक्ति साल-दो साल में ले सकता है और उस मशीनरी का ज्ञान भी तीन-चार वर्षों के प्रयत्न के बाद प्राप्त किया जा सकता है। पर इसके लिए राइट-बन्धुओं तक या उसके प्राथमिक परीक्षणों तक जाना जरूरी नहीं है। इसी विश्वास और आधार पर मैं यद्यपि स्टेज पर आपकी तरह नृत्य प्रस्तुत नहीं कर सकता, पर उसकी खामियों और विशेषताओं को तो समझ ही सकता हूँ। उस पर अपनी सम्मति व्यक्त कर ही सकता हूँ।' बोलते-बोलते आनन्द का स्वर ऊँचा हो गया और इसी स्वर के कारण आसपास

आमन्त्रित सज्जन इकट्ठे हो गये थे।

'तो मैं पूछती हूँ, आपका नाम आनन्दजी, आपने विवाह क्यों नहीं किया? क्या यह व्यक्ति की हीनता नहीं, शायद कुछ कमी हो, कुछ रिक्तता हो'—एक मोटी-सी महिला जो बातचीत में रस ले रही थी, बीच में ही कूद पड़ी, 'और मैं तो यहाँ तक कह सकती हूँ कि बिना विवाह के यदि पुरुष पूर्णता का दावा करे तो वह उसका दंभ है, उसके स्वयं के जीवन के प्रति छल है।'

आनन्द का चेहरा रक्त से लाल हो गया। फिर भी वह अपनी भावनाओं को वश में करता हुआ बोला, 'क्षमा करें श्रीमतीजी! मेरे कुछ स्वयं के सिद्धान्त हैं, अपने विचार हैं और खुद की कुछ मान्यताएँ हैं, और इन्हीं मान्यताओं के आधार पर मेरा विचार है कि विवाह कोई अत्यावश्यक वस्तु नहीं। मैंने जीवन-भर अविवाहित रहने का निश्चय किया है।'

एक क्षण में मीना के चेहरे पर कई भाव बने और लुप्त हो गये। उसके होंठ बुदबुदा उठे, 'पर क्यों?'

'इसलिए कि मेरा एक निश्चित ध्येय है और उस ध्येय की पूर्ति में नारी एक बंधन है, ऐसा बंधन जो मनुष्य को जकड़कर निष्क्रिय बना देता है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार किसी तोते के पंख कतर देने पर वह चाहते हुए भी उड़ नहीं सकता, उसी प्रकार मनुष्य की गति के भी पर कतर दिये जाते हैं और वह सचेतन-निष्प्राण गतिहीन मानव-मात्र रह जाता है। मैं अपने ध्येय को प्राथमिकता देता हूँ, बाकी अन्य सबको बाद में, और उस ध्येय में यदि नारी भी बाधक है तो वह मेरे लिए त्याज्य है।' कहते-कहते आनन्द की आँखों में चमक आ गई।

रोचक विषय और गरमागरम बहस से आकर्षित होकर प्रायः सभी मेहमान आनन्द और मीना के इर्द-गिर्द हो गये थे।

मीना हँसी। उसकी हँसी में लापरवाही के साथ-साथ चुनौती का भी स्वर था। बोली, 'आनन्द! तुम जिसे लक्ष्य या ध्येय कहते हो, वह ध्येय नहीं, तुम्हारे जीवन की विडम्बना है, अपने स्वयं के जीवन के प्रति

विश्वासघात है। तुम मानव नहीं, पत्थर हो, क्योंकि तुम्हारे जीवन में रस नहीं, सौन्दर्य को देखने की शक्ति नहीं और सौन्दर्यांकन की क्षमता नहीं। मानव में तो कोमल भावनाएँ होती हैं, जीवन की मधुरता और आनन्द की सन्तुष्टि होती है, पर पत्थर ... पत्थर इन सबसे शून्य होता है और इस दृष्टि से तुम भी एक निश्चेष्ट पत्थर से ज्यादा नहीं, तभी तो तुम सौन्दर्य देखकर भी निर्विकार बने रहे, तभी तो तुम सौन्दर्याकर्षण में भी निश्चेष्ट बने रहे, जड़ और अमूर्त बने रहे। तुम जैसे नीरस व्यक्तियों का इस रंगीन विश्व में क्या स्थान है? तुम्हें तो जंगलों में डेरा लगाना चाहिए था, वहाँ एकस्थ होकर बैठे रहते, समाधि लगा लेते, तुम पर धूल जम जाती और सरी-सृप निवास कर अपने को धन्य समझते, वहीं अवश्य तुम अपने ध्येय में सफल हो जाते।' कहते-कहते मीना के मुखमंडल पर एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट खिल उठी, जो आनन्द को भी प्रभावित किये बिना नहीं रह सकी।

आनन्द स्थिर था। यद्यपि उसका मानस आन्दोलित था, पर उसका कोई प्रभाव चेहरे पर नहीं झलक रहा था। उसी शान्त वाणी में वह बोला, 'देवी! मैं समझता हूँ, आप ... में हैं। आपकी आँखों के सामने विश्व की रंगीनियाँ ही थिरक रही हैं, उसका मादक इन्द्रधनुष ही आपकी आँखों में तैर रहा है। सब कुछ होने पर भी नारी अपने-आपको समझने में अक्षम रहती है और इसी अक्षमता में वह मानव के पाँव की बेड़ी बनकर रह जाती है। यदि स्पष्ट ही सुनना चाहो तो मैं कहूँगा, नारी मानव के पतन का पहला गढ़ा है जिसमें पड़कर वह जीवन-भर बाहर नहीं आ सकता। उसका ध्येय मिट जाता है, जीवन की वास्तविकता को भुला बैठता है और कृत्रिम सौन्दर्य के मायाजाल में वह इतना अधिक भटक जाता है कि उसे स्वयं का ही ज्ञान नहीं रहता। इसीलिए मैं नारी से दूर हूँ, दूर ही रहना चाहता हूँ। वह विष है, घातक विष, जिसके स्पर्श से मानव शनैः-शनैः मिट जाता है, मिटता ही चला जाता है।'

मीना ने इसे अपने लिए चुनौती समझा। उसके चेहरे पर व्यंग्य की जहरीली मुस्कराहट फैल गई और उसी व्यंग्य-भरी मुस्कराहट के साथ

बोली, 'यह तुम्हारे जीवन की प्रवंचना है आनन्द! एक ऐसा शानदार छल, जो स्वयं को ही दिया जा रहा है! मैं समझती हूँ, अभी तक तुम्हारी शिक्षा अपूर्ण है, ज्ञान अधूरा है, पुस्तकों की रटी-रटाई बातों पर ही जीवन को लगा बैठे हो। तुमने जिस आधार पर जीवन को टिकाया है, वह बालू की भुरभुरी दीवार है, जो किसी भी समय थरथराकर ढह सकती है, और जब वह ढह जाएगी, तो उसके साथ ही साथ तुम्हारे आदर्श और तुम्हारा लक्ष्य, तुम्हारा ज्ञान और तुम्हारे विचार बिल्लौरी गिलास की तरह टूटकर चकनाचूर हो जाएँगे, परन्तु उस समय बहुत देर हो जाएगी! पीछे मुड़कर देखोगे तो रिक्तता ही मिलेगी और आगे का पथ अंधकारपूर्ण। उस समय तुम्हें जो कुछ भी मिलेगा, वह स्वयं की आत्महत्या से बढ़कर कुछ भी नहीं होगा।' और कहते-कहते मीना ने एक भरपूर दृष्टि समस्त उपस्थित समुदाय पर डाली।

वह आगे कहती गई, 'एक और बात! अभी तुमने नारी को विष कहा, घातक विष! मैं इसे तुम्हारे जीवन का छल ही मानती हूँ। नारी विष नहीं, अमृत है, मधुर मादक और आकर्षक अमृत। नारी के बिना मानव का अस्तित्व ... है? वह कहाँ पर खड़ा होकर अपने-आपको मानव कहेगा। धन-वैभव को ठुकराने वाला योगी भी नारी के सौन्दर्य में उलझकर जीवन हार बैठता है। नारी का सौन्दर्य त्याज्य नहीं आनन्द! वह मानव-जीवन की कसौटी है, जिस पर मानव की वास्तविक परीक्षा होती है। नारी का सौन्दर्य विषमय नहीं, मंगलमय है, जो मन को, हृदय को, आत्मा को शान्ति और शीतलता प्रदान करता है, और इन्हीं अर्थों में ईश्वर का वह मंगलमयी रूप माना जा सकता है।' कहते-कहते मीना की आँखों में चमक-सी आ गई।

दर्शक स्तब्ध थे। मीना के प्रत्येक शब्द हथौड़े की तरह हृदय पर चोट कर रहे थे। मीना के रुकते ही फुसफुसाहट शुरू हो गई, 'गजब कह रही है मिस राय'—'शानदार चपत लगाया है इस पाखण्डी के मुंह पर—'वाह! कितना सटीक उत्तर है मीना का।' वकील साहब स्वयं मीना के तर्कों पर विस्मयाभिभूत थे। कोर्ट में उन्होंने स्वयं कई बार जिरह की थी, पर आज

जैसा मुकाबला था, वह अनन्य था। इसके साथ ही जैसे तेज और सटीक तर्क मीना की ओर से प्रस्तुत किये जा रहे थे, वे सराहने योग्य थे। उन्हें पहली बार अपने आप पर, मीना के पिता के रूप में रोमांच आया। वे विस्मित थे, चकित थे और प्रशंसापूर्ण दृष्टि से मीना को देख रहे थे।

'आपने बहुत कुछ कह दिया मीना जी, और यह स्वाभाविक भी था कि एक नारी नारी जाति की वकालत करे। और इस पर भी आप एक योग्य वकील की पुत्री हैं। आपके शब्दों में प्रामाणिकता का पुट है। पर एक भूल कर रही हैं आप, आपने अभी जीवन का रंगीन पहलू ही देखा है। पर इस रंगीन पहलू के पीछे कितनी चीत्कारें हैं, कितना दारिद्र्य और अभाव है, कितना दुःख और कायरता है, उस पर अभी तक आपका ध्यान नहीं गया। और जा भी कैसे सकता था जबकि आपके चारों ओर स्वर्ण की पट्टी बँधी पड़ी है। मैंने उस जीवन को भोगा है, परखा है और निकट से देखा है, इसीलिए मैं इस पर साधिकार कह रहा हूँ।' आनन्द दृढ़, पर अपेक्षाकृत नम्र शब्दों में बोला।

मीना खिलखिला पड़ी, उसकी हँसी में जैसे हजारों-हजारों उपेक्षा के भाव तैर रहे हों। हँसी के बीच बोली, 'पर आनन्द जी! इसमें नारी का बाधक रूप कहाँ है? क्या नारी कहती है तुम उधर मत देखो, उनका काम या सेवा-सुश्रूषा मत करो। अपने तर्कों को आप ही काट रहे हो आनन्द! तुम्हारे विचार एकांगी हैं, मेरे नहीं। तर्क और दर्शन के ताप से तुम्हारी जो सरसता थी, वह लुप्त हो गई है। दर्शन के मोटे-मोटे पोथों ने तुम्हें बुद्धि तो दी, पर आत्मा के रस को भी सुखा दिया, जिसके कारण तुम सप्राण होते हुए भी निर्जीव बन गये। सौन्दर्य तुम्हारे लिए व्यर्थ और तुच्छ वस्तु बन गया।' और कहती-कहती मीना एक बार फिर हँस पड़ी।

'आप भूलती हैं मीना जी!' आनंद ने कहा, 'सौन्दर्य चिरस्थायी नहीं, वह भ्रम है, छल है, धोखा है। नारी इसी सौन्दर्य पाश से मानव को बाँधती है। सौन्दर्य एक बनावट है, स्वाभाविकता नहीं और जो स्वाभाविक नहीं, वह पाप है। बनावट और कृत्रिमता जीवन का पाप है और वास्तविकता जीवन का पुण्य। और यही मानव-जीवन का सत्य है जिसे

मैं मानता हूँ। संसार में जितने भी कष्ट हैं, प्रवंचना और रिक्तता है, वह इसी सत्य से विमुख होना है और विश्व में जितना भी आनन्द, सुख और शान्ति है, वह इसी सत्य के साक्षात्कार स्वरूप है और इस कसौटी पर सौन्दर्य भी कृत्रिम है, बनावटी और क्षणभंगुर है, इसलिए वह त्याज्य है।' आनन्द के शब्दों में दृढ़ता थी।

मीना ने अपनी बड़ी-बड़ी पलकें ऊपर उठाईं। बोली, 'तुम भ्रम में हो आनन्द! सौन्दर्य कृत्रिम और बनावटी नहीं, वह ईश का मंगलमय रूप है। कृत्रिम सौन्दर्य सौन्दर्य नहीं, छल है, धोखा है और मानव की प्रवंचना है।' मीना के शब्दों में गांभीर्य था।—और कहते-कहते उसने अपनी नशीली आँखों का भरपूर वार आनन्द के चेहरे पर किया।

आनन्द एक बार तो उस गिरफ्त में आ गया, पर तुरन्त ही सँभल गया। बोला, 'आपके विचार अपनी जगह सही हो सकते हैं, मैं उन्हें झुठलाना नहीं चाहता। पर केवल विश्वास का आश्रय लेकर आपकी बात को मान लेना मेरे लिए संभव नहीं होगा। आँख मूँदकर कोई बात मान लेना अंधविश्वास के अतिरिक्त कुछ नहीं। आपके इन शब्दों ने मेरे हृदय को गंभीर ठेस पहुँचाई है, मेरे विचारों में झनझनाहट पैदा कर दी है, पर केवल इसी से ही मैं अपने अर्जित विचारों को छोड़ नहीं सकता। मैं अभी तक इस धारणा पर दृढ़ हूँ कि नारी छल है, मानव-पतन का एक गड्ढा, एक ऐसा शानदार धोखा, जो मानव हँसते-हँसते स्वीकार करता है। नारी का बंधन मेरे लिए हेय है और विवाह उस बंधन को दृढ़ता प्रदान करने वाला एक उपकरण ही है, इसीलिए विवाह को मैं व्यर्थ की वस्तु समझता हूँ।'

मीना मन ही मन मुस्करा दी, पर उसके गौर रक्तिम चेहरे पर भोलापन खिल उठा। उसकी आँखों में चमक थी। बोली, 'यह तर्क का विषय नहीं, इस प्रश्न का हल हमारा जीवन एक न एक दिन अवश्य ही दे देगा और यदि यह जीवन भी इस पहेली का हल प्रस्तुत न कर सका तो फिर कभी सुलझा लिया जाएगा। परन्तु मेरा विश्वास है, हमें अपने जीवन को अबाधित रूप से मुक्त सरिता की भाँति बहने देना चाहिए।

जीवन का मुक्त प्रवाह निश्चय ही इस समस्या का सुन्दरतम हल प्रस्तुत करेगा।' और कहती-कहती मीना उठ खड़ी हुई।

रात काफी बीत चुकी थी। आकाश दैदीप्य नक्षत्रों से खचाखच भर गया था। मीना के साथ-साथ उपस्थित समुदाय भी उठ खड़ा हुआ और अपनी-अपनी 'कारों' की ओर लौट पड़ा। आनन्द भी डाक्टर भारद्वाज के साथ उनके इंगित पर उठ खड़ा हुआ और साथ ही साथ चल पड़ा।

२

रात खूब गहरी नींद आई। प्रातः चिड़ियों की चहचहाहट के साथ ही मीना की आँख खुल गई। उसके अंग-अंग में रात की मस्ती और अल्हड़-पन भरा था और इस समय तो उसका सारा शरीर एक सुखद आलस्य में भीग रहा था। उसने उठकर अँगड़ाई ली और पूर्व के ओर की खिड़की खोल दी। हवा का एक तीव्र और मधुर झोंका भीतर आया और कमरे में लगी तस्वीरों को फड़फड़ाकर चला गया। सारा कमरा एक नवीन आह्लाद से भर उठा। मीना को रात की घटना एक-एक कर याद आने लगी। 'तो क्या आनन्द भी एक हवा का झोंका है जो मेरे जीवन को फड़-फड़ाकर चला जाएगा। नहीं···यह नहीं···वह उच्छृंखल नहीं, उसमें गंभीरता है, आँखों में तेज और सम्मोहक प्रभाव है। पर वह जड़ है, जड़वत् है, जीवन के एक ही पहलू का विकास हुआ है, जीवन का दूसरा जो पहलू है, उस पर उसने ध्यान ही नहीं दिया, फलस्वरूप वह तो अविकसित ही रह गया। जीवन-डाली की दो शाखाओं में से ज्ञान की शाखा तो पल्लवित और पुष्पित होकर विकसित होती गई, पर दूसरी शाखा जिसे

हृदय-रस की जरूरत थी, न मिलने से मूर्च्छित होती गई, अज्ञान और अभिमान के पाले से वह अविकसित ही रह गई। उसका जीवन एकांगी और निष्प्राण-सा हो गया।' सोचती-सोचती मीना मुस्करा उठी।

'पर है दृढ़निश्चयी, साहसी, अपनी मान्यताओं और सिद्धान्तों पर मर मिटने वाला। पर कितना भोला है, हृदय कितना स्वच्छ है; कहीं लुकाव-छिपाव नहीं, जो भी हृदय में आया, स्पष्टता से सबके सामने दोटूक कह दिया। विवाह उसके लिए व्यर्थ है, नारी विष की पुड़िया है, मानव के राह की बाधक है, पैर की बेड़ी है और इसीलिए बेचारा नारी से भागता रहा है, नारी तो क्या, उसकी छाया तक से दूर रहा है। हूँह! पर नारी के बिना पूर्णता कहाँ है? बेचारा···उसका जीवन पूर्ण होते हुए भी अपूर्ण है, शिक्षित होते हुए भी अंधकारग्रस्त है। उसने नारी जाति को 'चैलेंज' दिया है, मैं उसका 'चैलैंज' स्वीकार करूँगी। उसके नीरस जीवन में सरसता की धारा बहा दूँगी। जीवन की उजड़ी और अविकसित डाली को हरी-भरी बना दूँगी। जीवन की जो मधुर मुस्कान तर्क और दर्शन के नीचे दब गई है, मैं उसे पुनः प्राण दूँगी। उसके जीवन में आनन्द का संचार करूँगी। देखती हूँ, कैसे भागता है। कैसे कहता है कि नारी छल है, छलना है, प्रवंचना है।' और सोचते-सोचते मीना पलंग पर से उठ खड़ी हुई।

प्रातःकालीन क्रियाओं से निबट मीना ने हल्का-सा शृंगार किया और गाड़ी निकालकर डाक्टर भारद्वाज की कोठी की ओर चल पड़ी। आनन्द डाक्टर भारद्वाज की कोठी में ही अलग से बने एक कमरे में रहता था। भोजन वह बाहर ही कर लेता था और वह कमरा मात्र अध्ययन के लिए ही रख छोड़ा था। गाड़ी 'पोर्च' में खड़ी कर मीना ऊपर चढ़ गई। वह कई बार यहाँ आई थी, कोठी के कमरे-कमरे से वह परिचित थी।

डाक्टर भारद्वाज सुबह ही चाय पीकर बाहर चले गये थे। मिसेज भारद्वाज पलंग पर लेटी कोई अमेरिकन 'नावेल' पढ़ रही थी। 'नाइट ड्रेस' अभी तक उसके शरीर से लिपटी थी।

'गुड मार्निंग आंटी जी!'—प्रफुल्लता से मीना ने कमरे में घुसते हुए

कहा।

'आओ, आओ मीना ! भई लाजवाब हो तुम,' कहती-कहती मिसेज भारद्वाज पलंग पर उठकर बैठ गईं, 'कल रात तुमने जो तर्क दिये, वे मौलिक ही नहीं, अपितु किसी को भी झकझोरने के लिए भी काफी थे। आनन्द तो बेचारा रात से ही किसी गूढ़ चिन्तन में पड़ा है कि कुछ बताता ही नहीं।'

'अब कहाँ है ? समाधि लगा रहे हैं···।'

मिसेज भारद्वाज हँस पड़ीं। बोलीं,'शायद 'लॉन' में होगा, सुबह-सुबह बगीचे में टहलना उसे बहुत प्रिय है।'

मीना उठ खड़ी हुई, 'देखती हूँ किस उधेड़बुन में लगे हैं ? दर्शन की कौन-सी गुत्थी सुलझा रहे हैं।' कहती-कहती मीना कमरे के बाहर हो गई।

'अरे, चाय तो पीती जाओ, अभी···' पीछे से मिसेज भारद्वाज की आवाज सुनाई दी।

'फिर कभी आंटी।' और कहती-कहती वह सीढ़ियों से नीचे उतर गई।

लॉन में एक मौलश्री पेड़ के नीचे हरी दूब पर तने से पीठ टिकाए आनन्द विचारों में निमग्न था। कल की सन्ध्या उसके जीवन में आलोड़न-विलोड़न लेकर आई थी। उसका जीवन शान्त था—सरल, निष्कपट, निर्वेग सर-नीर की भाँति, पर कल मीना ने उस शान्त पानी में पत्थर फेंककर जो विचार ऊर्मिया बनाई, वह जीवन के पूरे नीर को उद्वेलित करने के लिए काफी थी। उसे अपना बचपन याद आया, शैशव याद आया और उन कड़ियों से जुड़ती-जुड़ती याद आई कल की कड़ी। एक गंभीर गड़गड़ाहट और तूफान-सा घोष उसके दिल में हो रहा था। विचारों के वेग को न सँभाल सकने के कारण सोचते-सोचते आनन्द पैर फैलाकर मौलश्री के तने से पीठ टिकाकर बैठ गया था। उसके विचार तूफान की तरह चतुर्दिक विचर रहे थे, और वह प्रयत्न करके भी उन्हें समेट पाने में असमर्थ था।

मीना हौले-हौले लॉन में घुसी। देखा, आनन्द किसी विचार में लीन

है। वह चुपचाप उसके पास जाकर बैठ गई। तब तक भी उसका ध्यान नहीं टूटा।

'सो रहे हो क्या आनन्द ?' मीना मुस्कराती हुई आनन्द की आँखों में झाँकती हुई बोली।'

'ऐं···नहीं तो···।'

'सोओ नहीं आनन्द ! निद्रा को त्याग कर जीवन में विचरो ! दर्शन, ज्ञान और अहंकार की रूखी-सूखी, ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों पर बहुत भटक चुके, अब तो जीवन की समतल भूमि पर पाँव रखो। 'दर्शन' के जाल में अपने-आपको उलझाये रखना जीवन के साथ अन्याय है। यह ज्ञान नहीं, तर्क का क्षेत्र नहीं, कायर होकर जीवन से पलायन है। कणाद, पातंजलि अत्रि भी तो दर्शन से साक्षात्कार कर चुके थे, पर वे तो जीवन से भागे नहीं, जीवन से छल नहीं किया ? दर्शन पढ़कर भी तुम इस बात से अनभिज्ञ रहे। 'कण्व' दर्शन और तर्क की ऊबड़-खाबड़ घाटियों में घूमने पर भी शकुन्तला की विदा पर हिचक-हिचककर रोया था। क्या 'शाकुन्तल' पढ़कर भी इस कठोर सत्य को भुला बैठे ? शायद तुम्हारे [illegible]र ने तुम्हें इस ओर जाने ही नहीं दिया होगा, क्योंकि तुम्हारी विचा[illegible]रा एकांगी थी, अपूर्ण थी।' मुस्कराकर मीना बोली।

'परन्तु वे तपोवनचारी थे, प्रकृति की गोद में उनका विचरण था। संसार से दूर, इस कोलाहल से तो वे बहुत-बहुत दूर थे।' सरलतापूर्वक आनन्द बोला।

'यही तो भूल थी आनन्द ! वे तपोवन जाकर भी तपोवनचारी न बन सके। भारद्वाज जंगल में रहकर भी स्त्रियों का मोह न छोड़ सके। विश्वामित्र एक हरिणी के पीछे पागल की तरह भटकते फिरे। च्यवन यौवन क्षीण होने पर भी काम को शान्त न कर सके और निरन्तर कामार्चन में रत रहे। याज्ञवल्क्य, अत्रि, कणाद—मैं पूछती हूँ, कौन तपोचारी था? कण्व लाड़ली शकुन्तला के बिना एक क्षण काटना दुष्कर समझते थे। यह तपोवन निवास नहीं था आनन्द, जीवन से पलायन था। इस संघर्षमय जीवन में टिकना और उसके घात-प्रतिघातों को सहन करना प्रत्येक के

वश का नहीं। अच्छे से अच्छा महारथी उखड़ जाता है, और या तो आत्महत्या कर लेता है या भभूत रमाकर जंगल में भाग जाता है। पर यह मानव का इष्ट नहीं, यह उसकी कायरता है। जीवन से पलायन है, क्लैव्यता और नपुंसकता है। मैं पूछती हूँ, आनन्द, इसमें मानव कहाँ है? संघर्ष कहाँ है? कर्मण्यता कहाँ है?'—कहती-कहती मीना किंचित् लेट गई।

आनन्द दो क्षण मौन रहा। बोला, 'यह मानता हूँ मीना, कल का दिन मेरे जीवन का युगान्तरकारी मोड़ था। अभी तक मेरी विचार-सरणी एक ओर ही बह रही थी और मैं मानता हूँ कि यह मेरी एकांगिता थी, जीवन का एक ही पहलू था जो स्पष्ट हो रहा था, पर इस घटना ने मेरे जीवन में हलचल मचा दी है। तुम्हारे तर्कों और बेलाग सत्यों ने मुझे सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। मेरे गत जीवन पर जब दृष्टि डालता हूँ, तो मुझे ठिठककर खड़ा रह जाना पड़ता है और···और···'

'और क्या?' मीना विहंसती बोली।

'और यह कि क्या इतने वर्षों तक साधना कर मैंने जो भी उपलब्ध किया था, वह व्यर्थ था? क्या इस लम्बे जीवन की जो भी थोड़ी-बहुत उपलब्धि थी, वह तुच्छ, नगण्य और फेंक देने के सदृश थी। जीवन की कठोर साधना, नारी से पलायन, लक्ष्य तक पहुँचने की दुर्दमनीय चाह और एकनिष्ठ जीवन, क्या ये सब व्यर्थ हैं, एकदम से इन सबको छोड़ देना मेरे वश का भी तो नहीं है।'

आनन्द एक क्षण रुक मीना के चेहरे की ओर देखता हुआ पुनः बोला, 'नहीं मीना, नहीं! मैं इसे छोड़ नहीं सकता, इतना आगे आकर मैं अब इस उपलब्धि को व्यर्थ नहीं मान सकता और क्या भरोसा कि आज से भी दस वर्ष बाद फिर कोई तुम्हारे सदृश मेरे जीवन में आवे और इन दस वर्षों की साधना को तुच्छ, नगण्य और व्यर्थ ठहरा दे, तो क्या मैं फिर वहीं आकर खड़ा हो जाऊँगा, जहाँ से मैं चला था?'

मीना उठ बैठी, 'अब आपके जीवन में ऐसा मौका नहीं आयगा आनन्द, कि जहाँ खड़े होकर गत वर्षों के लिए प्रायश्चित्त करना पड़े। एक और

भी भूल कर रहे हो तुम। मैं अब आपको 'तुम' ही कहना ज्यादा उचित समझूँगी आनन्द, और वह यह कि मैं तुम्हारे गत जीवन की बाधक नहीं, उसे झुठलाने और व्यर्थ बताने वाली नहीं। अपितु वह उपलब्धि भी सत्य है, उसे फेंक देने को किसने कहा?'

'पर दो नावों में पाँव रखकर सरिता तो पार नहीं हो सकती मीना जी!'

'मीना जी नहीं, केवल मात्र मीना, इस औपचारिकता के लबादे को उतार फेंको आनन्द, केवल मीना कहना ही स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता का सूचक है।' मीना बात काटती हुई बोली।

'तो मैं यह कह रहा था मीना कि दो विपरीत विचारधाराओं को एक जगह एकत्र और उनमें सामंजस्य कर पाना अत्यन्त कठिन है। दोनों विचारधाराएँ दो ध्रुव हैं, दोनों विपरीत हैं, दोनों का सामंजस्य कठिन ही नहीं, असम्भव-सा भी है।'

मीना खिलखिलाकर हँस पड़ी 'दोनों विपरीत नहीं आनन्द, एक-दूसरे की विरोधी नहीं, अपितु तुम्हा[illegible] दोनों विचारधाराएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। दोनों का सुखद-सामंजस्य [illegible] जीवन की पूर्णता है। 'भोग में योग और योग में भोग' जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। इसीलिए, जब आज से आगे दस वर्ष बीत जाएँगे और उस समय यदि तुम पीछे मुड़कर भी देखोगे तो निराशा हाथ नहीं लगेगी, अपितु तुम देखोगे कि तुमने जो मार्ग अपनाया है वह इन दोनों के सामंजस्य से पुष्पमय, सौरभमय और स्वच्छ बन गया है।' कहती-कहती मीना उठ खड़ी हुई।

आनन्द भी साथ ही साथ उठ खड़ा हुआ। हरी-हरी दूब पाँवों को शीतलता प्रदान कर रही थी। दोनों उस लॉन पर धीरे-धीरे विचर रहे थे।

'तुम्हें यह अच्छा लगता है, आनन्द!' मीना ने स्वभावतः पूछा।

'क्या?···क्या अच्छा लगता है मुझे?'

'यही, इस प्रकार बगीचे में घूमना, पक्षियों का मुक्त कलरव सुनना, और अपने आपको कुछ समय के लिये प्रकृति की गोद में निर्द्वन्द्व, निर्मुक्त भाव से छोड़ देना।' मीना चलती-चलती भाव-प्रवण आँखों से देखती हुई

बोली।

'हाँ मीना ! प्रकृति मुझे बचपन से ही प्रिय रही है। मेरे माता-पिता सम्भवतः मुझे बहुत छोटी उम्र में छोड़कर मर गए। मुझे तो इस समय उनका चेहरा भी याद नहीं। उसके बाद मेरा लालन-पालन चाचा के घर हुआ। चाचाजी यद्यपि मितभाषी, मधुर और शिष्ट थे, मेरे प्रति उनका अनुराग पुत्र से भी बढ़कर था, पर दुर्भाग्यवश चाचाजी का स्वभाव इससे ठीक विपरीत था। वे लड़ाकू प्रवृत्ति की और जोड़-तोड़ करने में माहिर थीं। मेरी उपस्थिति संभवतः उनके लिए बाधक थी। इसलिए नाना प्रकार की यंत्रणाएँ मुझे देने में वे अपना गौरव समझती थीं। और उस समय भी मैं दौड़कर नदी के किनारे पहुँच जाता, उसकी कलकल ध्वनि को अपने जीवन में भरता और काँस के छोटे-छोटे पौधों के बीच में दौड़ लगाता। आज भी वह दृश्य मेरी आँखों के सामने जब तैर जाता है, तो मेरे सारे शरीर में फुरहरी-सी दौड़ जाती है।

'मेरा वह बाल्यकाल संघर्षमय था। चाची का कठोर अनुशासन मेरे जीवन की विडम्बना था तो प्रकृति का साहचर्य मेरे जीवन की उपलब्धि। मैं प्रकृति के सौन्दर्य को आँखों के रास्ते चुपचाप हृदय में उतारता रहता था।' आनन्द ने सहज स्वाभाविकता के साथ कहा।

'पर आनन्द ! तुमने जो सौन्दर्य आँखों के रास्ते हृदय में उतारा, वह वहाँ टिक नहीं सका, क्योंकि वहाँ पहले से ही घृणा, नफरत और विडम्बना ने अपना डेरा जमा रखा था। चाची ने जो वातावरण तुम्हारे चतुर्दिक निर्मित किया, उससे तुम कठोर से कठोरतर होते गये। चाची के अत्याचारों ने तुम्हारे दिल में नारी जाति के प्रति घृणा का भाव भर दिया, और चाचाजी के रिक्त और दुःखमय जीवन ने तुम्हें विवाह शब्द से ही भागने की प्रेरणा दी। प्रकृति की जो महक तुम्हारे दिल में रचनी चाहिए थी, वह रच नहीं सकी। एकांतता, नारी जाति के प्रति घृणा और विवाह-बंधन से भागना—ये भावनाएँ पल्लवित होती गईं, पत्रित और पुष्पित होती गईं। तुम्हें दूसरी ओर देखने का अवसर ही नहीं मिला।' मुस्कराती हुई मीना बोली।

आनन्द चलते-चलते भी एकटक मीना को देखता रहा। 'हाँ, आनन्द ! यह सत्य है, वास्तविक तथ्यों से परिपूर्ण। पर तुम्हारे दिल में सौन्दर्य की भावना मिटी नहीं थी, दब जरूर गई थी और अवसर पाकर बाहर प्रस्फुटन के लिए बेताब थी। कल तुमने सौन्दर्य देखा, निश्छल और अकृत्रिम सौन्दर्य। तुम उससे अभिभूत भी हुए, पर उस घृणा ने सौन्दर्य का चित्रण व्यंग्य में ही किया, उसे व्यंग्य और अश्लीलता में ही परखा। यह दोष तुम्हारा नहीं आनन्द, परिस्थितियों का दोष था। परिस्थितियों ने तुम्हारा निर्माण ही एकांगी कर दिया था।'

आनन्द देखता रहा। उसकी आँखें दूर गगन में न मालूम क्या कुछ ढूंढ़ रही थीं।

'वे देखो आनन्द ! गगन में पक्षी कितने उन्मुक्त भाव से उड़ रहे हैं—स्वच्छंद, निश्चिन्त, घृणा, क्रोध, श्लीलता-अश्लीलता की बिना परवाह किए। तुम भी अपना जीवन इसी प्रकार मुक्त कर दो, उसे तर्क की रस्सियों में बाँधने की जरूरत नहीं। वह देखो, कपोतों के जोड़े कितनी खुशी से हुमसकर उड़ रहे हैं। सब जोड़ों में हैं, सबसे आगे उड़ने वाला जोड़ा भी उतना ही प्रसन्न है, जितना वह सबसे पीछे—एक तरफ उड़ने वाला कपोत-जोड़ा !' और कहते-कहते मीना ने आकाश में उड़ रहे एक जोड़े की ओर इंगित कर दिया।

आनन्द हरी दूब पर नंगे पाँव चलता रहा। उसके मस्तिष्क के वातायन एक के बाद एक करके खुलते ही जा रहे थे।

'पर परवाह मत करो आनन्द, मैं तुम्हारे नीरस हृदय को ठूँठ नहीं बना रहने दूँगी। उस पर प्यार की कलम लगाऊँगी। उस ठूँठ को भी सरस और हरा-भरा बना दूँगी। तुम्हारा जो जीवन एकाँगी और अपूर्ण है, मैं उसे समय की थपकियों से पूर्ण कर दूँगी। फिर उसमें नीरसता नहीं रहेगी। शुष्कता और क्षुद्रता नहीं रहेगी। वह सरस बनेगा, हरी-भरी कोंपलों से आच्छन्न होकर झूमने लगेगा ; और उस पर स्नेह की दृष्टि से वह महकने लगेगा, गमकने लगेगा। उसकी सुगन्ध से दिक्-दिगन्त सुखद संचार से भरकर झूमने लग जाएगा।'

आनन्द ने प्रश्नवाचक दृष्टि से मीना को देखा। क्या मायाविनी का कोई नवीन फंदा है जिसमें मुझे फंसाने का उपक्रम हो रहा है या अपने विवाह की पूर्व-पीठिका के लिये मुझे तैयार किया जा रहा है? क्या उद्देश्य है इसका? उसने एक बार फिर सतर्क आँखों से मीना की आंखों में झाँका; पर वे निष्कपट थीं, उनमें कहीं भी छल-छंद दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। हार कर आनन्द ने दृष्टि नीचे कर ली।

'कर ली अपनी तसल्ली आनन्द!' उसी प्रकार आनन्द के चेहरे को देखती हुई वह बोली, 'सोचा होगा, विलासिनी का यह भी कोई फँदा होगा जिसमें तुम्हें फंसाया जा रहा होगा। नारी तुम्हारी दृष्टि में धोखा है न, खूबसूरत और शानदार धोखा।' और कहते-कहते मीना खिलखिलाकर जोरों से हँस पड़ी।

नौकर एक छोटी-सी टेबल ले आया था और उस पर चाय का सामान सजा रहा था। तीन-चार मुड्ढे भी लाकर रख दिये थे। पीछे-पीछे 'नाइट गाउन' में ही मिसेज भारद्वाज भी आ रही थीं।

'क्या पाठ पढ़ा रही हो मीना?' पास आकर मुड्ढे पर बैठती हुई मिसेज भारद्वाज बोलीं।

तब तक आनन्द और मीना भी मुड्ढ़ों पर बैठ गये थे। बोली मीना, 'कुछ नहीं आंटी! परख रही थी कि ये महाशय बीसवीं शताब्दी में टिकने वाले भी हैं या नहीं।' मीना हँस पड़ी।

'धीरे-धीरे परखना, उतावली मत कर बैठना। ऐसा न हो कि परखती-परखती कहीं तुम खुद ही विद्यार्थी बन जाओ और परीक्षा देनी शुरू कर दो।' मुस्कराती हुई मिसेज भारद्वाज बोलीं।

'मैं समझा नहीं।' आनन्द हिचकिचाहट और व्यग्रता के मिले-जुले स्वरों में बोला।

उत्तर दिया मीना ने, 'यह वाराणसी नहीं है आनन्द! दिल्ली है। यहाँ दशाश्वमेध और निगम घाट नहीं हैं न और गंगा का किनारा ही है कि डुबकी लगा दो और पार हो जाओ। यह दिल्ली है, जो हजारों को उजाड़ देती है तो लाखों को बसा भी लेता है! यहाँ पर डुबकी लगाने से

नहीं, संसर्ग से मोती मिलते हैं।' और मधुर-हास्य से वह खिलखिला पड़ी।

'कहाँ मोती ढूंढ़े जा रहे हैं मीना?' कहते-कहते भारद्वाज आते दिखाई पड़े।

सब उठ खड़े हुए। डाक्टर भारद्वाज एक मुड्ढा सरकाकर उस पर बैठते हुए बोले, 'कौन से मोती की खोज हो रही थी दिल्ली में?'

'खोज नहीं चाचाजी, वह तो मिल भी चुका। पर उस पर इतनी गर्द जम गई है कि उसकी वास्तविक चमक तो लुप्त ही हो गई है।' मीना मुस्करा पड़ी।

'अच्छा! कहाँ?' आश्चर्य और हर्ष के मिले-जुले भावों में भारद्वाज बोले।

'चाय के प्याले में।' उत्तर दिया मिसेज भारद्वाज ने। सब खिल-खिलाकर हंस पड़े।

मीना चाय बनाने लगी। चाय बनाते-बनाते बोली, 'चाचाजी नाराज न हों तो एक बात पूछूँ?'

'पूछो, ।'

सिर्फ इ ।-सी बात चाचाजी, कि एक छोटे-से कप में कितना चाय का कड़वा पानी होना चाहिए और कितनी शक्कर, दोनों का कितना अनुपात उचित है?' चाय बनाते-बनाते आँखें नीची किए ही मीना ने पूछा।

अर्थपूर्ण दृष्टि से डाक्टर भारद्वाज ने मीना की ओर देखा, 'प्रश्न पूछने में बहुत चतुर हो गई है मीना बिटिया! पर एक भूल कर रही है बेटी···' कहते-कहते डाक्टर साहब रुक गए।

मीना की स्थिर दृष्टि डाक्टर साहब के चेहरे पर जम गई। बोली, 'क्या?'

'वह यह कि केवल कड़वे पानी और शक्कर से ही चाय को पूर्णता नहीं मिलती; उसमें एक तीसरी वस्तु का भी होना आवश्यक है और वह है दूध। बिना उसके, उस तीसरे के, प्याले का जायका नहीं रहेगा।' डाक्टर भारद्वाज धीरे-धीरे बोले।

मीना की आँखें बरबस मिसेज भारद्वाज के चेहरे पर जम गईं। उसने उस चेहरे पर कई रंग बनते-बिगड़ते देखे। मिसेज भारद्वाज ने मीना की ओर देखा, पर दूसरे ही क्षण आँखें नीची कर लीं।

'बस, एक 'प्वाइन्ट' और चाचाजी, क्या उस तीसरे पदार्थ, बिना दूध के चाय का वास्तविक स्वाद नहीं रह सकता ? क्या उसका होना अत्यन्त ही जरूरी है ?' मीना प्यालों में चाय का पानी डाल चुकी थी और चम्मच से वह उसमें शक्कर मिला रही थी।

डाक्टर भारद्वाज ने आकाश की ओर देखा और फिर समानान्तर दृष्टि रखते हुए बोले, 'यह बात नहीं मीना, चाय का वास्तविक स्वाद तो उन दोनों के सम्मिलन में ही है, पर जब एक बार उसमें दूध डालने की आदत पड़ जाती है तो फिर वह छूटती नहीं। बिना दूध के न तो रंगत और न स्वाद ही प्रतीत होता है और धीरे-धीरे प्याले में दूध ही प्रधान हो जाता है, अन्य गौण।'

मीना मिसेज भारद्वाज के कप में दूध मिला रही थी। दूध छलक गया और कप में ... का रंग कुछ गहरा हो गया।

'अरे ! ... !' मिसेज भारद्वाज बोलीं, 'बातों-बातों में ध्यान ही नहीं रहता क्या, चाय पिला रही हो या केवल दूध! चाय का तो स्वाद ही मारा जाएगा। यह नहीं, दूसरा प्याला बना दो !' और कहते-कहते मिसेज भारद्वाज ने वह प्याला डाक्टर साहब की ओर बढ़ा दिया।

'पी लो, ज्यादा दूध हुआ तो क्या हुआ, जहर तो नहीं है,' डाक्टर साहब विनोद के से स्वर में बोले, 'धीरे-धीरे अभ्यास पड़ जाएगा। मीना के घर में आदत है। छलक ही जाता है बिटिया के हाथों से कुछ दूध।' और कहते-कहते डाक्टर साहब हँस पड़े।

'ना, बाबा ना! ऐसी चाय तुम्हें मुबारक। लाओ 'मिल्क पॉट' मुझे दे दो। मैं स्वयं इच्छानुसार मिला लूँगी।' और कहते-कहते थोड़ा-सा दूध अपने कप में डाल चम्मच से हिलाने लगी।

डाक्टर भारद्वाज और मीना दोनों किंचित मुस्करा पड़े, पर दोनों की मुस्कराहट में अन्तर था।

आनन्द ज्यों का त्यों बैठा था। उसके सामने बना-बनाया प्याला तैयार पड़ा था जिसमें से गरम-गरम सुगंध उड़कर वातावरण में महक रही थी। बोलीं मिसेज भारद्वाज, 'क्या सोच रहे हो आनन्द ! सामने भरा प्याला पड़ा है—उठाकर पिया भी नहीं जाता ?'

'ओह ! मैं सोचता था, कुछ ठंडा हो जाए। इतना गरम...' सजग-सा होकर तटस्थ स्वर में आनन्द ने उत्तर दिया।

मिसेज भारद्वाज मुस्करा पड़ीं, 'ठंडा होने के बाद चाय का जायका बदल जायगा आनंद ! यह तो गरम-गरम ही ताजगी देती है।'

मीना मुस्करा उठी। डाक्टर भारद्वाज बोले, 'पी लो, पी लो आनन्द, ये कह रही हैं तो पी ही लो। फिर तो धीरे-धीरे अभ्यास पड़ जाएगा।'

आनन्द ने प्याला उठा लिया और 'सिप्' करने के लिए होंठों से छुआ दिया। गरम आंच से होंठ जल गये, और प्याले में से चाय छलक पड़ी। उसने तुरन्त कप प्लेट में रख दिया और खिसियाकर नजर नीची कर ली।

मीना, डाक्टर साहब और उनकी मिसेज जोरों से हँस पड़े।

चाय समाप्त हो गई थी। डाक्टर साहब गाड़ी में बैठ यूनीवर्सिटी ... ..टय. में चले गये थे और मिसेज भारद्वाज नौकरों को काम बताने के लिए अन्दर चली गई थी। नौकर आकर क्रॉकरी समेट ले गया था।

मीना भी उठ खड़ी हुई, 'अच्छा आनन्द ! चलूँ, कालेज 'लेट' हो जाऊँगी, बाई...बाई...' और हाथ ऊपर उठाती कार की ओर बढ़ गई।

आनन्द भी अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ।

३

राय अवध बिहारी सिंह आज समय से काफी पूर्व ही 'चेम्बर' में आकर बैठ गये थे। कुछ थक-से गए थे वे। आज की जिरह में उन्होंने जिस कुशलता से 'केस' को उठाया था, वह अन्य वकीलों के लिए ईर्ष्या की वस्तु थी। केस भी दिलचस्प ही था, मामला एक तलाक को लेकर था। स्त्री ने तलाक लेने की स्वीकृति माँगी थी और पुरुष उन तथ्यों से, जो स्त्री ने प्रस्तुत किये थे, इन्कार कर रहा था। पुरुष आकर्षक व्यक्तित्व और हृष्ट-पुष्ट स्वास्थ्य को लेकर था। अच्छी नौकरी थी, आमदनी भी ठीा थी। घर में भी किसी प्रकार का अभाव दिखाई नहीं दे रहा था और यही नहीं, उसके अठारह-उन्नीस वर्ष की लड़की भी थी। लड़की के भी बयान लिए गए थे, परन्तु उनसे भी कोई ऐसी बात नहीं निकलती थी जिससे पुरुष के चरित्र पर सन्देह किया जा सके। स्त्री ने भी उसके चरित्र को ले... सी प्रकार की आपत्ति नहीं उठाई थी। उसका एक ही तर्क था कि ... पुरुष से मैं सन्तुष्ट हूँ। शारीरिक भूख का जहाँ तक सम्बन्ध है, मुझे इससे कोई शिकायत नहीं। यह युवा है, स्वस्थ है, काम-कला से भिज्ञ और मुझे सन्तुष्टि प्रदान करने वाला है; पर मुझे मानसिक रूप से यह सन्तुष्टि दे सकने में असमर्थ है। मेरा दिल इससे सन्तुष्ट नहीं है, मेरे मन की प्यास को तृप्त करने में यह असमर्थ है। और इस 'प्वाइंट' पर सब उस स्त्री की हँसी उड़ा रहे थे, उसे पतिता और व्यभिचारिणी समझ रहे थे।

स्त्री का केस राय अवध बिहारी 'फाइट' कर रहे थे। उन्होंने अत्यन्त सूक्ष्म और प्रबल तर्कों से यह सिद्ध कर दिया था कि आज के युग में केवल शारीरिक भूख ही सब कुछ नहीं; जब तक मानसिक रूप से पति पत्नी को सन्तुष्ट नहीं कर सकता, वह अयोग्य है। आज के इस युग में पति-पत्नी दोनों मानसिक रूप से विकसित और स्वस्थ होते हैं। उनके सामने शारीरिक भूख कोई अहमियत नहीं रखती, क्योंकि उनका प्रधान बिन्दु मानसिक होता है। और जब तक मानसिक रूप से पत्नी सन्तुष्ट नहीं होती, वह भूखी ही रहती है। केवल पशु-संभोग नारी को सन्तुष्टि प्रदान नहीं कर सकत क

वकील साहब ने कोर्ट में मानवीय विकास का इतिहास प्रस्तुत करते हुए बताया था कि एक युग था जब मर्द और औरत दोनों का शरीर-पक्ष मजबूत था, पर बुद्धि-पक्ष कमजोर और शिथिल; उस समय शारीरिक भूख ही प्रधान थी। औरत पूर्ण युवा पुरुष और उसका सर्वस्व अपने-आपमें पाकर सन्तुष्ट हो जाती थी। पर ज्यों-ज्यों समय बदलता गया, मानव का शरीर-पक्ष निर्बल पड़ता गया और बुद्धि-पक्ष प्रधान हो गया। आज ... इस युग में भी पाषाण-काल के नियम व्यवहृत हों तो वे पूर्ण नहीं कहे जा सकते। आज के इस युग में केवल शारीरिक या योनि-क्षुधा शान्त कर देना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इसके साथ ही साथ आज के मानव को नारी का हृदय भी टटोलना पड़ेगा; उसकी भावनाओं को भी छूना पड़ेगा और इस मन की—मन की इन भावनाओं की—सन्तुष्टि भी आवश्यक ही नहीं, परमावश्यक है।

और स्त्री का तलाक मंजूर हो गया था।

'चेम्बर' में भी यही चर्चा चल रही थी। वकील साहब के पास ही ... ील चोपड़ा, वर्मा, मित्रा आदि तीन-चार मित्र पहले से ही बैठे ... साहब के आते ही वे सब खिल-से गये। बात छेड़ी वर्मा ने, 'या... ... ! आज की जिरह गजब थी और तुम्हारे तर्क तो अकाट्य। उस औरत बेचारी को भले ही तलाक मिल गया हो, पर तुम्हारे तर्क मेरे गले मुश्किल से ही उतरते हैं।'

राय साहब ने सिगरेट सुलगा ली। धुएँ का एक छल्ला हवा में उछालते हुए बोले, 'क्यों?'

'तुम्हारे कहने का तो मतलब हुआ कि पुरुष बेचारा और सब काम-काज छोड़ दे और घर की स्त्री का ही ध्यान रखे कि कब इसकी शारीरिक भूख जागती है और कब मानसिक भूख। और वह इन दोनों भूखों को शान्त करने के लिए अपने शरीर की आहुति देता रहे।' वर्मा ने तर्क प्रस्तुत किया।

राय साहब हँस पड़े। बोले, 'तुम समझे नहीं यार! मैंने 'फ्रायड' को भी पढ़ा है और भारतीय 'कामसूत्र' भी। दोनों के अध्ययन से मैं इस

निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि स्त्री मर्द की शानदार पूरक है। मानव क्षुधातर है और औरत उसका पौष्टिक आहार। जो मर्द जितनी कुशलता से औरत को अपने-आपमें पचा लेता है, वह उतना ही सफलता के अधिक निकट है। पर औरत को हजम कर लेना आसान नहीं है। वह निर्जीव खाद्य-पदार्थ नहीं बल्कि एक सचेतन, शानदार खाद्य है जो शरीर को तरावट देने के साथ-साथ ऊष्णता भी प्रदान करती है। मर्द के शरीर में औरत समा जाती है या यों कहें कि जो मर्द कुशलता से औरत को अपने-आपमें समा लेता है, उसका स्वास्थ्य बढ़ जाता है, खून की लालिमा बढ़ जाती है, चेहरे पर एक नया ओज और लालिमा थिरकने लगती है, उसके हौसले बढ़ जाते हैं और वह जीवन की वास्तविक सुखद घड़ियों को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।'

'तो तुम···' चोपड़ा बीच में बोला।

'हाँ, मैं,' बात काटते हुए वकील साहब बोले, 'औरत को मर्द की कमजोरी भी मानता हूँ और नियामत भी। अच्छी से अच्छी औरत को प्राप्त करने में मैं कोई कसर उठा नहीं रखता। तुम यही पूछना चाहते हो न, तो मैं कह रहा हूँ दौलत का मूल्य मेरे सामने नगण्य है। अपनी पसंद की औरत को प्राप्त करने में मैं दौलत को पानी की तरह भी बहाने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करता। मेरे जीवन में कई औरतें आई हैं, विवाहित भी और अविवाहित भी। जवान भी और प्रौढ़ भी; और मैंने उन सबको चखा है, सबको आत्मसात करने का प्रयत्न किया है। मुझे भरोसा है कि मेरे काम से कोई असन्तुष्ट नहीं रही। नीबू की तरह झिझोड़कर और चूसकर उसे फेंक नहीं दिया, बल्कि आम की तरह फांक पर फांक खोलकर उसे चखा है। उसे दिया है तो बहुत कुछ पाया भी है।' और कहकर वकील साहब ने सिगरेट का एक भरपूर कश लेकर कनस्तर में डाल दिया।

'पर राय! यह तो उनका अपने पतियों के साथ विश्वासघात हुआ,' चश्मा साफ करते-करते चोपड़ा बोले, 'क्या यह ठीक है? इस प्रकार से तो एक दिन हमारी यह सामाजिक व्यवस्था ही चौपट हो जायगी। कौन किस पर विश्वास करेगा। प्रत्येक औरत कहीं और अपनी भूख मिटा लेगी। इस

प्रकार से तो भारतीय आचार, विचार, नियम, मर्यादा ढहकर चकनाचूर हो जायेंगे। विवाहित औरतों के लिए क्या यह ठीक है?'

वकील साहब जोरों से हंस पड़े। बोले, 'यहीं तो तुम भूल कर रहे हो चोपड़ा! विवाह है क्या? मर्द और औरत दोनों की एक सामाजिक व्यवस्था ही तो है न। पर उस सामाजिक व्यवस्था का रूप इतना विकृत हो गया है कि उसे विवाह शब्द से संबोधित करते हुए घृणा होती है। समाज ने विवाह के नाम पर औरत को जकड़ लिया है—उसके शरीर को भी, मन को भी, और जकड़ा भी ऐसा कि कसाइयों को भी मात कर दिया। उसे पति नाम के जन्तु की पूँछ से बाँध दिया। यह नहीं देखा कि जो पति है, वह पति बनने के योग्य है भी या नहीं? उसमें पतित्व है भी या नहीं। उसकी धमनियों में खून का संचार है भी कि नहीं। यह कुछ नहीं देखा चोपड़ा, और उस औरत को जो भूखी है, जवान है, जिसके शरीर में ऊष्णता ठाठें मार रही है, जिसके जिस्म में अछूता प्यार पेंगे भर रहा है; ऐसे काठ के साथ बाँध दिया जो अशक्त है, जिसका खून ठंडा हो चुका है। मैं पूछता हूँ, क्या यह विवाह है? समाज की परिभाषा में यह जरूर विवाह है। पर औरत की नजर में? और फिर जब अतृप्त नारी, प्यासी क्षुधातुर नारी, भरे जिस्म को, खून की गर्मी को लपलपाती नजर से देखती है तो तुम उसे कुलटा कहने लग जाते हो. उसे व्यभिचारिणी और दुश्चरित्रा की संज्ञा दे देते हो।'

वकील साहब कुछ रुके। नई सिगरेट सुलगाकर बोले, 'और समाज! तुम जिसे समाज की संज्ञा देते हो वह क्या है, केवल पुरुषों का कवच, जिसके भीतर स्त्री को आसानी से हलाक किया जा सकता है। सदियों तक इस समाज के नाम पर मुर्दे पति के साथ जीवित नारी को जलाया जाता रहा और समाज खुशियाँ मनाता रहा। इस समाज के नाम पर औरत को अन्धे, लूले और अशक्त पुरुष के साथ बाँधा जाता रहा और उसे पातिव्रत्य का जाम पिलाया जाता रहा। पुरुष, वह चाहे लंगड़ा है, अशक्त है, मर्दपन से हीन है पर फिर भी वह पति है, उसकी पूजा जवान नारी का धर्म है। पुराणों और स्मृतियों में से उसे दृष्टान्त दिये जाते रहे,

और पातिव्रत्य के नाम पर, स्वर्ग की चाह पर और धर्म के आधार पर उसके खौलते खून को पानी बनाया जाता रहा, उसे जीवित भी मुर्दा बनाया जाता रहा। पर अब नहीं चलेगा यह पाखंड। नारी सँभल गई है, बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जी रही है वह। उसे विवाह, समाज और पातिव्रत्य के बंधनों में जकड़कर हलाक नहीं किया जा सकता। बराबरी की अधिकारिणी है वह। उससे प्राप्त करना चाहते हो तो देना भी पड़ेगा, बराबरी के सौदे से ही व्यवस्था रह सकती है! एकतरफी कोई भी कार्यवाही असह्य है। वह अब सहन नहीं की जा सकती।'

वकील साहब की सिगरेट बुझ गई थी। लाइटर से उसे फिर जलाते हुए बोले, 'मैं मानता हूँ, तुम्हें बड़ा अटपटा लग रहा होगा यह सब कुछ, पर यह वास्तविकता है। मैं पूछता हूँ, कितने पति हैं जो औरत को ठीक-ठीक समझ सकते हैं। विवाह कर लेने के बाद वे उसे दाल-भात से अधिक महत्त्व नहीं देते। बच्चों के उत्पादन की एक फैक्टरी समझ लेते हैं उसे। उसका काम सिर्फ बच्चे उत्पादन करना और गृहस्थी का भार ढोना ही रह जाता है, और उस गृहस्थी के चक्कर में उसका यौवन घुल जाता है, शरीर मिट जाता है और इच्छाएँ तथा आकांक्षाएँ कपूर बनकर उड़ जाती हैं। वह एक दयनीय गधे से भी दयनीय बन जाती है। उसका रूप और यौवन चुक जाता है, शृंगार और आकर्षण बिखेरते-बिखेरते वह खुद खोखली हो जाती है और कुछ ही समय बाद वह, वह औरत नहीं रहती जो वास्तव में होती है बल्कि एक फालतू चीज बन जाती है, जिसका उपयोग घर में पड़े रहने के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है।'

'परन्तु मर्द भी तो अपना सब कुछ चुकाता है उसमें। उसे दान देते-देते अपना भी तो लुटाता है, अपने स्वत्व को भी तो मिटाता है, क्या क्या यह लेन-देन नहीं? क्या केवल स्त्री ही अपने को मिटाती है, पुरुष अक्षुण ही रहता है?' मिश्रा ने युक्ति प्रस्तुत की।

'बेशक, मर्द भी देता है और साथ ही साथ अपना स्वत्व भी चुकाता है, पर कितना? स्त्री के मुकाबले में नगण्य। औरत जीवित रहती है अपने यौवन के बल पर, और मर्द कायम रहता है अपनी शक्ति के बल पर।

यौवन की अपेक्षा शक्ति अधिक टिकाऊ है। मर्द उसे बड़ी उम्र तक क़ायम रख सकता है। पर कितनी औरतें हैं जो यौवन का मूल्य पहचानती हैं? कितनी औरतें हैं जो यौवन को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करती हैं। विवाह के बाद वे पुरुष के सामने बिखर जाती हैं, अपना सब कुछ फैला देती हैं उसके सामने। और पुरुष-शक्ति के आघात से उसका यौवन टूटकर चूर-चूर हो जाता है, काँच की तरह बिखर जाता है! शक्ति के मुकाबले यदि रूप और यौवन की प्रतिस्पर्धा की जाय तो औरत निश्चय ही घाटे में ही रहेगी। पुरुष के पास शक्ति है, सम्पन्नता है। शक्ति उसके शरीर की ऊष्णता और मादकता है और इसीके बलबूते पर वह नित नया यौवन खरीद लेता है। उसका भरपूर उपयोग कर सकने में समर्थ होता है। परन्तु इसके विपरीत स्त्री यौवन बीत जाने पर असहाय और बेबस हो जाती है, आगे का पथ धुँधला हो जाता है और मर्द के पाँव में जकड़ जाती है।'

चोपड़ा दो मिनट मौन रहा। फिर बोला, 'मैं तुम्हारी युक्ति का कायल हूं राय! तुम्हारा कथन तर्कपूर्ण और अनुभवयुक्त है। इसका तो तात्पर्य यही हुआ कि पुरुष सर्वश्रेष्ठ है [illegible] शक्तिमान है, वह हर किसी हालत में स्त्री से श्रेष्ठ है।'

'हर किसी हालत में नहीं चोपड़ा! नारी और पुरुष दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। कौन घटकर है और कौन बढ़कर, यह तो प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए! दोनों बढ़कर हैं और दोनों महान हैं, एक के बिना दूसरा अपूर्ण है अस्तित्वहीन है। दोनों को दोनों का सहारा है। जहाँ भी पुरुष में श्रेष्ठता या उच्चता का भाव आया या स्त्री में रूप और यौवन का घमण्ड आया कि संतुलन डगमगा जाता है। उसकी गार्हस्थ्य गाड़ी की पटरी से नीचे उतर जाती है। पुरुष और नारी दोनों का सम्मिलित जीवन ही पूर्णता का परिचायक है।'

बर्मा अब तक मौन बैठा था। राय के चुप होते ही वह बोला, 'आज के ही 'केस' को लें। पुरुष सामर्थ्यवान था, शक्तिवान था, उसके पास दौलत और ताकत दोनों थीं और उसके बयानों से भी स्पष्ट था कि वह उस औरत को चाहता है, प्यार करता है, हृदय से भी ज्यादा समझता है,

फिर इस पति-पत्नी के जोड़े में कहाँ खामी थी कि पत्नी तलाक का हठ कर रही थी, क्या वह असन्तुष्ट थी? क्या उसके पास किसी बात की कमी थी? डाक्टरी रिपोर्ट के अनुसार भी वह पुरुष पूर्ण स्वस्थ था। सन्तानोत्पत्ति में सक्षम था। फिर क्या कमी दिखाई दी थी उस पुरुष में उस स्त्री को…'

वकील साहब मुस्कराए, 'ठीक बात कह रहे हो वर्मा! तुम अपनी जगह ठीक हो और यह भी ठीक है कि वह सन्तानोत्पत्ति में सक्षम था। पर एक कमी थी उसमें और उस कमी से वह पशु बन गया था, मानव नहीं।'

'पशु…'

'हाँ पशु!' राय बोले, 'वह कामकला से पूर्णतः अनभिज्ञ था। वीर्य के दबाव से और उसकी ऊष्णता की मार से दौड़कर नारी के साथ संसर्ग कर लेना नारी की सन्तुष्टि नहीं, यह तो पशुवत आचरण है। इस प्रकार से वह पुरुष स्वयं की कामाग्नि तो शान्त कर था पर स्त्री के शरीर को गरम कर उसमें कामेच्छा जगाकर दूर हट जा था। जब स्त्री का शरीर गर्म होता, उसका रोम-रोम खुल पड़ता या कामेच्छा का पिपासु बन जाता, तब तक पुरुष सब कुछ दे चुका होता और सब कुछ दे चुकने के बाद उसके पास क्या बचता? कुछ नहीं। उसका शरीर ठंडा पड़ जाता, रक्त का बहाव धीमा हो जाता और प्रेम का वेग शान्त हो जाता। पर उधर वह स्त्री ठीक उस समय पूर्ण रूप से खुलती, उसका रक्त धमनियों में चक्कर लगाने लगता, काम की मार से वह तिलमिला उठती और प्यास बुझाने के लिए पति की ओर सतृष्ण दृष्टि से देखती, पर उस समय वह सचेतन माँस पिण्ड होता, केवल माँस पिंड ठंडा और शिथिल देह, और वह कसमसाकर रह जाती, उसकी प्यास अतृप्त रह जाती और काम की मार से सारा शरीर झनझनाता रहता।'

फिर कुछ रुक और सिगरेट का एक भरपूर कश लेकर राय साहब बोले, 'मैं पूछता हूँ, कितने हैं ऐसे पुरुष जो काम-कला से भिज्ञ रहकर औरत को सन्तुष्ट करते हैं। उसकी ऊष्णता को सन्तुष्टि प्रदान कर सकते हैं और जब वह पूरे वेग में, पूरी प्यास में छटपटाती है तो पौरुष-दान देकर

उसे राहत पहुँचाते हैं? मैं कहता हूँ, बहुत कम। सौ में से दस-पाँच। पर जो इस तथ्य से परिचित होते हैं, वे संन्तुष्ट होते हैं। कोर्ट में आने की उन्हें जरूरत नहीं पड़ती।'

'एक बात और वर्मा,' कुछ रुककर राय साहब बोले, 'नारी कोमल होती है—कुसुमवत। उसकी कोमलता ही उसकी श्रेष्ठता और पूर्णता है। इसके विपरीत पुरुष कठोर है वज्रवत, दृढ़, अटल। नारी की यह स्वाभाविक चाह होती है कि पुरुष अपनी पौरुषता प्रदर्शित करे, उसके ना… ना करते रहने पर भी उसे सुदृढ़ बाँहों में दबोच ले। उसको शरीर में, शक्ति से भिगो ले पर सावधानी के साथ। जरा से झटके वह पुष्प टूट भी सकता है, टूटकर बिखर भी सकता है। नारी लिजलिजे प्यार को नहीं चाहती। कोमलता स्त्रैणता पसंद नहीं करती, चापलूसी से उसका दिल नहीं भरता। वह चाहती है कोई भी पुरुष चीते की तरह आकर उसे दबोच ले, पी ले, चूस ले, सर्व ले और सर्वस्व दे दे। ऐसा ही प्यार वह चाहती है। ऐसी ही पौरुषत पसंद करती है। ऐसे ही पुरुष में समा जाने को वह आतुर रहती है। और कहते-कहते वकील साहब चुप हो गये। उनके हाथ की सिगरेट जलते-जलते अंगुलियों तक पहुँच गई थी और उनको भी जला रही थी। वकील साहब ने तुरन्त सिगरेट फेंक दी।

काफी समय बीत गया था। वकील साहब उठ खड़े हुए। अभी एक और पेशी सँभालनी थी उन्हें। साथ ही उन्हें चाय की तलब भी हो आई थी। मित्रों के साथ उठकर वे नीचे ही 'बार' में जाकर बैठ गये।

चाय पीते-पीते वकील साहब कुछ खो-से गये। अचानक उन्हें डाक्टर भारद्वाज की याद हो आई। बहुत दिन हो गये थे मिले उन्हें। आज तो शाम को शतरंज की बाजी लगानी ही थी। ऐसी मात दी जाय कि याद करें, पैदल मात, बिलकुल। और चाय अधूरी ही छोड़ काउन्टर की ओर बढ़ गये।

काउण्टर पर ही 'फोन' पड़ा था। भारद्वाज की कोठी का नम्बर मिलाते हुए बोले, 'अवधबिहारी इज स्पीकिंग आन दिस साइड…हैल्लो…'

फोन मिसेज भारद्वाज ने उठाया था, 'हैल्लो-हैल्लो!'

'भाई भारद्वाज घर हैं या फिर मीटिंग में!' और वकील साहब हँस

पड़े ।

'तुम्हें याद आ गई इस कोठी की !' मिसेज भारद्वाज का स्वर था, 'वे घर नहीं हैं और···और···'

'और···और क्या ?'

'आई यम नोट फीलिंग वेल ।' और फोन रख दिया गया ।

वकील साहब दो मिनट फोन हाथ में ही लिए खड़े रहे।—मिस्टर भारद्वाज घर नहीं हैं और मिसेज भारद्वाज ठीक नहीं हैं। क्या हो गया उन्हें। कितनी बड़ी गलती है मेरी कि सँभालने ही नहीं गया। पर मुझे क्या पता था कि···ओह, आई सी···—बुदबुदाते हुए वकील साहब ने फोन रख दिया। उनके चेहरे पर एक कुटिल मुस्कराहट तैर गई।

शाम को पाँच, साढ़े पाँच बजे वे कोर्ट से फ्री हुए। दो-दो पेशियों में जिरह करके वे अपने-आपको थका-सा अनुभव करते थे। कोर्ट से बाहर निकलकर गाड़ी में जा बैठे और [illegible] को घर की तरफ मोड़ दिया।

पर अकस्मात उन्हें मिसेज [illegible]रद्वाज का ख्याल आया। संभाल तो लेना ही चाहिए उन्हें। और गाड़ी भारद्वाज की कोठी की ओर मोड़ दी।

शायद भारद्वाज घर पर नहीं थे क्योंकि पोर्च में कोई गाडी खड़ी नहीं थी। उन्होंने अपनी गाड़ी पोर्च से जरा हटकर खड़ी कर दी और सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गये।

'अरे रामू ! डाक्टर कहाँ है ? बीबीजी की तबियत कैसी है ?'

'डाक्टर साहब तो घर पर नहीं हैं।' और उसने मिसेज भारद्वाज के कमरे की ओर इँगित कर दिया।

अवध बिहारी सिंह उधर ही बढ़ गए। कमरे के बाहर खड़े होकर बोले, 'कमिंग इन ?' और हँसते-हँसते अन्दर बढ़ गए।

मिसेज भारद्वाज पलंग पर लेटी थीं—अस्त-व्यस्त कपड़े, बिखरे बाल और उदास चेहरा। पलंग पर पड़ी-पड़ी एकटक छत की ओर देख रही थीं।

'यह क्या भाभी, यह क्या चेहरा बना रखा है।'

नीला उठ कर बैठ गई। फीकी-सी हँसी हँसकर बोली, 'आओ देवर, आखिर आए तो सही। तुम्हारे भाव तो कोई मरे या जीए, तुम पुरुषों को

क्या ?'

'क्यों ! भाई साहब कहां गए ?'

'केरल, आज तीसरा दिन है गए हुए। कोई सेमीनार हो रहा है वहाँ, उसमें भाग लेने।' और कहती-कहती धीरे से उठ खड़ी हुई।

'लेटी रहो लेटी रहो। तबियत ठीक नहीं है तो फॉरमेलिटी की भी जरूरत नहीं है।' और कहते-कहते वे पलंग की पाटी पर बैठ गए।

नीला वापस लेट गई। ऐसा लग रहा था मानो सिर में जोरों का दर्द हो और पीड़ा से सिर फटा जा रहा हो।

'क्या सिर में दर्द है ? क्या हो गया है आपको ?' और वकील साहब ने सिर को हौले से छू दिया।

नीला पुनः उठकर पलंग के सहारे बैठ गई, 'रहने दो ये चापलूसियाँ। यह तो नहीं कि भाभी की कुछ दवा करें या उसका दर्द कुछ कम करें। बस बातें बनाना [illegible] कोई इनसे।' और नीला कुटिलता से मुस्करा दी।

वकील सा[illegible] उठ खड़े हुए,'यह नहीं होगा भाभी, मेरी कसम आपको ! भाई साहब घर पर नहीं तो इसका यह मतलब नहीं कि सुस्त पड़ी रहो। सुस्ती से तो बीमारी और बढ़ती है। आज मेरी कसम है जो शृंगार नहीं किया। कपड़े तो बदलने ही पड़ेंगे आपको। तब तक मैं लपककर बॉम ले आता हूँ।' और वकील साहब कमरे के बाहर आ गए।

नीला उठी। दिमाग में एक ही बात गूँज रही थी—'मेरी कसम जो आपने शृंगार नहीं किया' और वह मुस्करा पड़ी। बाँहों का घेरा सिर के ऊपर करके अंगड़ाई ली और गुसलखाने में घुस गई।

मुँह-हाथ धोकर ड्रेसिंग रूम में जाकर नीला ने नई साड़ी पहनी, बालों में कंघी कर जूड़ा बाँधा। होंठों पर हल्का-सा लिपस्टिक लगाया और आँखों मे काजल की पतली-सी सलाई फेरी और फिर गुनगुनाती हुई आदमकद दर्पण के सामने जाकर खड़ी हो गई।

नीला अपने सौन्दर्य पर स्वयं लजा गई। सोचा, कितना भोला है यह राय भी ! मेरा सिर दुःख रहा है तो अपना हाथ मेरे सिर पर रखकर उसे परखना चाहता है। यों थोड़े ही पता चलेगा मेरे दर्द का राय ! मेरे

अन्दर झाँककर देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि मैं किस प्रकार जल रही हूँ, मेरे शरीर का अंग-अंग कामाग्नि में दहक रहा है। खून की हर बूँद उफन-उफनकर बाहर फूट पड़ने को आतुर है। हाँ ! यह ठीक है कि मैंने डाक्टर से शादी की, एक ऐसे व्यक्ति से जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का आदमी है पर ख्याति को लेकर मैं चाटूँ क्या ? कितना ठंडा है वह, जैसे गोश्त हो। कितनी बार मैंने उसे उकसाया, हुमसाया पर उसके शरीर में जरा भी उफान आया ! ठंडा पड़ गया है खून उसका। वह क्या जाने कि नारी क्या है ? उसकी थाह कितनी गहरी है ! हर समय मीटिंग, मीटिंग, मीटिंग ! मीटिंग से छूटे तो सेमीनार और सेमीनार से छूटे तो कालिज। मैं पूछती हूँ, ये सब मुझसे भी बढ़कर हैं। क्या दो मिनट भी उन्हें अवकाश नहीं कि मेरे पास बैठें, प्यार की बातें करें, हाथों में हाथ लेकर चाँदनी रात में टहलते हुए दूर चले जायँ। पर नहीं, जैसे यह सब कुछ उनके लिए व्यर्थ है। पुस्तकें और लेखन···ये दो ही मुख्य हैं उनके जीवन में। घर आते हैं तो चुपचाप लॉन में जाकर बैठ जाते हैं। अँधेरा होता है तो टेबल पर बैठे पढ़ते रहते हैं और पढ़ते-पढ़ते थक जाते हैं तो बग[illegible] में आकर लेट जाते हैं। मैं कुछ पूछती भी हूँ तो झटककर कह देते हैं —सो जाओ नीला डार्लिंग, मुझे नींद आ रही है···हुँह! ' और सोचते-सोचते नीला के चेहरे पर घृणा की मोटी-सी लकीर खिंच गई।

'और इधर यह राय ! कितना खुशमिजाज और हँसमुख है। मेरी कितनी चिन्ता रखता है। मेरे सिर दर्द कहने पर वह कैसा रुआँसा हो गया और बॉम के लिए भागा गया। मुझे उदास देखा तो तुरन्त शृंगार करने के लिए कह दिया, 'भाभी मेरी कसम जो शृंगार न करो, यह क्या सूरत बना रखी है।' कितना ख्याल है मेरा उसे। डाक्टर और राय···राय और डाक्टर···दोनों मेरे जीवन में समाते जा रहे हैं, दोनों जीवन में ऊधम-सा मचा रहे हैं पर राय···मेरे खून की हर बूँद में राय समाता जा रहा है। राय, देख लो, जी भरकर देख लो, कहाँ गई मेरी उदासी···सुस्ती···'

अँधेरा हो गया था। नौकर-चाकर सब बाहर गये थे, संध्या का झुर-मुटा घिरता जा रहा था, कमरे की देहली पर हल्का-सा खटका हुआ। देखा,

राय हाथ में बॉम लिए आ रहा है।

नीला ने लाइट लगा दी—दूधिया, मादक प्रकाश। राय कमरे में झपटता हुआ आया ; जैसे चीता शिकार पर झपट रहा हो और नीला को बाँहों में भरकर तड़ातड़ चुम्बन बरसाने शुरू कर दिये—गालों पर, मुँह पर, होंठों पर···आँखों पर···गले पर···।—न मालूम कितनी प्यास थी राय साहब के होंठों पर और सैकड़ों हजारों चुम्बन बरसा दिये।

'डियर !' वकील साहब का धीमा, पर साधिकार स्वर निकला और अपनी गिरफ्त से नीला को मुक्त कर दिया।

दरवाजे पर आहट हुई, दोनों ने अकचकाकर दरवाजे की ओर देखा—आनन्द खड़ा था हाथ में शीशी लिए।

'माता जी ! आपने मिक्सचर मँगाया था, ले आया हूँ।' और बोतल द्वार पर ही रखकर वापस मुड़ गया।

वकील साहब ने एक क्षण नीला के चेहरे पर झाँका और दूसरे ही क्षण कमरे से बाहर हो गये।

४

मीना सुबह से ही व्यस्त थी।

आज यूनीवर्सिटी के एम० ए० के छात्रों ने भ्रमण का दिन निश्चित किया था। निश्चय किया गया था कि जिस किसी भी साधन द्वारा दस, साढ़े दस बजे के लगभग पिकनिक के लिए निश्चित स्थान पर सब एकत्र हो जाएँ। सवेरे का खाना सब साथ लेकर आयें, दोपहर का और शाम का खाना वहीं बनाने का निश्चय किया गया था। क्लास के सारे छात्र इस

'पिकनिक' के लिए उत्सुक थे।

मीना ने कार में ढेर सारी चीजें रख दी थीं—फ्रिज, कोल्ड क्रीम, नमकीन, मिठाई, बिस्कुट, शरबत वगैरह अटरम-सटरम न मालूम कितना ही सामान ठूँस लिया था।

पिकनिक का आयोजन यमुना के हरे-भरे कछार में करने का निश्चय किया था। दोपहर को गाने-बजाने का प्रोग्राम, शाम को यमुना में तैरना और यदि जी चाहे तो बोटिंग करना—सभी प्रकार के आयोजन व्यवस्थित कर लिये थे।

मीना बड़ी उत्सुक थी इस पिकनिक के लिये। पहले दिन ही उसने टेलीफोन पर सभी सहेलियों से बातचीत कर प्रोग्राम तय कर लिया था। मीना तैरने की शौकीन थी। पानी में मछली की तरह फिसलना और एक-दूसरे पर छींटे उछालना उसकी लालसा थी। 'स्वीमिंग सूट' भी उसने कार में रख लिया था।

सामान से निबटकर वह ड्रेसिंग रूम में गई। हरा ब्लाउज और उस पर झिलमिलाती मैच करती हुई हरी ही साड़ी पहनी। पैरों में चप्पल भी हरे-से ही थे। सिर के बालों को समेटकर 'ब्लूकर' जूड़ा बनाया और 'पिनों' से उसे व्यवस्थित किया। आँखों में काजल की धार दी, जिससे नेत्र और नुकीले हो गए और फैल गये। ललाट पर गोल बिन्दी दी और नाक में हल्की-सी कील डाल ली। पूर्ण भारतीयता के वेश में वह जंच रही थी। और जब सज-धजकर दर्पण के सामने खड़ी हुई, तो वह अपने-आप से ही लजा गई।

'हल्लो''मीना'''

ध्वनि सुनते ही उसने अकचकाकर दरवाजे की ओर देखा। हाथों में रजनीगंधा के फूल लिये महेन्द्र मुस्करा रहा था।

'अहा! आज तो जैसे नीलम-परी ही पृथ्वी पर उतर आई है,'—कमरे के अन्दर आते-आते महेन्द्र बोला, 'सच कहता हूँ मीना, गजब हो गया है!'

मीना झिझकी, ऐसे कि जैसे हरिणी किसी अज्ञात आशंका से सिहर-

कर हरिण के पास आ गई हो। बोली, 'क्या हुआ?'

महेन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़ा, 'सच मीना, एक बात से तुम्हें सावधान कर दूँ, खुदा कसम आज तुम्हें नजर-वजर लग गई तो मैं कहीं का न रहूँगा और यही आशंका बार-बार मुझे हड़बड़ा देती है।'

अब जरा जाकर मीना स्वस्थ हुई। उसके धड़कते कलेजे ने स्थिरता धारण की। 'दुष्ट कहीं के!' और वह मुस्कराकर महेन्द्र के और निकट आ गई।

महेन्द्र भरा-पूरा स्वस्थ जवान था। यौवन की मादक लहरियों में वह डूब-उतरा रहा था। मांसल शरीर, फड़कती भुजाएँ, चेहरे पर मादकता और अधरों पर नटखट मुस्कान। नीले सूट में वह अत्यन्त आकर्षक लग रहा था। बालों की एक लट उसके ललाट पर नृत्य करती-सी प्रतीत हो रही थी।

अपने हाथों में थमे रजनीगंधा के फूल उसने पास पड़े टेबल पर रख दिये और कुछ फूल उठाकर उसने मीना के जूड़े में खोंस दिये।

मीना और भी मादक हो उठी। सच, महेन्द्र कितना खुशमिजाज दोस्त है। इसे पता है कि मुझे रजनीगंधा के फूल अत्यन्त ही प्रिय हैं, तभी तो यह तीसरे-चौथे रोज ढेर सारे फूल मेरे कमरे में छितराकर चला जाता है। कमरा ही नहीं, मेरा तन-मन भी अपूर्व आल्हाद से भर जाता है। और उसने मीठी नजर से मुस्कराते हुए महेन्द्र की ओर देखा।

कमरे के फूलदानों में पड़े फूल बासी और मुरझा गये थे। महेन्द्र ने वे फूल उठाकर खिड़की की राह बाहर फेंक दिये। और नये ताजे रजनीगंधा के फूल उनमें भर दिये। सारा कमरा उनकी महक से सुवासित हो उठा।

'शायद 'पिकनिक' की तैयारी पूरी कर ली दिखाई देती है,' हँसते हुए महेन्द्र बोला, 'देखो भई, पिकनिक में मुझे जोरों की भूख लगती है और जितना भी होता है, चट कर जाता हूँ। पर मैं आज साथ कुछ भी नहीं ले जा सकूँगा।'

मीना ने 'क्यों' और 'कैसे' आदि किसी भी प्रकार का प्रश्न नहीं पूछा। बोली, 'खा लेना, चाहे जितना। कहीं भागा नहीं जाता है और यह जो

मुझे पता ही था कि जनाब भूखे होंगे और दूसरी जगह उनकी भूख मिटायेगा भी तो कौन ?'

महेन्द्र पुलक गया। अपने दोनों हाथ मीना के सुडौल कंधों पर रख होले-से आँखों में आँखें डालकर बोला, 'सच मीना, बहुत भूखा हूँ, जन्म-जन्मान्तर का भूखा। किसी ने सुध भी तो नहीं ली मेरी। तुम्हारे पास भी तो इसीलिए आया था पर झिड़क देती हो। भोजन सामने हो और खाने में देर की जाय तो यह मेरे लिए असह्य हो जाता है।' और खिलखिलाकर हंस पड़ा।

मीना ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह एक अदृश्य सुखद कल्पना में खो सी गई थी।

बाहर कार का हॉर्न बजा तो मीना कुछ चैतन्य हुई और हाथ की घड़ी पर नजर डालती हुई बोली, 'ओह, चलो न, कितनी देर हो गई खड़े-खड़े।'

और दोनों कमरे से बाहर निकल गए।

वकील साहब गेट से भीतर आ रहे थे। ज्यों ही वे कार से निकले, मीना सामने जा [illegible] हुई। महेन्द्र ने भी हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

'अरे! आज [illegible]ँ की तैयारी हो रही है, सवेरे-सवेरे।' वकील साहब उल्लासमय स्वर में बोले।

'डैडी! आज हमारी [illegible] की ओर से पिकनिक है, पूरी क्लास भाग ले रही है, मैं भी जा[illegible] ?

'अरे, तो इसमें पूछने की क्या बात है? जाओ, जाओ, शौक से जाओ। जी तो मेरा भी बहुत करता है कि तुम लड़कों के साथ नाचूँ-गाऊँ, पर ऐसा फँस गया हूं कि…'

'तो चलो न पापा, बड़ा मजा रहेगा।' मचलते से स्वर में मीना बोली।

'नो…नो…मुझे अभी कोर्ट में जाना जरूरी है। तुम जरूर जाओ और हाँ, महेन्द्र बाबू, मीना का ध्यान रखना। शाम को जल्दी लौट आना होगा…' और गाल पर हल्की-सी चपत लगा वकील साहब अन्दर चले गए।

महेन्द्र ने अपने ड्राइवर को मय कार के घर भेज दिया।

कार में सामान लद ही चुका था। मीना ने आँखों पर 'गॉगल्स' चढ़ा

लिए और ड्राइविंग सीट पर जा बैठी।

'अरे बैठो भी, खड़े-खड़े मेरा मुँह क्या ताक रहे हो बुद्धू की तरह!' झल्लाहट के-से स्वर में मीना बोली।

'सच मीना, तुम्हें देखकर तो मैं अपने-आपको ही भूल गया हूँ। ईश्वर ने रूप देते समय घनघोर पक्षपात किया है तुम्हारे साथ।'

'अरे रहने दो अपनी फिलासफी।' बात काटती हुई मीना बोली। पर घनघोर पक्षपात और अपने रूप की प्रशंसा ने उसे पुलकित कर दिया था।

'नहीं मीना, यह नहीं चलेगा, हटो यहां से। ड्राइविंग तुम्हारे वस का नहीं है। कहीं हाथ-पैर तुड़वाओगी।' और फिर जरा झुककर रहस्यमय स्वर में बोला, 'तुम बस मेरा हृदय संभाले रहो। उसकी ड्राइविंग ही कुशलता से कर लोगी तो नैया पार लग जाएगी। इसकी ड्राइविंग के लिए तो यह खादिम हाजिर है।' और कहते-कहते महेन्द्र मीना के हटे हुए स्थान पर ड्राइविंग व्हील के सामने जा बैठा।

गाड़ी फर्राटे के साथ हवा से बातें कर रही थी, मीना की साड़ी का पल्ला बार-बार उड़-उड़कर महेन्द्र की गोदी में जा गिरता। वह उसे संभालने का [illegible]न करती। पर नटखट हवा बार-बार उससे छेड़ कर जाती। कार की विपरीत दिशा में केश उड़ रहे थे और उससे भीनी-भीनी महक उड़कर आसपास के वातावरण को मोहक बना रही थी। हवा के साथ ही उसका नाजुक दिल भी कल्पना के घोड़े पर सवार था—'कितनी सुखी हूँ मैं, कितना मादक जीवन है मेरा और जब महेन्द्र पास में होता है तब तो यह खुशी और बढ़ जाती है। कितना भोला और निश्छल युवक है यह महेन्द्र, सूझ-बूझ और अवसर को पहचानने वाला। शिक्षित, सुसंस्कृत और धनी पिता का पुत्र। आकर्षक और मोहक व्यक्तित्व का धनी महेन्द्र कितना मेरा ख्याल रखता है। वस्तुतः इसके साथ जीवन की घड़ियां आसानी से बीत सकेंगी। जीवन सार्थक हो सकेगा।'

कार टर्न लेते समय एक पत्थर पर से उछली और अन्दर बैठे यात्रियों को भी डगमगा गई। मीना की वेग से भागती विचारधारा एकदम से टूट गई। वह चैतन्य हुई। हवा की उच्छृंखलता से उसके केश मुँह पर छितरा रहे

थे। उसने सहजता से चेहरे पर आए बालों को पीछे की ओर कर दिया।

कार महेन्द्र के हाथों में थी! पर विचार उसके दूर···बहुत दूर उड़ रहे थे। मीना···कितना प्यारा नाम है, जैसे गुलाब का कोमल फूल हो। नाजुक, हँसमुख सौन्दर्य का साकार पुंज। ऐसी पत्नी को पाकर कौन अपना भाग्य न सराहेगा। यद्यपि जीवन में कई लड़कियाँ आईं···ममता, गीता, मधु, हेम, विभा···न मालूम कितनी-कितनी। सभी उससे प्रभावित हुईं, उसके सामने खुल गईं, छितरा गईं, बिखर गईं और अपना सब कुछ उसके सामने समर्पित कर दिया, और एक-एक कर सब चली गईं—महेन्द्र के होंठ हल्के, अत्यन्त-हल्के से मुस्करा पड़े, 'महेन्द्र भंवरा है, रसिक रूप का प्यासा, यौवन-मद से तृप्त होने वाला। भंवरा भी कभी किसी का हुआ है, क्या एक कलिका पर ही वह सन्तुष्ट हो सकता है। क्या एक कली उसकी अतृप्त प्यास को शान्त कर सकती है। नहीं, बिलकुल नहीं···तभी तो वे कलियाँ समय के थपेड़ों से सिहरती-झिझकती झड़ती गईं, पर महेन्द्र वैसा ही मादक है, वैसा ही सरस···'

पर···पर मीना उनमें से नहीं है। यह उन सबसे हटकर है। उन सब में यह अलग से ही [illegible]नी जा सकती है। महेन्द्र कभी एक कली पर जमा नहीं। पर अब ऐसा [illegible] रहा है जैसे उसके पर टूट गये हैं, दूसरी कली पर जाने की उसकी चाह मिट गई है। इसमें ही उसने अपना सब कुछ प्राप्त कर लिया है। मीना, मेरे जीवन का आधार···मेरे जीवन को स्थायित्व यही दे सकती है···नहीं···मैं विवाह करूँगा, और इसी से विवाह करूँगा। जाति पाँति, वर्ण-भेद के कोई बंधन हम दोनों को अलग नहीं कर सकते···और अनजाने ही उसने बाँयें हाथ से मीना की कमर को पकड़ हल्के से अपने से चिपका लिया। फिजाँ में मादकता बिखर गई, वातावरण मोहक, मदमय बन गया।

कार इस समय यमुना के किनारे की सड़क पर दौड़ रही थी। महेन्द्र के कंधे पर सिर का हलका-सा स्पर्श दिये मीना बैठी थी। बोली, 'क्या सोच रहे हो महेन्द्र?'

महेन्द्र चैतन्य हुआ, 'ओह मीना! अभी-अभी जो मैंने स्वप्न देखा वह कितना रसमय, कितना सारयुत और सरस था। मैं क्या कहूँ तुझे···'

'स्वप्न!' मीना एकदम से छिटक कर दूर जा बैठी, 'क्या तुम स्वप्न देख रहे थे? कार चला रहे हो या स्वप्न देख रहे हो? वापस घर तक तो सही-सलामत पहुँचा दोगे या मार्ग में ही···'

'हाँ मीना, स्वप्न ही देख रहा था—जीवन का सर्वश्रेष्ठ स्वप्न, मादक और मोहक स्वप्न! और उसकी आँखें भावप्रवण होकर आकाश की ओर उठ गईं, जहाँ एक सारस का जोड़ा उड़ता जा रहा था।

'अच्छा, क्या स्वप्न था भला, ज़रा मैं भी तो सुनूँ?' और धीरे-से मीना पास खिसक आई।

'मैं देख रहा था कि अथाह नीला सागर फैला पड़ा है, दूर-दूर तक पानी ही पानी। लहरें ही लहरें, न ओर का पता है न छोर का और उस सागर में एक छोटी-सी किश्ती तैर रही है, पता है उसमें कौन थे?'

'ऊँहुँ···'

महेन्द्र ने व्हील पर से दोनों हाथ हटा लिए और उसकी ठुड्डी उठाते हुए बोला, 'उसमें थी मिस मीनाकुमारी सुपुत्री श्री राय अवध बिहारी सिंह और मिस्टर महेन्द्र कुमार···'

'अरे [illegible]···रे···क्या कर रहे हो। कार को चकनाचूर करने का विचार है [illegible]?'

कार डगमगाने लगी थी। महेन्द्र ने हँसकर स्टियरिंग व्हील संभाल लिया। बोला, 'जानती हो मीना, फिर क्या हुआ···?'

मीना का कलेजा अभी तक धड़क रहा था। बोली, 'अनाड़ी हो पूरे तुम···कार चला रहे हो या ऊँट···कि जब चाहा नकेल छोड़ दी और सुस्ताने लगे···'

'अरे लो, पूरी बात तो सुन लो कि फिर क्या हुआ!' महेन्द्र ने घटना का सिलसिला जोड़ते हुए कहा।

'हाँ···हाँ···तो फिर क्या हुआ?' उत्सुकता से मीना महेन्द्र की ओर देखने लगी।

'हुआ क्या मीना, सागर में ज्वार आ गया, पानी वेग से हुँकार भरने लगा और लहरों के थपेड़े आ-आकर नाव से टकराने लगे। ऐसे तूफान में भी मीना ने एक हार महेन्द्र के गले में डाल दिया और महेन्द्र ने पुलक-कर मीना के गले में; और दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में बँध गए।'

मीना एक सुखद स्वप्न में तैर गई, उसकी इच्छाएँ साकार रूप धारण करती जा रही थीं। महेन्द्र बड़ी कुशलता से अपनी बात कह रहा था।

'पर मीना, उसी समय लहर का एक भरपूर वेग नाव को लगा और नाव उलट गई।'

'ओह···फिर···' मीना का स्वर कोमल हो आया।

महेन्द्र ने मीना की ओर देखा और बोला, 'कुछ नहीं मीना युवक की बांहों में ताकत थी, उसका भार वहन करने में वह समर्थ था। उसने उसे गोद में उठा लिया और सकुशल जमीन पर ले आया। देखा तो जमीन का सौन्दर्य सौ गुना बढ़ गया था।

'ओह!' मीना एक सुखद पुलक से भर गई। सारा संसार उसके सामने मादकता से भरकर झूम रहा था। उसके हृदय की बात महेन्द्र के होंठ इस प्रकार से कह देंगे, यह उसे स्वप्न में भी विश्वास नहीं था। उसने फड़फड़ाता यौवन महेन्द्र की बाँहों में सौंप दिया, वह धन्य हो उठी।

यमुना का कछार आ गया था। सामने ही हरी-हरी दूब पर कई लोग पहले ही आ गये थे। महेन्द्र ने किनारे पर गाड़ी खड़ी की और नीचे उतर पड़ा। पीछे-पीछे मीना भी कार से उतर पड़ी।

रेशमा, नूर, मधु, ईवा आदि कई सहेलियाँ कार के चारों तरफ घिर गई थीं। सभी प्रसन्नता के मूड में थीं, चुहल के वातावरण में तैर रही थीं।

'आइए महारानी जी,' नूर आगे बढ़कर वंदगी करती हुई बोली, 'इधर से···इधर से नहीं···इधर से!'

रेशमा आगे आई, 'हुस्न-ए-मलिका को बाँदी का आदबा-अर्ज मालूम हो, खिदमत में तो कोई गुस्ताखी नहीं हुई!'

'स्सी···स्सी···' ईवा आगे आई और उन दोनों को पीछे धकेलती हुई बोली, 'तुम भी क्या चख-चख कर रही हो। शहंशाह दूर चले गए हैं तो अकेली मलिका को छेड़ना ठीक नहीं, हाँ···बेचारी का बित्ता भर तो नाजुक दिल है, टूट गया तो···'

'ओए···होय···हो···' रेशमा बोली, 'तो क्या फाँसी चढ़ा देगी?'

'अरी ओ दुष्टो! दूर हटो यहाँ से, सौ चूहे खाकर बिल्ली चली हज

को।' मीना कुछ रोष और कुछ मजाक के से मिले जुले स्वर में बोली, 'मुझ से क्या छिपी हो तुम···अभी एक-एक की पोल खोलनी शुरू की तो···'

ईवा अपनी बाँह उसकी बाँह में डाल सीने से सीना भिड़ाकर होंठों पर अँगुली रखती हुई बोली, 'नो···नो मीना डार्लिंग, ऐसा करेगी तो हमारा दिल फट जाएगा, फिर हम उसको कैसे सियेंगी?'

और जोरों के ठहाके से आसपास का वातावरण गूँज उठा।

एक तरफ चटाई बिछा दी गई और कुछ सहेलियाँ उस पर बैठ गई। मीना ने कार से ग्रामोफोन निकाल लिया था, मादकता की एक स्वर-लहरी हवा में गूँज उठी।

कुछ लड़कियों ने एक तरफ ताश की जुगत भिड़ा दी थी और नहले पर दहला मारा जा रहा था।

दन्नो और देवी एक तरफ, इन सबसे हटकर शतरंज लेकर बैठ गई थीं और इस तरह से उनमें मशगूल हो गई थीं, मानो उनके भाव दुनिया प्रलय के ज्वार में डूब ही गई हो।

दिन काफी चढ़ आया था, मीना को जोर की भूख लगी थी [illegible] भी उसे नाश्ते का टाइम नहीं मिला था, इसलिए इस समय पेट में [illegible] घुड़दौड़ मचा रहे थे। मीना ने चटाई बिछा दी और कार में से खाने [illegible] सामान निकालने लगी। अन्य लड़कियों ने भी अपने-अपने टिफिन खोल लिये थे।

मीना खाने बैठी, पर पराठे का कौर लेते ही उसे महेन्द्र की याद हो आई, 'अरे रे रे रे···वह तो सुबह का ही भूखा है, घर से भी तो कहाँ खा-पीकर चला, कह रहा था, मैं तो कुछ नहीं लाया, तुम्हारे साथ ही कुछ खा-पी लूँगा।'

'क्या हुआ री, कोई याद आ गया क्या! मुआ रोटी खाते वक्त भी नहीं छोड़ता है क्या?' छेड़ते हुए नूर बोली।

'अरे तुम्हें क्या! बेचारा महेन्द्र भूखा होगा, उनका खाना भी तो उनके पास है न, वह तो हाथ हिलाता हुआ शर्म से उधर बढ़ गया था।'

'फिर बता, ये कैसे कौर खा सकती हैं।' रेशमा बोली, 'हिन्दू धर्म

की तो मर्यादा है कि जब तक पुरुष रोटी न खा ले, स्त्री को भी रोटी खाने का कोई हक नहीं है।'

'मैं कहती हूँ, तुम चुप भी रहोगी या यूँ ही बक-बक किए जाओगी,' मीना झुँझलाती हुई बोली, 'आई हिन्दू धर्म की हिमायती···'

'हिमायती नहीं, रक्षक कहो—हिन्दू धर्म की प्रबल समर्थक, संरक्षक ···रक्षक।' आदर्श के-से स्वर में नूर बोली।

खाना-पीना चलता रहा। पर मीना कठिनता से खा रही थी। उसका ध्यान बराबर महेन्द्र की तरफ लगा था।

खाना-पीना होने के बाद सभी नरम-नरम घास पर लेट गईं। कोई उल्टी लेटी थी तो कोई आसमान की ओर चेहरा किए गुम-सुम पड़ी थी। किसी ने किसी की जाँघ का तकिया बना दिया था तो कोई टेढ़ी लेटी अपने ही खयालों में लीन थी। बातों का सिलसिला चल निकला।

'मैं पूछती हूँ मीना, एक बात बता,' लूसी जरा छेड़ने के-से स्वर में बोली, 'इस पढ़ाई-वढ़ाई के बाद तेरा क्या विचार है ?'

मीना चुप पड़ी रही। उसके दिमाग में महेन्द्र से संबंधित घटनाएँ तैर रही थीं।

रत्ना बड़ी-बूढ़ी की तरह पास आकर बैठ गई, 'च्च्च्—कितना अफसोस हो रहा है मेरी मीना को,' और फिर मीना के सिर पर हाथ फेरते हुए बोली, 'बोल मेरी लाड़ो, बोल, तेरी कजरारी आँखें पानीदार क्यों होती जा रही हैं ? ऐसा कौन-सा घुन लग गया है मेरी मीना को कि बस राधा की तरह किसी कान्हा के विरह में डूबी ही रहती है।'

रत्ना की नकल पर एक जोरों का ठहाका लग गया।

बातें चल रही थीं। वातावरण रोमाँसमय हो रहा था, कुछ लड़कियाँ उठकर दूर किसी वृक्ष की छाँह में बैठ गई थीं और गुप-चुप बातें किए जा रही थीं। कुछ यमुना किनारे पानी में पाँव डाले एकटक पानी की उठती-बैठती लहरों को देख रही थीं। मीना, रत्ना, रेश्मा, नूर, परवेज और मधु एक तरफ हरी मखमली दूब पर लेटी बातों में लीन थीं।

बात छिड़ गई थी मीना की उस दिन की 'बर्थडे' वाली 'पार्टी' पर। परवेज बोली, 'मीना ! एक बात कहूँ, नाराज मत होना, आनन्द बाबू को यद्यपि तूने छकाया तो खूब, पर बात उसकी भी वजनदार थी।'

'अरे मुझे तो लग रहा है, मीना की यह भी एक चाल थी आनन्द बाबू से सम्पर्क बढ़ाने की।' रेश्मा ने टोक दिया।

'और अब तो सुन रहे हैं, मीनादेवी के डोरे भी उस पर पड़ रहे हैं।'

'हाँ, मीना, अब बता दो—वह दिन कब आने वाला है, जब यह सुनने को मिलेगा कि मीना कुमारी का विवाह श्रीयुत आनन्द बाबू के साथ···'

और बात पूरी होने से पहले ही मीना का एक घूँसा मधु की पीठ पर पड़ गया और वह दर्द से 'उई' कहती हुई दोहरी हो गई।

'क्यों मीना, कुछ तो कह न···'

'तू तंग मत कर रत्ना,' मीना बोली, 'मेरी और आनन्द की शादी के बारे में तो सोचना भी व्यर्थ है। वह अर्ध सभ्य मुझे क्या सुखी रख सकेगा, और क्या मुझे आराम दे सकेगा···'

'क्यों ?'

'वह बेचारा दार्शनिक, दर्शन के सागर में डूबने-उतराने वाला युवक। आज की दुनिया उसके लिये अन्ध कूप है, पाश्चात्य संस्कृति ने उसकी नाक-भौं सिकुड़ जाती है और प्यार की बातें चलते ही वह शर्म से लाल होकर काँपने लग जाता है, वह भला मेरा साथ क्या दे सकेगा !' और कहते-कहते मीना खिलखिलाकर हँस पड़ी।

'पर उस दिन तो तू बड़ी-बड़ी डींगें मार रही थी, उसे सभ्यता का पाठ पढ़ा रही थी और चैलेंज के साथ कह रही थी कि अपना जीवन समय के साथ-साथ चलने दो, दोनों की विचारधाराओं की गुत्थी अपने-आप सुलझ जाएगी।'

'हाँ नूर ! मैंने कहा था और मैं आज भी कहती हूँ कि उसके शुष्क हृदय को सरस करना अपना प्रथम कर्तव्य है, मैं उसे सरस-सजीव बना-कर ही छोड़ूँगी।'

दाँतों में तिनका चबाते-चबाते रेश्मा ने कहा, 'तो मुई, यह कह न, आनन्द तो सिर्फ एक दिखावा है, रोमांस तो अन्दर ही अन्दर महेन्द्र से चल रहा है।'

मधु के सामने महेन्द्र की नीचता और विश्वासघात एकबारगी ही उभरकर आया। बोली, 'मैं तो कहती हूँ यदि मीना महेन्द्र के जाल में उलझी तो हाथ-पैर तुड़वा घायल होकर ही बाहर निकलेगी, हाथ कुछ नहीं आने का।'

मीना के सामने महेन्द्रका मुस्कराता चेहरा खिल उठा। आज की कार में हुई घटनाएँ उसके सामने साकार हो गईं। बोली, 'रहने दे मधु, मुझसे क्या छिपा है। मीना वह मिट्टी नहीं है, जिसे कुम्हार जैसा चाहे मोड़ दे, वह फौलाद है, फौलाद।' और कहते-कहते मीना का इन्कलाबी मुक्का ऊपर उठ गया।

एक तरफ से गाने की तेज स्वर लहरी कानों में [illegible] तो एकबारगी ही सबका ध्यान उधर चला गया। क्लास के सभी छा. वृत्ताकार बैठे थे। पास ही कुछ छात्राएँ भी थीं और उनमें ज्योत्स्ना [illegible]ठी कोई दर्दीला गीत गा रही थी।

सभी उठकर वहाँ जा पहुँचीं, और आगे-पीछे सभी जम गईं। बारी-बारी से सभी ने गाया, कुछ ने विरह-भरा तो किसी ने मिलन का आल्हादमय। किसी ने भजन उचारा, तो कोई गजल के दर्द में भीग गया। हँसी-दर्द से मिला-जुला वातावरण रंगीन हो गया।

गाते-गाते पता ही नहीं चला कि कब दोपहरी ढल गई और कब शाम पड़ गई। सभी ने स्नान करने का तय किया! ऐसा मौका कब बार-बार आता है! मीना ने ही यह प्रस्ताव रखा था और सभी ने एक स्वर से इसका समर्थन किया था।

मीना की देखादेखी कई लड़कियों ने 'स्वीमिंग सूट' निकाल लिया, कई लड़के भी स्नान की पोशाक में यमुना में कूद पड़े थे।

मीना सुन्दर थी, पर सुन्दर होने के साथ-साथ कुशल तैराक भी!

पानी में तैरती हुई वह ऐसी लग रही थी मानो जलपरी हो। पानी के अन्दर डुबकी लगाकर जब वह बाहर सिर निकालती तो ऐसा लगता मानो किसी गोरी-सी कोमल मछली ने पानी के बाहर सिर निकाला हो।

पानी में वॉल डाल दी गई थी। एक तरफ छात्र थे और दूसरी तरफ छात्राएँ। पानी में ही 'वाटर बॉलिंग' खेला जा रहा था, सभी मग्न थे, प्रसन्न थे, खुश थे।

एकाएक मीना को लगा, जैसे पानी के अन्दर ही कोई उसका पैर खींच रहा है। उसने इधर-उधर देखा, तो उसे कोई दिखाई नहीं दिया। उसका दिल धड़कने लगा। इतने में फिर उसे लगा कि जैसे किसी ने उसकी टाँग पकड़कर खींची हो। उसने पीछे घूम कर देखा तो महेन्द्रका सिर पानी से निकलता दिखाई दिया।

महेन्द्र ने एक तरफ आने का संकेत किया, वह मुस्करा पड़ी। 'नट-खट कहीं का' उसने मन ही मन [illegible]लसित होकर कहा। देखा तो सभी बॉलिंग में लगे थे, वह तैरती-तैरती एक तरफ सरक गई।

महेन्द्र और मीना तैरते हुए उस जमघट से काफी दूर निकल गए थे, जहाँ से यमुना 'कर्व' करती थी वहाँ से तो वे दिखाई भी नहीं दे रहे थे। वहीं यमुना के किनारे आधी पानी में और आधी बाहर एक स्वच्छ शिला पड़ी थी। महेन्द्र उस पर जाकर बैठ गया और सहारा देकर मीना को भी बिठा लिया।

मीना के हाथ लगाते ही महेन्द्र के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। भोला-भाला सुन्दर सुकुमार चेहरा, जिस पर पानी के नन्हे-नन्हे कण ऐसे लग रहे थे, मानो कमल पर ओस की बूँदें पड़ीं हों और फिसल-फिसलकर नीचे गिर रही हों।

शरीर का मध्यभाग अधिकांश खुला था। पुष्ट, कठोर स्तनों पर हल्का-सा नीला आवरण पड़ा था, जिससे कि वे मुश्किल से ढक पाए थे। पानी से भीगी चोली उसके शरीर से चिपक गई थी और देह का रोम-रोम स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

पुष्ट मांसल जंघों पर छोटा-सा जाँघिया पड़ा था, परन्तु वह भी शरीर से चिपककर एक हो गया था। सारा शरीर पानी की बूँदों में भीगता उतरता ऐसा लग रहा था, मानो उसका रोम-रोम रस में डूबा हुआ हो। सुलगता हुआ यौवन पुकार-पुकारकर निमंत्रण दे रहा था, और लरजते हुए होंठ किसी का स्पर्श पाने को आतुर-से प्रतीत हो रहे थे।

महेन्द्र मन ही मन भावी पत्नी के इस स्वरूप पर मुग्ध हो गया।

पानी में भीगकर महेन्द्र का सौन्दर्य भी बढ़ गया था। मीना ने उसे कनखियों से देखा। ऐसा लग रहा था मानो पास ही अनंग बैठा हो, जो अपने पुष्प-धन्वा से उसे बेंध रहा हो। शरीर पर से फिसलती हुई बूँदों को वह चाव से देख रही थी। माँसल स्वस्थ शरीर, फड़कती भुजाएँ, उन्नत उभरा हुआ सीना और चेहरे पर मुस्कराहट की बेपरवाही लकीर। मीना ने देखा तो देखती ही रह गई।

'क्या सोच रही हो मीना!' आन[illegible] स्वर ने मौन तोड़ा।

मीना ने तुरन्त उधर से नजरें हट[illegible]ीं, 'कुछ नहीं, यों ही।' और उसने नजर नीची कर ली।

महेन्द्र ने मीना का हाथ अपने हाथ में ले लिया और बोला, 'मीना! एक बात पूँछूँ?

मीना की बड़ी-बड़ी पलकें उपर उठीं। होंठ बुदबुदाए, 'पूछो, क्या?'

'मीना, एक बात जो कई दिनों से मेरे मन में घुमड़ रही है, होंठों तक आती है पर होंठ कह नहीं पाते हैं। घबरा जाते हैं बिचारे!'

'तो कह दो न, ऐसी भी क्या बात है।'

'मीना! ईश्वर ने तुम्हें इतना रूप क्यों दिया? क्यों तुम मेरे जीवन में आई और दिल में उतरती ही चली गईं क्यों मेरे रोम-रोम में बस गईं। जी चाहता है, तुम हमेशा-हमेशा के लिए मेरी आँखों के सामने ही रहो। जब तुम दूर होती हो तो ऐसा लगता है, मानो दुनिया चक्कर काट रही है घूम रही है।'

ऐसा लग रहा था मानो मीना के मन की बात महेन्द्र के होंठों से

कही जा रही है।

'मीना!' महेन्द्र के लरजते होठों से स्वर फूटा।

'हाँ महेन्द्र!' मीना की नजरें ऊपर उठीं। ऐसा लगा मानो उसके होंठ प्यासे हों, शरीर प्यासा हो, रोम-रोम प्यासा हो।

महेन्द्र ने उसे बाँहों में भर लिया और अपने जलते होंठ मीना के होठों पर रख दिए। ऐसा लगा मानो वायु थम गई है, पृथ्वी चक्कर लगाते-लगाते रुक गई है।

न मालूम कितने ही समय तक वे यों ही बैठे रहे। दोनों को दोनों का भान नहीं था! दोनों मग्न थे। लीन थे। एक दूसरे में समा जाने को आतुर थे।

पानी की एक हिलोर आई और उन दोनों को कमर-कमर तक भिगो गई। लहर [illegible] थपेड़ से दोनों चैतन्य हुए, देखा तो सूर्य पश्चिम में छिपने के लिए भा[illegible] जा रहा था।

'मीना!' ——

'हाँ महेन्द्र!'

'यमुना का पानी हाथ में लेकर एक वचन दो मीना, यह यमुना और वह सूर्य हमारे साक्षी रहेंगे।'

'कैसा वचन महेन्द्र?'

'मीना, अब मैं रह नहीं सकता, तुम्हारे बिना मेरा एक पल भी काटना दूभर हो जाता है। हर समय आँखों के सामने तुम ही बैठी रहती हो। वचन दो मीना, कि तुम मुझसे दूर नहीं रहोगी। वचन दो मीना कि!'

मीना ने महेन्द्र की आंखों में झाँका, सैकड़ों प्रश्न उसमें तैर रहे थे।

'मैं कब दूर हूं महेन्द्र! मैंने कब मना किया।'

'तो मुझसे शादी का वायदा करती हो मीना, कि मुझे छोड़ोगी नहीं, ठुकराकर भागोगी नहीं, किसी अन्य!'

मीना ने झपटकर महेन्द्र के मुख पर हाथ रख दिया, 'ऐसा न कहो महेन्द्र! तुम नहीं समझते कि तुमने किस प्रकार मुझ पर अधिकार

कर लिया है, मेरे रोम-रोम में समा गए हो, मेरे रक्त की बूँद-बूँद में तुम उफन रहे हो···तुम !'

महेन्द्र एकबारगी ही हर्ष से नाच उठा, जैसे कि उसे संसार का ऐश्वर्य एकबारगी ही मिल गया हो। मदोन्मत्तावस्था में पुलककर एक बार फिर मीना को अपनी सुदृढ़ बाँहों में भर लिया, और उसके होंठों पर, गालों पर, ललाट पर सैकड़ों चुम्बन बरसा दिए जैसे कि सैकड़ों मोती टाँक दिए हों।

महेन्द्र ने मीना की आँखों में झाँका, वहाँ हर्ष नृत्य कर रहा था, उल्लास दमक रहा था।

'मीना, तो क्यों न आज ही ?'

मीना ने महेन्द्र की ओर देखा।

'हाँ मीना ! यह मदमाता मौसम, ठंडी हवा, यमुना का किनारा, सघन कुंज और महकता एकान्त—क्या चाहिए तुम्हें। मेरे शरीर का रोम-रोम जल रहा है मीना, तुम इसे शान्ति दे दो, तृप्ति दे दो, सान्त्वना से सराबोर कर दो।' और महेन्द्र का हाथ मीना की कमर से लिपट गया।

'महेन्द्र !'

'हाँ मीना, 'ना' न दो ! एक बार ! आज, अभी ! बस एक बार। प्लीज !'

मीना सिहर गई, 'नहीं ! महेन्द्र ! ऐसा नहीं। यह नहीं। यह तुच्छता है ?

'तुच्छता ! क्या कह रही हो मीना तुम ! तुम्हारे और मेरे बीच भी क्या अब कोई पर्दा रह गया है, फिर अब तो जब महीने, दो महीने में शादी होने वाली है।'

अब तक मीना स्वस्थ-सी हो गई थी। महेन्द्र के मोहक स्वप्न-जाल को तोड़ बाहर निकल चुकी थी। बोली, 'ऐसा नहीं।'

'प्लीज मीना !' उसकी आँखें याचना से कातर थीं।

मीना उठ खड़ी हुई। बोली, 'महेन्द्र ! यह गलत है, शादी के बाद की

बात और है। इस समय मैं वहाँ तक जाना पाप समझती हूँ। यह तो गलत है।'

महेन्द्र भी साथ ही उठ खड़ा हुआ। उसका सारा शरीर प्यास से झनझना रहा था। पास ही गदराया यौवन खड़ा था—एकान्त में, सुनसान में, पर···पर···

वह क्या करे ? टूट पड़े इस पर ? दबोच ले, अपनी भड़की प्यास को शान्त कर ले ? पर, नहीं।

महेन्द्र ने कसकर मीना का हाथ पकड़ लिया। बोला, 'जैसी तुम्हारी इच्छा मीना ! मैं जबरदस्ती नहीं करूँगा तुम्हारे साथ। मैं वहशी नहीं हूँ—पर आज जो तुमने आग भड़काई है, वह बुझने वाली नहीं है—न मालूम यह कब तक धधकती रहेगी, कब इसे ठंडक मिलेगी ? कब सान्त्वना मिलेगी ?'

'बहुत भावुक हो गये हो महेन्द्र ! यथार्थ की कठोर धरा पर तो आओ।'

'मुझे ऐसे ही रहने दो मीना ! शायद इस प्रकार से दिन निकल जाएंगे, पर यथार्थ की कठोर धरा पर आते ही तन-मन और प्राणों में ज्वालाएँ धधक उठेंगी, कैसे उन्हें शान्त करूँगा···'

महेन्द्र का स्वर भीग गया। मीना स्वयं भावुक हो उठी—कितना प्यारा है महेन्द्र. कितना भावुक है।

'मीना, तो तुम्हारे लिए राय साहब से बात करूँ ?'

मीना मुस्करा दी। बोली, 'वे मना नहीं करेंगे महेन्द्र, मेरी इच्छा के विपरीत वे नहीं जाएंगे। पहले तुम अपने फादर से परमीशन ले लो।'

महेन्द्र प्रसन्नता से नाच उठा, 'मुझे भी मेरे डैडी रोकने वाले नहीं हैं। उदार और सहृदय विचारों के हैं वे, मैं दो-चार दिन में ही पूछकर तुम्हें सूचित कर दूँगा।' और महेन्द्र ने हौले से मीना का हाथ दबा दिया।

मीना प्रसन्नता से, एक अनिर्वचनीय कल्पना से पुलक गई।

साँझ का धुंधलापन अधिक से अधिक छाता जा रहा था। दोनों

किनारे-किनारे कार तक आए तो देखा कि अधिकांश लोग जा चुके थे।

कपड़े बदलकर मीना ने सामान समेटा और दोनों खिलखिलाते हुए कार में जा बैठे।

एक भन्नाटे के साथ कार दिल्ली की ओर मुड़ गई।

५

रखने को तो आनन्द ने दवा की शीशी कमरे की मेज पर रख दी थी, पर उस दृश्य को देखकर पीठ फेरते ही उसका सारा शरीर झनझना गया था। मस्तिष्क में विचारों का आलोड़न-विलोड़न हो रहा था और ऐसा लग रहा था मानो कोई उसके दिमाग को बाँध रस्सी में आँटे दे रहा है जिसमें उसका दिमाग पिस रहा है। पैर मन-मन के भारी हो रहे थे और जब वह सीढ़ियाँ उतरा तो ऐसा लग रहा था मानो कोई शराब में धुत होकर लड़खड़ाता चल रहा हो।

गिरता-पड़ता कठिनता से वह लॉन तक पहुँचा। उसके मस्तिष्क में भयंकर झंझावात उठ रहा था। उफ्! यह है आधुनिक सभ्यता। सभ्यता के इस स्तर तक तो पहुँच कर मानव वास्तव में ही बुलंदियों को छूने लगेगा। ऊपर के उजले आवरण के भीतर इतनी गंदगी है, इतना बड़ा धोखा और पाप है, यह तो उसने स्वप्न में भी सोचा नहीं था।

और आज अभी-अभी अपनी आँखों से जो देखकर लौट रहा था, उस पर तो उसे विश्वास ही कठिनता से हो रहा था। उसके ही घर में—डाक्टर भारद्वाज के घर में—इतना बड़ा विश्वासघात, धोखा, छल—उफ्!

ये माता जी, जिन्हें मैं श्रद्धा से माता जी कहकर अपने को धन्य समझता था, ये ही अपने दिल में इतना बड़ा धोखा समेटे हुए हैं? यह नारी है, कहाँ है इसका नारीत्व? कहाँ है गरिमा, विशालता, गंभीरता और उच्चता? यह नारी नहीं, नारी के नाम पर कलंक है, भारतीय संस्कृति को खोखला कर देने वाला घुन है। यह नारी नहीं, सर्पिणी है जो मुस्कराकर डँस लेती है और जिसका डँसा पानी भी नहीं माँगता।

उसके सामने मिसेज भारद्वाज का चेहरा घूम गया। सुन्दर, सलोना, ऐसा कि जैसे ईश्वर का प्रतिबिंब हो। बड़ी-बड़ी गहरी आँखों में वह सागर की सी गहराई पाता था और होंठों पर थिरकती मुस्कान के साये में वह अपना सब दुःख-दर्द भूल जाता था। ऐसा लगता था मानो सम्पूर्ण हिमालय अपनी समस्त गरिमा के साथ सामने सशरीर विद्यमान हो। उसके स्नेह से वह आप्लावित था, उसके विशाल हृदय से वह अनुप्राणित था और उसके मातृवत् स्नेह में वह अपनी खोई हुई माँ की आवाज सुनता था।

पर आज—उसके दिमाग में बनी तस्वीर झिलमिलाने लगी और उसके बाद जो आकृति उभरी, वह भयानक थी—कलंकिनी, क्रुद्ध सर्पिणी, मानवता की शत्रु—छल और कपट की साकार प्रतिमा—

उसके सामने डाक्टर साहब का चित्र तैर गया। कितने उच्च हैं वे—क्षमावान···दयावान—हिमालय सदृश गर्वोन्नत, गंगा के समान निर्मल, जलधि की तरह गंभीर—क्या यह उस देवता की पत्नी बनने की अधिकारिणी है? क्या यह उसके पास भी बैठने के योग्य है! नहीं, नहीं, यह दुष्टा है—दुष्टा ही नहीं, पातकी है, पातकी ही नहीं, मानवता के नाम पर कलंक है।

यह कब से है? वकील साहब तो डाक्टर साहब के घनिष्ठ मित्र हैं, एक-दूसरे पर जरूरत से ज्यादा विश्वास करते हैं। तो यह मित्रता है? दोस्ती का फर्ज चुकाया जा रहा है! डाक्टर साहब की अनुपस्थिति में मानवता की रक्षा की जा रही है! नहीं, नहीं, यह धोखा है—यह छल है—कपट-व्यभिचार, अनाचार और मानवता की हत्या है—और

सोचते-सोचते उसका शरीर झनझना उठा, दिमाग की नसें फटने लगीं और उसके मुँह से चीख निकल पड़ी—नहीं, नहीं, यह उस देवता के साथ विश्वासघात है, पाप है ।

उसका सिर ऊपर उठा । देखा तो थोड़ी ही दूर पर मिसेज भारद्वाज उसकी ओर देखती हुई मुस्करा रही थीं ।

उसका मन अजीब-सी घृणा से भर गया । मिसेज भारद्वाज के प्रति मातृवत् संस्कार उसके हृदय से लुप्त से हो गये थे । आज तक उसने ग्रन्थों और पुस्तकों में ही त्रिया-चरित्र पढ़ा था, पर उसका साकार रूप उसके सामने प्रकट हो गया । वह इस समय एकान्त चाहता था । मिसेज भारद्वाज से बात करने की या आमने-सामने होने की उसकी कतई चाह नहीं थी । बाहर जाने के लिए उसने पैरों में चप्पल डाले और बैंच से उठ खड़ा हुआ ।

मिसेज भारद्वाज अभी भी एकटक उसके चेहरे पर के बनते-बिगड़ते भाव देख रही थीं । आनन्द जब पास में से होकर गुजरा तो वह बोलीं, 'आनन्द !'

आनन्द जाते-जाते रुक गया । उसकी पीठ अभी तक मिसेज भारद्वाज की ओर थी ।

मिसेज भारद्वाज मुड़ीं और उसका हाथ पकड़कर बोलीं, 'इधर देखो !'

आनन्द ने हाथ झटक दिया । बोला, 'मैं इसकी कोई आवश्यकता महसूस नहीं करता ।'

'पर मैं कहती हूँ, तुम्हें बैठकर मेरी बात सुननी ही पड़ेगी और···' कहते-कहते उसने आनन्द को पास पड़ी कुर्सी पर बिठा दिया ।

आनन्द अजीब परिस्थितियों में पड़ा था । इस चांडाली की बातें सुने या नहीं । उफ् ! पाप, छल और कपट का कितना साकार पुँज है यह ! लज्जा तो जैसे समाप्त ही हो गई है । अब मुझ पर डोरे डालने आई है । पाप पर पर्दा डालने के लिए मुझे फुसलाने आई है । नहीं—मैं इस कपट में साझीदार नहीं बन सकता । मैं डाक्टर साहब जैसे देवता को

धोखे में नहीं रख सकता । मैं, मैं !' और सोचते-सोचते वह उठ खड़ा हुआ ।

'मैं जानती हूँ आनन्द कि तुम क्या सोच रहे हो ? पर तुम नहीं जानते कि मैं किस प्रकार की यन्त्रणा में जी रही हूँ, किस प्रकार के वातावरण में साँस ले रही हूँ । मेरे मन को उघाड़कर देखो तो पता लगेगा कि उस पर कितने जख्म लगे हैं···पर तुम क्या जानो !'

'मैं जानना भी नहीं चाहता, मुझे जानने की जरूरत भी नहीं है ।'

'ठीक है, पर नारी की मनःस्थिति का भी तो पता लगाना चहिए, उसके हृदय का भी तो !'

आनन्द ने उसकी ओर देखा, 'नारी—मैं तुम्हें देवी मानता था, तुम्हारी मुस्कराहट में अपनी माँ के दर्शन करता था, तुम्हारे चेहरे के साये में मैं सब दुःख-दर्द भूल जाता था । पर !'

'पर क्या आनन्द ! कह दो न, मन में क्यों रहे, कह दो मैं कुलटा हूँ, व्यभिचारिणी हूँ, राय की रखैल हूँ ।'

आनन्द ने अपने दोनों हाथ कानों पर रख दिए ।

'हाँ, हाँ···कह दो न—कहते क्यों नहीं । डाक्टर से [illegible] से पूर्व मुझे ही क्यों नहीं कह देते···कह दो कि मैं पापिनी हूँ, दुष्टा [illegible] ।'

'दुष्टा···पापिनी···तुम इतनी ही नहीं, उससे भी बढ़कर विश्वास-घातिनी हो । डाक्टर साहब को अंधेरे में रख कर ! नहीं, नहीं, मैं अन्धेरा नहीं रहने दूँगा । मैं डाक्टर साहब के प्रति धोखा नहीं रख सकता, जब तक उन्हें साफ-साफ नहीं कह दूँगा, मेरे हृदय को शान्ति नहीं मिलेगी । चैन !'

'तो आनन्द,' गंभीरता से मिसेज भारद्वाज बोलीं, 'उसके कुछ ही घंटों बाद तुम मेरी लाश जमुना में देखोगे' और एकदम से मुड़कर मिसेज भारद्वाज सीढ़ियाँ चढ़ गईं ।

आनन्द के पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई—उफ् ! इतना बड़ा काण्ड हो सकता है ? कितना विश्वास है डाक्टर साहब को अपनी पत्नी पर ! क्या इतने बड़े सच को डाक्टर साहब का दिल संभाल सकेगा ? यह सब सुनकर भी क्या वे स्वस्थ रह सकेंगे ? और यदि इसने आत्महत्या

कर ली तो क्या डाक्टर साहब का जीवन छिन्न-भिन्न नहीं हो जाएगा ? एकबारगी ही वे टूट नहीं जाएंगें ? क्या ऐसा कहकर मैं उनके जीवन को शान्ति दे सकूँगा—उफ् !

उसका दिमाग चक्कर खा रहा था। वह एक अजीब से झमेले में फँस गया था। नहीं कहता हूँ तो यह पाप है, गुरु के प्रति विश्वासघात है, पाप को प्रश्रय देना है और कह देता हूँ तो !' और आगे की संभावित घटनाओं ने उसके मस्तिष्क को मथ डाला।

वह क्या निर्णय करे—क्या करे—क्या न करे, सोचते-सोचते उसका दिमाग भिन्ना गया। उसकी आज कहीं भी बाहर जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। वह अपने कमरे में गया और लाइट बंद कर खाट पर पड़ गया; जैसे कि उसके शरीर का सारा खून निचुड़ गया हो।

सुबह उठा तो उसका दिमाग भिन्ना रहा था, सारा शरीर टूटकर चूर-चूर हो गया था। जागकर भी वह अपने बिस्तर पर पड़ा रहा।

दरवाजे पर हल्की-सी दस्तक हुई। दरवाजा भिड़ा हुआ था, हल्के-से धक्के-से ही खुल गया। सामने रामू खड़ा था।

'क्या है रामू ?'

'साहब चाय पर बुला रहे हैं आपको,' फिर कुछ रुक कर बोला, 'आप तो उठे ही नहीं अभी तक, तबियत तो ठीक है ?'

'हाँ रामू, पर कह देना डाक्टर साहब से कि मेरी इच्छा नहीं है आज चाय पीने की।'

रामू चुपचाप लौट गया।

तो डाक्टर साहब आ गये केरल से। ओह ! रात की गाड़ी से ही तो आ गए होंगे, मुझे तो ध्यान ही नहीं रहा। स्टेशन पर भी तो मैं नहीं गया ! न मालूम कब आँख लग गई और कब सवेरा हो गया, कुछ पता भी तो नहीं चला ! क्या सोचा होगा डाक्टर साहब ने, ऐसा तो आज तक नहीं हुआ कि डाक्टर साहब बाहर से आ रहे हों और मैं स्टेशन पर न गया होऊँ···?

पर अब चाय पर डाक्टर साहब बुला रहे हैं। क्या मैं बैठ सकूँगा

वहाँ ? टेबल पर उनके सामने मुस्करा सकूँगा, डाक्टर साहब के चुटकुलों पर खिलखिला सकूँगा ? क्या हृदय की आंधी को अन्दर की अन्दर रोक बाहर से निर्दोष दृष्टि से बातचीत कर सकूँगा—क्या करूँ ? पर डाक्टर साहब भी तो कब मानेंगे, मेरे बिना उन्होंने कभी चाय पी है—कितना प्यार करते हैं मुझे, कितना विश्वास करते हैं मुझ पर। तो क्या ऐसे देवता आदमी से बात छिपाकर मैं न्याय कर सकूँगा ? यह उचित होगा ! क्या करूँ, क्या न करूँ, कैसी अजीब उलझन में उलझ गया हूँ मैं—क्या भाग जाऊं—यही ठीक है। इस कमरे को ही छोड़ दूँ, कहीं और किराए की कोठरी में रह लूँगा। पर क्या डाक्टर साहब मुझे जाने देंगे—क्या कहूँगा उनसे।'

'अरे आनन्द ! कैसी तबियत है तुम्हारी ?' कहते-कहते स्वयं डाक्टर साहब कमरे तक आ गए।

आनन्द हड़बड़ाकर उठ बैठा। सारा कमरा अस्त-व्यस्त पड़ा था, क्या सोचते होंगे डाक्टर साहब। रात को नींद कम लेने से उसकी आँखें नींद से बोझिल और लाल हो रही थीं।

डाक्टर साहब पास आ गए। वही शान्त और सौम्य मु[illegible]ा···गहन गंभीर आँखें···आनन्द और प्रेम की फुहारें छोड़ती हुईं, [illegible]ा बात है आनन्द ! आज यों अस्त-व्यस्त से कैसे हो ? तुम तो चार बजे उठने वाले हो। फिर आज···'

आनन्द का चेहरा ऊपर उठा, 'कुछ नहीं डाक्टर साहब ! गलती हुई कि रात को मैं स्टेशन पर न आ सका।' आनन्द का सिर झुका ही रहा।

डाक्टर साहब खिलखिला पड़े, जैसे कि कोई निश्छल बालक हँस रहा हो, 'अरे, तो कब सफाई माँग रहा हूँ। शायद रात को देर से सोये हो। रात कुछ अध्ययन कर रहे थे या मनन।'

आनन्द कुछ बोला नहीं।

'मैं जानता हूँ आनन्द कि तुम्हारा मस्तिष्क मेरे जाने के बाद शान्त नहीं रह सका है, दिमाग में उथल-पुथल मची रही है तुम्हारे—पर आनन्द,

यह दुनिया है, कोशिश करोगे तो दिमाग की इस उलझन का हल भी पा लोगे।' और रहस्यमय ढंग से डाक्टर भारद्वाज मुस्करा पड़े।

आनन्द अवाक् खड़ा रहा। तो क्या डाक्टर साहब को सारा मालूम हो चुका है, क्या वे इन परिस्थितियों से भिज्ञ हैं···नहीं···नहीं···तो फिर क्या हो सकता है डाक्टर साहब के इन शब्दों का अर्थ ? कोशिश करोगे तो उलझन का हल भी निकाल सकोगे···कैसी उलझन···कहीं इनका संकेत मीना की ओर तो नहीं है, क्या ये ऐसा तो महसूस नहीं करने लगे हैं कि मैं मीना के बिना ऐसा हो गया हूँ···उसके विरह में मेरी ऐसी स्थिति हो गई है, उफ···क्या जवाब दूँ, कैसे स्पष्टीकरण करूँ इस उलझन का···

'आनन्द, उठो और चाय पी लो। मैंने तो कुसूर नहीं किया न, फिर मेरी चाय क्यों ठण्डी कर रहे हो···' और डाक्टर भारद्वाज ने बाँह पकड़कर उसे धीरे से ऊँचा उठा लिया।

आनन्द उसी स्थिति में डाक्टर साहब के साथ हो लिया।

चाय की मेज पर मिसेज भारद्वाज 'नाइट गाउन' पहने हुए ही बैठी थीं; आनन्द को देखते ही बोलीं, 'यह आनन्द भी बावला हो गया है, पता नहीं धीरे-धीरे क्या होता जा रहा है कि इसे अपने तन की भी सुध नहीं रही।' और रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्करा वे दीं।

'बावला हो गया है या तुम हो गई हो, पता नहीं कुछ कह-कहा दिया होगा इसे मेरे पीछे और यह ठहरा भावुक आदमी। छोटी-सी बात या मामूली-सी घटना भी इसके अन्तर्मन को बेंध जाती है।'

'तो अब और किसी का गुस्सा मुझ पर ही उतारने लगे। मैं क्यों इसके पीछे लगूँ या कुछ कहूँ···'

'पर इसका ध्यान भी तो रखना चाहिए।'

'मैं क्या ध्यान रखूँ आनन्द खुद सबका ध्यान रखता फिर रहा है,' और हल्के से मुस्करा दी 'क्यों आनन्द, ठीक कह रही हूँ न।'

आनन्द चुपचाप मौन बैठा था। क्या उत्तर दे वह इस बात का। ठीक ही तो कह रही हैं, मैं क्यों सबका ध्यान रखता फिरूँ, न ऊपर जाता

और न मेरी यह मन:स्थिति होती। पर मैं करता भी तो क्या ? मिसेज भारद्वाज ने ही तो मिक्सचर लाने भेजा था···

डाक्टर साहब गम्भीर थे। मानव की मन:स्थिति का अध्ययन वे बखूबी कर सकते थे। उन्होंने जान लिया कि कहीं न कहीं कोई रहस्य अवश्य है, जिसे आनन्द प्रकट करने में हिचकिचाहट महसूस कर रहा है। पर क्या रहस्य है वह ? क्या हो सकता है ?

चाय नीरस वातावरण में ही समाप्त हो गई। मिसेज भारद्वाज ने भाँप लिया कि मेरे शब्दों का असर आनन्द पर पूरा पड़ा है, उसके मुँह से रहस्य निकलना संभव नहीं है। और प्रसन्नता से स्लीपिंग रूप में घुस गईं।

डाक्टर और आनन्द दोनों एकसाथ उठे। डाक्टर बोले, 'आनन्द ! लॉन की ओर चलो, तुमसे कुछ जरूरी बात करनी है।'

'जरूरी बात !' आनन्द सिर से पैर तक काँप उठा। तो वह क्षण आ पहुँचा है जिससे मैं कतरा रहा था। मेरी मन:स्थिति और चेहरे पर के भावों ने ही सब बंटाधार कर दिया है। डाक्टर साहब पूछेंगे ? क्या जवाब दूँगा, क्या झूठ बोल सकूँगा ? क्या सही-सही बात कह सकूँगा और फिर यदि मिसेज भारद्वाज यमुना में··· और आगे की सम्भावित आशंका से ही आनन्द काँप उठा।

दोनों लॉन तक आ गये थे। नरम-नरम बिछी हरियाली आँखों को सुखकर प्रतीत हो रही थी। अचानक उसने अपने कंधे पर डाक्टर साहब का हाथ महसूस किया, 'आनन्द !'

'जी।' कठिनता से उसके मुँह से निकला।

'मैं जानता हूँ कि तुम एक अजीब उलझन में फँसे हुए हो, जिससे से निकलना तुम्हारे वश में नहीं रहा है। क्या मैं वह उलझन जान सकता हूँ।

'जी, ऐसी तो कोई बात नहीं !'

डाक्टर साहब हँस पड़े, 'आनन्द ! मैंने अपने बाल धूप में सफेद नहीं किये हैं। पर कोई बात नहीं, यदि मुझसे कोई बात छिपाने में ही तुम

कृतज्ञता समझते हो।'

आनन्द क्या उत्तर दे? मौनवत् साथ ही साथ टहलता रहा।

'क्या मीना को लेकर तुम्हारे हृदय में अन्तर्द्वन्द्व है? कुछ अभाव-सा महसूस कर रहे हो उसके बिना!' एकाएक बिना भूमिका के डाक्टर साहब ने पूछ लिया।

ओह! कितनी बड़ी गलतफहमी में है डाक्टर साहब! बोला, 'नहीं डाक्टर साहब, नहीं। मीना को लेकर मेरे दिमाग में कोई संघर्ष नहीं है, कोई उलझन नहीं है, किसी भी प्रकार की परेशानी नहीं है मेरे दिल में?'

'तो फिर,' कुछ रुक कर धीरे-धीरे डाक्टर साहब बोले, 'क्या मेरे घर से ही असन्तुष्ट हो?'

आनन्द रुक गया। पग थम गये वहीं पर उसके।

अचानक उसके कन्धे पर डाक्टर साहब के हाथ का दबाव बढ़ा। बोले, 'नीला के व्यवहार और चरित्र से तो परेशान नहीं हो, उसके चरित्र।'

आनन्द फफक पड़ा, आँखों से आँसुओं की धाराएँ बह निकलीं मानो सारा अन्तर्द्वन्द्व, घुमड़न और परेशानी आँखों की राह बाहर निकल पड़ने को आतुर हो।

'मैं सब समझ गया आनन्द! पहले मुझे शक था, पर अब वह शक विश्वास में परिणत हो गया।' और कहते-कहते डाक्टर साहब आँधी की तरह लॉन पार कर घर में घुस पड़े।

आनन्द वहीं खड़ा था—निश्चल, जड़वत्, अवाक्, मौन—उसके दिमाग में एक ही शब्द हथौड़े की तरह चोटें मार रहा था, 'अब?'

६

आज रविवार था। बंगले के लॉन में एक आरामकुर्सी पर मीना बैठी थी। दूसरी कुर्सी पर उसने दोनों पैर फैलाए हुए थे और अपनी दाहिनी हथेली पर अपनी ठुड्डी टिकाए वह किसी गहरे विचार-सागर में तैर रही थी।

प्रातःकालीन समय था, सुबह के करीब नौ, साढ़े नौ बजे का समय। आनन्द का हृदय भी अशान्त था, पिछले कुछ दिनों से वह देख रहा था कि डाक्टर भारद्वाज की कोठी पर अजीब-सी निस्तब्धता-सी छा गई है। डाक्टर साहब के ठहाके अब कम ही सुनने को मिलते हैं और कठिनता से वे अपना कुछ समय घर में बिताते हैं। अधिकांश में वे बाहर ही रहते हैं। काफी रात गए वे घर लौटते हैं और आते ही पलंग पर पड़ जाते हैं।

मिसेज भारद्वाज भी अब उसके सामने आने से कतराती थीं। दिन-भर अपने कमरे में पड़ी रहतीं और [illegible] रोमांस पूर्ण अमेरिकन नावेल पढ़ती रहती थीं। शाम का अधिकाँश [illegible] उनका भी बाहर ही बीतता था और सुबह काफी दिन चढ़े कमरे से बाहर निकलतीं। सुबह का नाश्ता और चाय भी अपने कमरे में ही लेतीं।

इन सब में आनन्द अपने-आपको ही दोषी पाता। वह सोचता, मेरी आँखों ने ही यह सब देखा, मेरे आँसुओं ने ही यह सब कहानी डाक्टर साहब के सामने प्रकट कर दी। डाक्टर साहब की इस विरक्ति का, चिन्ता और परेशानी का हेतु मैं ही तो हूँ। मेरी वजह से ही तो यह सब हुआ।

तो क्यों न वह यह कमरा छोड़ दे। क्या अधिकार है उसे डाक्टर साहब की कोठी में रहने का? इन दोनों के दाम्पत्य जीवन में खलल डालने वाला वह कौन है? यह कमरा छोड़ देना ही श्रेयस्कर है उसके लिए, नीला के लिए, डाक्टर भारद्वाज के लिए और सबकी प्रसन्नता के लिए।

पर क्या डाक्टर साहब उसे जाने देंगे? दूसरी जगह रहने की अनुमति दे देंगे, शायद हाँ, शायद नहीं। तो डाक्टर साहब को पूछ लूँ? पिछले कई दिनों से वह डाक्टर साहब से भेंट कर यह आज्ञा ले लेना चाहता था, पर

अवसर ही नहीं मिलता था। उनका मानस उलझनों से आक्रान्त था और इन्हीं उलझनों में घिरा वह आज सुबह ही मीना की कोठी की ओर चला आया था।

वह फाटक पार कर भीतर आया, पर मीना को इसका कुछ भी भान नहीं हुआ। पास आकर धीरे से बोला, 'मीना।'

अकचकाकर एकदम से मीना उठ खड़ी हुई, 'अरे आनन्द! आओ आओ! तुम तो इन दिनों ऐसे गायब रहे, जैसे गधे के सिर से सींग। दो-तीन बार टेलीफोन भी किया पर हर बार उत्तर मिला कि बाहर गये हुए हैं: क्या बात है? घर में पैर भी नहीं टिकता क्या? बाहर बहुत भटकने लगे हो?'

आनन्द एक कुर्सी सरकाकर उस पर बैठते हुए बोला, 'कहाँ? मैं तो बाहर बहुत ही कम गया, अधिकाँशतः घर पर ही रहा,' पर अचानक उसे पिछले दिनों की घटना दिमाग में घूम गई, बात संभालता हुआ बोला, 'हो सकता है तुमने टेलीफोन ही ऐसे समय किया हो।'

'हाँ, हाँ, बातें मत बनाओ—सुबह आठ बजे गायब, दिन को दो बजे करो तो गायब, शाम को आठ बजे, यहाँ तक कि रात को दस, साढ़े दस बजे टेलीफोन किया तो भी जनाब गायब। नौकर यदि टेलीफोन उठाता तो दूसरी बात थी। खुद मिसेज भारद्वाज ने उत्तर दिया है, गलत होने की बात ही कहाँ है।'

आनन्द हँस पड़ा, 'हो सकता है मीना, बाहर ही होऊँ, यों भी इन दिनों मैं अपने आपे में तो नहीं ही था।' और कहते-कहते सूर्य की किरणों से बचाव के लिए कुर्सी टेढ़ी कर ली।

मीना उठ खड़ी हुई। आनन्द का हाथ पकड़कर उठाती हुई बोली, 'चलो, कमरे में चलें, वहीं बातें होंगी, यहाँ देखो न, कितनी धूप चढ़ गई है।'

आनन्द भी उठ खड़ा हुआ और मीना के साथ ही साथ कमरे की ओर चल पड़ा।

कमरा अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से सुसज्जित था। भारी और कीमती

पर्दे लटक रहे थे। कमरे के बीचोबीच संगमरमर की टेबल पर निहायत ही खूबसूरत जापानी गमला रखा हुआ था जिसमें गुलाब का पौधा झूम रहा था। पौधे में एक खिला हुआ गुलाब मुस्कराकर बार-बार आनन्द को अपनी ओर देखने को विवश कर देता था। विकासोन्मुख अधखिला, अपने पूर्ण यौवन की ओर उन्मुख गुलाब का सुन्दर पुष्प। कमरे में कीमती कालीन बिछा था, जिस पर तीनों ओर तीन सोफा-सेट पड़े थे। दीवारों पर दो-तीन एडन, बुलेन, फाँग्जींग अदि के आधुनिक चित्र टंग रहे थे, जिससे मीना की सुरुचि-सम्पन्नता स्पष्ट झलक रही थी। एक कोने में कृष्ण की आकर्षक संगमरमर प्रतिमा खड़ी थी, जिसके वेणु नाद से समस्त चराचर मोहित हुआ-सा प्रतीत हो रहा था।

मीना के साथ कमरे में घुसते ही आनन्द ने वहाँ की प्रत्येक वस्तु को ध्यान से देखा। उसे यह समझते देर न लगी कि मीना सुन्दर है तो साथ ही साथ कलाप्रिय भी। आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध में ग्रस्त है तो शान्ति की चाह में विचरण करने वाली भी। उसने आज मीना को एक रूप में नहीं, कई रूपों में देखा।

आनन्द कुछ सकपका-सा रहा था वहां, संकोचवश। मीना से यह बात छिपी न रह सकी। उसके हृदय में गुदगुदी-सी उठ रही थी। आनन्द का हाथ पकड़कर एक तरफ संकेत करती हुई बोली, 'बैठिए न!'

मीना का स्पर्श आनन्द के सारे शरीर को रोमाँचित कर गया। हाथ झटककर सोफे पर बैठते हुए बोला, 'मुझे डर-सा लग रहा है, न मालूम क्यों?'

आनन्द के सीधे और सरल वाक्य मीना को आत्मविभोर कर गये। इठलाती हुई-सी पास आकर बोली, 'किससे? अपने-आपसे या मुझसे?

आनन्द ने नजरें ऊँची उठाईं। मीना का सीधा शुभ्र सरल हास्य उसके अन्तर्मन को छू गया। उसके हिमवत् निर्मल सौन्दर्य से वह अभिभूत-सा हो उठा। बोला, 'तुम से? इन सोफा-से सेटों और कीमती कालीनों से इन कलात्मक चित्रों और आज की इस जगमगाती सभ्यता से। पता नहीं क्यों मीना, पिछले कुछ दिनों से तो मैं अपने-आपसे ही डरने लग

गया हूँ।'

मीना घूम पड़ी। धीरे-धीरे वह गुलाब के पौधे के पास जा खड़ी हुई। और फिर हल्के-से गुलाब के पौधे को बाँहों में भरकर अपने मुस्कराते होंठ उस पुष्प पर रख दिए। धीरे-धीरे उस गुलाब से परे हट आनन्द के पास बैठती हुई बोली, 'आनन्द ! तुम डरपोक हो, शायद कायर भी।'

आनन्द हक्का-बक्का रह गया। अभी-अभी जो उसके सामने प्रतीकात्मक घटना घटी थी, उसका तात्पर्य वह समझ गया था : मीना के 'डरपोक' और 'कायर' शब्द अभी तक उसके दिमाग में घुमड़ रहे थे। फिर भी मन को शान्त करता हुआ सा बोला, 'क्यों ?'

मीना मुस्करा दी। फिर हौले से उसके हाथ को अपनी हथेलियों में लेकर दबाती हुई बोली, 'इसलिए कि तुम जानकर भी अनजान हो, दिखाई देते हुए भी तुम मतिभ्रम की तरह अँधेरे में भटक रहे हो। तुम्हारे चारों तरफ प्रकाश बिखर पड़ा है पर तुम्हारी बाँहों में इतनी ताकत नहीं कि उस प्रकाश को समेटकर बाँहों में भर सको, भींचकर अपने सीने से लगा सको। इस चतुर्दिक खिलती हुई बहार को तुमने कभी सरस होकर देखा है ? उसके साथ बैठे हो? नरम-नरम घास पर उल्टे-सीधे लेटे हो? मैं कहती हूँ: नहीं, फिर तुम्हीं बताओ, मैंने तुम्हें डरपोक और कायर कहा तो क्या अनुचित कहा ?'

आनन्द अवाक् था। वह मीना के हृदय में उठते हुए ज्वार को देख रहा था। पर देखकर भी अनजान था। उसके संस्कार, उसकी शिक्षा, उसका संयम बरबस उसे रोके हुए था। मीना के शब्द शीशे की तरह उसके दिल में उतरते ही चले जा रहे थे, पर फिर भी वह मौन था। अपना हाथ मीना की गिरफ्त से छुड़ाता हुआ बोला, 'मीना ! माफ करना, मैंने बहुत कोशिश की, पर सच कहता हूँ, मैं आज तक भी इस दुनिया को समझ नहीं सका। यह जो सभ्यता है, जिस पर नई पीढ़ी और उसके अभिभावकों को गर्व है, उस सभ्यता का तो क ख ग भी अभी तक मेरे पल्ले नहीं पड़ा। मैं जितना ही इसके पास जाता हूँ, यह उतनी ही तेजी से मुझे छिटककर परे फेंक देती है। जैसे कोई भूल से विद्युत् से छू जाय और

विद्युत् की तरंग उसे छिटकाकर दूर फेंक दे।'

मीना खिलखिला पड़ी, 'यही तो कमी है आनन्द ! तुमने इस सभ्यता को सदैव शक की ही नजर से देखा है, इसलिए तुम्हें इसमें सर्वत्र शक, धोखा, छल या झूठ ही नजर आता है और यही कारण है कि यह सभ्यता तुम्हें उठाकर दूर फेंक देती है और जानते हो इसका कारण ?'

आनन्द ने प्रश्नात्मक दृष्टि से मीना के चेहरे की ओर देखा। उसके चेहरे पर सहज जिज्ञासा और शिशु का भोलापन-सा छा रहा था।

'इसका कारण यह है आनन्द, कि तुम्हारा लालन-पालन एक भिन्न वातावरण में हुआ। तुम्हारे हृदय पर आज के नहीं, आज से सौ साल पूर्व के संस्कार पड़े। तुम जिन्दा जरूर इस युग में रहे, पर विचार का स्रोत वही प्राचीन रहा जिसमें कूप-मण्डूकता ही कूट-कूट कर भरी थी। तुम भी तो बाबा विश्वनाथ की नगरी से ही आये हो न।'

आनन्द चुपचाप मौन बैठा रहा।

'वहाँ क्या था, साधु, फकीर और संन्यासियों का जमघट। जो संसार से भागकर तन पर भस्म रमाकर अपने-आपको तथा संसार को धोखा देने में ही सचेष्ट रहे। जहाँ अपने-आपको सर्वज्ञ मान बाहर से आने वाले ज्ञान के लिये कपाट बंद कर दिये। घर की घुमड़ती हवा में ही साँस लेते रहे, जिन्होंने बाहर की उन्मुक्त हवा को छूत की बीमारी ही समझा ! और तुम्हारा लालन-पालन भी इन्हीं लोगों के बीच हुआ है—उन्हीं कर्मकाण्डियों, धर्मज्ञों और कूपमंडूकों के बीच।'

आनन्द से रहा नहीं गया। बीच में ही बोल उठा, 'मीना, मैं समझता हूँ तुम्हारा कथन केवल मिथ्या धारणा पर ही आधारित है, सुनी-सुनाई बातों पर जो तुमने धारणा बना ली है, वह असत्य ही नहीं, वास्तविकता से भी कोसों दूर है। यह बात जरूर है कि मेरा अधिकांश बचपन वहाँ बीता है, ऐसे धर्मज्ञों और कर्मकाण्डियों के बीच लालन-पालन हुआ है, पर वे कूपमंडुक नहीं, उदार हैं, धर्म और वास्तविकता को पहचानने वाले हैं। आज की इस पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध से ग्रस्त नहीं, जिसकी बुनियाद ही छल, कपट, धोखे और अविश्वास की नींव पर

आधारित है ।'

मीना खिलखिला पड़ी, 'ठीक है, ठीक है । कहे जाओ आनन्द, मैं सुन रही हूँ ।'

'मैं ठीक कह रहा हूँ मीना ! पश्चिम और पूर्व में यही तो अन्तर है ! पश्चिम हमेशा अन्तर्मुखी रहा, उसने अपने-आपको ही संवारा । मैं कैसा हूँ, कैसे सुखी रह सकता हूँ ? किस प्रकार से दूसरों का भी दमन कर अपने को श्रेष्ठ बना सकता हूँ फिर उसके लिए चाहे उसे कैसे भी साधनों का इस्तेमाल करना पड़े । छल कपट, धोखा, झूठ, यहाँ तक कि व्यभिचार का भी आश्रय लेकर दूसरों का दमन और शमन कर अपने आपको आगे बढ़ाया, अपनी सुख शान्ति और श्रेष्ठता के लिए हजारों-लाखों की सुख शान्ति छीन ली, पर 'पूर्व' सर्वथा इसके विपरीत वाह्यमुखी रहा । उसने जितना अपना ध्यान नहीं रखा, उतना दूसरों का रखा, किस प्रकार से दूसरे सुखी रहें, मैं कष्ट और अभाव सहकर किस प्रकार दूसरों की सहायता कर सकता हूँ । अपने-आपको मिटाकर मैं किस प्रकार दूसरों का हित साधन कर सकता हूँ, यही विचार उसके मन में रहा और यही भेद पूर्व और पश्चिम का रहा । यही कारण है कि जहाँ भोग-विलास को तुम सर्वोच्च उपलब्धि मान बैठी हो, वहाँ मैं उसे सभ्यता का प्रथम चरण मानता हूँ ।'

मीना दो क्षण मौन उसी प्रकार सोफे पर बैठी रही, फिर धीरे-धीरे बोली, 'तो इसका तात्पर्य यह है कि जीवन में भोग-विलास व्यर्थ है, ऐश-आराम केवल दिवा स्वप्न है । मानव इनसे दूर रहे, अछूता रहे ।'

'नहीं मीना, अछूता नहीं, उनसे लिप्त रहे, पर उसी प्रकार जिस प्रकार जल में कमल रहता है । जल में होते हुए भी जल से दूर, असम्पृक्त, ठीक उसी प्रकार ।'

'पर आनन्द, तुम्हारा कथन कि भोगों से दूर रहना ही जीवन है, तुम्हारे ही पौराणिक ग्रंथ नहीं मानते । क्या तुम्हारा आर्य जीवन जिसे तुम सर्वश्रेष्ठ जीवन कहते हो, इस प्रकार से रहता था जैसे जल में कमल ।'

आनन्द ने मीना की ओर देखा । बोला, 'हाँ, ठीक ही तो है ।'

मीना मधुरता से हँस पड़ी । बोली, 'तुम भूल कर रहे हो आनन्द ! आर्य तो भोगों में बुरी तरह ग्रस्त थे । तुम्हीं बताओ, क्या इन्द्र गौतम की पत्नी के साथ सहवास करने को आतुर नहीं था और उसने उस सती-साध्वी को फँसाने के लिए क्या-क्या नहीं किया ? क्या चन्द्रमा इस पाप-कर्म में इन्द्र के साथ नहीं था ? क्या ब्रह्मा अपनी पुत्री के साथ ही सहवास करने के लिए उसके पीछे कामातुर-सा नहीं दौड़ा था ? तुम्हारे कृष्ण ने गोकुल और वृन्दावन की किस युवती को अछूती छोड़ा ? क्या तुम्हारे शिव भीलनी पर फिदा न थे ? क्या कुन्ती के कौमार्यावस्था में ही लड़का नहीं हो गया था ?······कहो आनन्द ! तुम्हारे कितने आर्यों के नाम गिनाऊँ···एक नहीं···दो नहीं···सैकड़ों हजारों उदाहरण मेरे पास है···'

आनन्द दो क्षण मौन रहा । उसका दिमाग तेजी से घूम रहा था । वह आश्चर्य कर रहा था मीना पर, कि एक कुँआरी लड़की, भोग और सहवास शब्दों का कितने धड़ल्ले से प्रयोग कर रही है । 'सेक्स' पर कितनी निर्लज्जता से बातें कर रही है । उसी पिता की सन्तान···जो···'और उसका दिल घृणा से भर गया, फिर भी चेहरे पर उन भावों को प्रकट नहीं होने दिया ।

पर साथ-ही-साथ वह मीना की युक्तियों का कायल भी हो रहा था । मात्र इक्कीस वर्ष की तरुणी अपने विचारों को कितनी स्पष्टता से प्रस्तुत कर रही है ! ज्ञान और अनुभव बपौती नहीं, और न ही उन पर समय का बन्धन है । अल्पवय में ही मीना जिस कुशलता से अपने विचार प्रस्तुत कर रही है, वे निश्चय ही सराहने योग्य हैं ।

'बोले नहीं आनन्द ! क्या सोचने लग गये ?'

'तुमने जिन आर्यों का उदाहरण दिया और जिन घटनाओं से उनका सम्बन्ध जोड़ा, वे घटनाएँ नहीं, मात्र प्रतीक हैं । प्रतीकों के माध्यम से उन ग्रन्थों ने जो विचार व्यक्त किये, उन्हें तुम भोग-विलास के पंक में घसीट लाईं ।"

मीना हँस पड़ी । बोली, 'जाने दो आनन्द ! मैं तुमसे इन घटनाओं

की सफाई नहीं माँगती। पर तुम्हारा जो उत्तर है, वह स्वयं में ही कितना खोखला है इसका अनुमान शायद तुम स्वयं लगा चुके हो। प्रतीक मात्र कह कर तुमने बात पर जो उज्ज्वल चमक लाने की कोशिश की है, वह व्यर्थ है। भोग-विलास मानव जीवन का ठोस सत्य है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। हाँ, कुछ समय के लिए इससे दूर भागा जरूर जा सकता है, पर सदा-सर्वदा के लिए नहीं।' और मीना सोफे पर आनन्द के पास और अधिक सरक गई।

आनन्द सोफे के उस किनारे तक जा पहुँचा था जिसके आगे बढ़ने का कोई रास्ता न था। पलायन की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचने के बाद अब उसके सामने केवल यही मार्ग बचा था कि वह वापस लौटे।

कुछ देर तक आनन्द चुपचाप बैठा रहा। उसकी दृष्टि उस झूमते गुलाब पर पड़ी थी जिसे अभी-अभी मीना ने चूम लिया था। परन्तु कुछ क्षण सोच लेने के उपरान्त आनन्द ने धीरे से पूछा, 'एक बात कहूँ ?'

मीना गम्भीर हो गई। बोली, 'अवश्य ! इसमें पूर्व आज्ञा लेने की कोई जरूरत नहीं...।'

'पढ़ाई के बाद तुम्हारा क्या विचार है ? क्या विवाह करोगी ?'

प्रश्न इतना आकस्मिक था कि मीना इस प्रकार के प्रश्न के लिए तैयार न थी। कुछ समय में संयत होने के उपरान्त बोली, 'विवाह ! मैं पूछती हूँ आनन्द, कि क्या विवाह जीवन का आवश्यक कर्तव्य है ? क्या बिना विवाह के जीवन नहीं गुजर सकता ? विवाह एक बन्धन है मैं इसे एक बन्धन से ज्यादा नहीं समझती। मुझे विवाह शब्द से ही चिढ़ है।'

आनन्द एकटक मीना की ओर देखता जा रहा था। बोला 'क्यों ?'

'और नहीं तो क्या ? विवाह से नारी का जीवन इतना रुंधा-रुंधा और बन्द, अवरुद्ध-सा हो जाता है कि उसे साँस लेने की भी जगह नहीं मिलती। उसके जीवन पर, मन पर और विचारों पर पुरुष हावी हो जाता है। वह उसे अपनी बनाकर रखना चाहता है, केवल अपनी। दूसरा यदि भूल से भी उसकी ओर देख लेता है तो उसके दिल में सन्देह के कीट उत्पन्न हो जाते हैं। वह संशयालु हो जाता है और उस स्त्री के

प्रति और ज्यादा कठोर हो जाता है। मैं इस प्रकार घुटी हुई जिन्दगी जीने की अभ्यस्त नहीं। किसी एक की हुकूमत में आबद्ध रहूँ, यह मुझे गवारा नहीं।'

'तुम्हारी स्वच्छन्दता का अर्थ यह तो नहीं कि नारी पति की अवज्ञा कर प्रत्येक पुरुष के सम्पर्क में आवे, उसके साथ रंगरेलियां मनावे...'

मीना हँस पड़ी। बोली, 'आ गये न अपनी पुरुष जाति पर, मैं कहती हूँ न कि सन्देह उनके दिल में जन्म से ही साथ आता है। स्वच्छन्दता का तात्पर्य तुम कतई गलत समझ बैठे हो। नारी नारी है, वह वेश्या नहीं। उसे अपने नारीत्व पर गर्व होता है, वह बाजारू होकर जीना पसन्द नहीं करती। नारी स्वय योग्य है। अपना भला-बुरा खुद सोच सकती है। अब वह जमाना नहीं रहा कि एकान्त देख कर ही पुरुष उस पर हमला कर देगा और वह बेबस भेड़ की तरह आत्मसमर्पण कर देगी। उसे अपने आप पर विश्वास है।'

'पर मीना, फिर भी पति का अस्तित्व तो जीवन में आवश्यक है ही। विवाह और पति, ये दो ऐसे कवच हैं जिसे भेद कर पराया पुरुष एक-दम से हमला नहीं कर सकता। बाजार में खुले पड़े हुए माल को हर कोई लूटना चाहता है। पर जहाँ पर पहरेदार है, वहाँ हर एक नहीं जा सकता। उस माल को हड़प लेने का साहस एकदम से उसे नहीं होता।'

'मैं तो पहरेदार ही नहीं चाहती। और सच कहना आनन्द, क्या पहरेदार पति के होते हुए नारी पूर्णतः सुरक्षित रहती है। तुमने अभी जिन दो कवचों का जिक्र किया, क्या उसके नीचे नारी सुरक्षित है ? आनन्द ! तुम्हारी दलील थोथी और मिथ्या है। मैं कहती हूँ कि 'पति' और 'विवाह' की आड़ में नारी चाहे तो और अधिक खुलकर खेल सकती है। पति रूपी बाड़ तो नगण्य होती है, वह चाहे तो इसके नीचे और ज्यादा मौज कर सकती है। उल्टे वह समाज के लांछनों से सुरक्षित रहती है। समाज और धर्म के ठेकेदारों की फिर हिम्मत नहीं पड़ती कि उसकी तरफ अंगुली उठाएँ। तुम बताओ आनन्द, क्या मैं ठीक

नहीं कह रही हूँ ? तुमने कितने विवाहित पति और पत्नियाँ देखी हैं ? मुझे बताओ, अवसर मिलने पर कौन चूकता है। तुम तो देख चुके हो, तुमसे तो छिपा नहीं है ?...'

आनन्द एकदम से चौकन्ना हो गया। तो क्या इसे मिसेज भारद्वाज और राय का किस्सा मालूम हो चुका है ! पर इसे क्या पता ? फिर इसके यह कहने का, कि तुम तो देख चुके हो, तुमसे क्या छिपा है, का क्या तात्पर्य हो सकता है। संभवत: साधारण रूप में ही बात कही हो। उसने मीना के चेहरे पर अर्थपूर्ण दृष्टि डाली। वहाँ किसी प्रकार की गोपनीयता या कुटिलता के भाव न देख वह चुप हो गया।

'और सच बात ही कहलाना चाहते हो आनन्द बाबू, तो मैं कहूँगी, मुझे 'हस्बैंड' शब्द से ही चिढ़ है' बात को आगे बढ़ाती हुई मीना बोली 'यह शब्द जटिलताओं, यंत्रणाओं और बंधनों से जकड़ा हुआ है।'

'तो फिर तुम चाहती क्या हो ?'

'मैं चाहती हूँ प्रेम ! विशुद्ध प्रेम, संसर्ग और वासना से परे का प्रेम ! पर इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि मैं इस संसार से परे की चीज हूँ, या मुझमें इच्छाएँ नहीं, सेक्स की भावनाएं नहीं। मैं भी तो नारी हूँ, हाड़-माँस की बनी हुई। मेरे पास भी तो एक दिल है, छोटा-सा फुदकता हुआ, कोमल और मैं उसकी इच्छाएँ भी तो अतृप्त नहीं रख सकती...' और कहते-कहते मीना ने अपना सिर आनन्द के कंधे पर टिका दिया।

बालों में से मस्त सुगंधित उठती हुई महक आनन्द को आत्मविभोर कर रही थी। वह ज्यों-ज्यों मीना को समझने का प्रयत्न करता जा रहा था, त्यों-त्यों अधिकाधिक उलझता जा रहा था। उसके दिमाग के कई अवरुद्ध जाले साफ हो रहे थे और उसमें से छनकर जो प्रकाश की किरणें आ रही थीं, वे नई थीं, अनुपम थीं, अलौकिक थीं। कई ऐसे विषय, जिन पर चर्चा करना आनन्द समय बरबाद करना समझता था, अब समझने लगा था और उसके सामने यह स्पष्ट होता जा रहा था कि बन्द, अवरुद्ध और नैतिक नियमों से जकड़ा जीवन पूर्ण जीवन नहीं कहा जा सकता। स्नेह

और प्रेम की रसमय फुहारें वहाँ तक पहुँचने में पूर्णत: अक्षम रहती हैं। और यदि इन फुहारों का स्पर्श नहीं मिलता तो जीवन धीरे-धीरे सूखकर रस-हीन, मृत तुल्य हो जाता है। उसकी निगाहें उठीं। उसने मीना को नई दृष्टि से देखा, कितनी खूबसूरत है मीना ! कितनी पकड़ है इसमें, बात के तह तक पहुँचने की जो ताकत है, मीना में वह निश्चय ही सराहने योग्य है।

आनन्द ने धीरे से उसके सिर को ऊपर उठाया। मीना की नजरें आनन्द की नजरों से टकरा गईं। बोली, 'किस भूल-भुलैया में भटक गये आनन्द बाबू ?'

आनन्द चैतन्य हुआ। अनजाने ही उसके होंठों से निकल गया, 'कहीं ? कहीं भी तो नहीं ?'

मीना खिलखिलाकर हँस पड़ी और एकबारगी ही सारा कुहासा फट गया। अपने छोटे-छोटे मुक्ता-सदृश दाँतों को चमकाती हुई मीना बोली, 'बड़ा ऊल-जलूल भटकीला मार्ग है इस भूलभुलैया पर। जो एक बार इसमें उलझ जाता है वह निकलना भी तो नहीं चाहता। क्यों ! ठीक कह रही हूँ न ?'——

आनन्द ने कुछ उत्तर नहीं दिया। ज्यों-का-त्यों चुपचाप बैठा रहा।

'शायद मेरे स्पष्ट विचारों से तुम्हें आघात पहुँचा है ? ऐसा लग रहा है कि...'

'नहीं, ऐसी बात नहीं मीनाकुमारी, अपने-अपने विचार है, अपने-अपने सिद्धान्त हैं। पर तुमने पति और विवाह को लेकर जो धारणाएँ बना ली हैं, वे मुझे उचित प्रतीत नहीं होतीं। तुम खुलकर खेलना पसन्द करती हो, मैं मर्यादा में सीमित रह कर जीना चाहता हूँ। बिना मर्यादा के तो नदी भी किनारे को तोड़-फोड़ कर मानव जाति को नुकसान ही पहुँचाती है, लाभ नहीं। विश्रृंखल, अस्त-व्यस्त, उच्छृंखल, और मर्यादाहीन जीवन वरदान नहीं, अभिशाप ही है।'

मीना इस बार गम्भीर हो गई। बोली, 'तुमने काफी विशेपण एक जगह एकत्र कर अपनी बात पर बल देने का विचार किया है। पर ये

प्रयुक्त शब्द ही स्वयं में कितने मर्यादाहीन हैं यह तुम स्वयं नहीं जानते।'

यह आनन्द पर चोट थी। और वह कुछ कहना ही चाहता था कि मीना बोल उठी, 'चलो, उठो, इस समय इन विषयों पर सिर खपाना व्यर्थ है। समय अपने-आप प्रश्नों का उत्तर दे देता है, और मैं सोचती हूँ अपने इन प्रश्नों का उत्तर समय अपने-आप ही देगा।'

'अपने' शब्द आनन्द को एकबारगी ही हिला गया, साथ ही उसके अन्तर में मीठी-सी गुदगुदी भी हुई। तो क्या मीना मेरे साथ विवाह करना चाहती है। पर 'विवाह'! विवाह और पति शब्द से ही तो उसे चिढ़ है।

आनन्द ने सिर को झटका दिया और 'हुंह' कहकर विचारों को एकबारगी ही परे धकेल दिया।

मीना उसी प्रकार आनन्द से सटकर बैठी रही। वातावरण अत्यन्त रोमांटिक और खुला-खुला-सा हो गया था। मीना के हृदय में आनन्द को लेकर हल पची हुई थी और इस एकान्त ने तो उसे और भड़का दिया था। ह उसी प्रकार मादक अवस्था में अपनी गोरी सुडौल बाँहें आनन्द के गले में डाल झूलती हुई-सी बोली, 'डियर आनन्द!'

आनन्द सकपका गया। यह उसके लिए बिल्कुल अलग ही अनुभूति थी। उसके ललाट पर पसीना छलछला आया।

मीना उसी प्रकार मादक नयनों से आनन्द को ताक रही थी, उसका भूखा यौवन पुकार-पुकार कर निमन्त्रण दे रहा था। उसकी प्यासी प्यास बेचैन थी, उसके तृपित होंठ प्यास बुझाने को आतुर थे। उसका धड़कता यौवन किसी से एकरस हो जाना चाहता था। मीना के पतले-पतले होंठ फड़फड़ाये, 'डियर आनन्द, किस मी! प्लीज...'

आनन्द उसी प्रकार बैठा रहा, जैसे उसका सारा रक्त शरीर से निचोड़ लिया गया हो। परन्तु मीना के शब्द कानों में पड़ते ही वह चैतन्य हुआ और उसे वास्तविक स्थिति का भान हुआ। वह मादक हो उठा। उसके होंठ कुछ ढूँढ़ने के लिए नीचे झुके। उसकी बाँहें यौवन के वेग को समेटने के लिए आतुर हो उठीं। होंठ और झुके...झुके। पर

दूसरे ही क्षण वह छिटककर दूर जा खड़ा हुआ। उसके होंठ अधूरे ही रह गये, बाँहें तरसती ही रह गईं।

'मुझे यह पता न था मीना कि...' उसके होंठों से निकला।

'डीयर!...बस...सिर्फ एक बार...' और मीना ने सोफे पर पड़े-पड़े ही बाँहें फैला लीं। उसका सीना जोरों से धड़क रहा था, जिससे उसका उठान उठकर गिर रहा था। मूक, मौन और अनिवर्चनीय निमन्त्रण था...।

'मैं इस प्रकार का आदी नहीं मीना...यह...' और उसके पाँव दरवाजे की ओर बढ़ गये।

मीना का यौवन बिखर गया। मस्ती का जाम छलछलाकर चारों तरफ फैल गया। प्यासे होंठों से निकला, 'पुअर...कायर...' और फिर स्वयं ही खिलखिला पड़ी।

'पुअर' और 'कायर' शब्द बर्छी की तरह आनन्द के सीने में गड़ गये। यह नारी की ओर से उसके पुरुषत्व का अपमान था। वह तिलमिला गया, पर फिर भी अपने-आपको संयत कर, तूफान-वेग से कमरे के ---- हो गया।

७

जब से डाक्टर भारद्वाज केरल से लौटे हैं, कुछ सूना-सूनापन-सा उन्हें महसूस होने लगा है। चारों तरफ घुटन, एक अजीब प्रकार की चुप्पी उस घर में व्याप्त-सी दिखाई दे रही थी। ऐसा लग रहा था मानो कुछ अनहोनी घट गई है। उन्होंने एक बार दबे स्वर से रामू से भी पूछा, पर कुछ पता न चला। चाय पर भी नीला उस प्रकार से नहीं चहकी, जिस

प्रकार से हमेशा होता था। ऐसा लग रहा था मानो सुस्ती का लबादा ओढ़े नीला पलंग पर पड़ी है। न स्वर में वह खनखनाहट है और न हँसी की चुहल। कुछ असमंजस से डॉक्टर साहब ने नीला को पूछा भी; पर कुछ स्पष्ट नहीं हुआ। धुँध जो चारों ओर छाई हुई थी, उसी प्रकार रही। सूर्य की एक किरण तक भी तो उसमें न घुस सकी।

और इन सब में आनन्द का व्यवहार तो एकदम से ही अप्रत्याशित था। स्टेशन पर भी जब उन्होंने इधर-उधर नजरें दौड़ाई थीं, तो आनन्द कहीं नजर नहीं आया था। 'ऐसा तो हो नहीं सकता। उसे तो मालूम था कि मैं उस गाड़ी से आ रहा हूँ, फिर स्टेशन पर क्यों नहीं आया?' और जब ड्राइवर दीखा तो कार में बैठते ही सबसे पहले यही प्रश्न किया था, 'आनन्द नहीं आया क्या?'

और ड्राइवर के मना करने पर वे सोच में पड़ गये। कोई जरूरी काम हो गया होगा, और इन्हीं विचारों में वे घर लौटे थे। सफर की थकावट ने उन्हें चूर-चूर कर दिया था और उस पर गाड़ी भी तो ग्यारह बजे प्लेटफॉर्म पर पहुँची थी। घर आते-आते तो यों ही बारह, सवा बारह बज गये थे। नीला से एक-दो बातें करनी चाहीं, पर उसे नींद में देख जगाना ठीक नहीं समझा और जाकर सो रहे।

पर सुबह से ही वातावरण भारी-भारी-सा लग रहा था। इस पर भी चाय पर जब आनन्द को बुलाया और उससे 'मना' का उत्तर आया तो चकित रह गये। 'जरूर मेरे पीछे कोई-न-कोई ऐसी बात हो गई है जो इस वातावरण को बोझिल बना रही है, पर बात है क्या?' और सोचते-सोचते वे खुद आनन्द के कमरे तक जा पहुँचे थे।

अस्त-व्यस्त और उदास सूरत में आनन्द को देखा तो डॉक्टर साहब से रहा नहीं गया। उसे जबरदस्ती चाय की टेबल तक ले गये। नीला भी आई, पर वातावरण की गम्भीरता बनी ही रही। यद्यपि डॉक्टर साहब ने एक-दो चटकुले छेड़े भी, पर जो उदासी के बादल छा गये थे, वे उसी प्रकार छाये रहे, जरा-सा भी अन्तर नहीं आया। डाक्टर साहब ने महसूस कर लिया, हो-न-हो कोई बात जरूर है, और वह भी गहराई लिये, जिसने

आनन्द को बांध रखा है, अन्यथा आनन्द इतना हल्का नहीं है कि जरा से वेग से टूट जाय, विचलित हो जाय। चाय पीते-पीते भी वे बराबर महसूस कर रहे थे कि आनन्द नजरें बचाने के साथ-साथ कुछ कहना भी चाहता है, पर कुछ ऐसा अज्ञात बंधन है जिसने उसे जकड़ रखा है और चाहते हुए भी नहीं कह पा रहा है।

और जब लॉन में जरा एकान्त पा, डॉक्टर साहब ने आनन्द के कंधे पर सहानुभूति का हाथ रख कर उस अज्ञात पर्त को जरा सा कुरेदा कि सारा सन्देह विश्वास में परिणत हो गया। आनन्द फफक-फफक कर रो पड़ा! जो बात उसके होंठ कहने में असमर्थ थे, आँखों ने कह दी और आँसुओं ने तो सारी बात इस प्रकार से स्पष्ट कर दी कि कुछ अनकहा ही नहीं रहा कहीं भी तो कुछ गोपन नहीं रहा।

'तो क्या नीला इतनी आगे बढ़ गई है?' डाक्टर साहब का सारा शरीर एकबारगी ही झनझनाकर रह गया, अब कौन-सा बचपना है? जवानी की दहलीज भी तो कभी की लांघ चुकी, फिर ऐसी क्या बात थी कि नीला ने मुझे धोखा देने में भी कोई सोच-विचार [illegible] गया।—और उन्हें कुछ दिनों पूर्व की घटना याद हो आई।

शाम का ही तो समय था, मैं नई आई मैगज़ीन के पन्ने पलट रहा था और नीला चाय बना रही थी। उस दिन पार्टी से बुरी तरह थक कर आई थी, या 'मूड' बिगाड़ आई थी। पता नहीं क्या बात थी कि अस्त-व्यस्त सी दिखाई दे रही थी। मैं उसके मानसिक द्वन्द्व को तो देख रहा था, पर गहराई से उसे लिया ही नहीं। यों ही मिसेज सेठी के साथ कहा-सुनी हो गई होगी, और क्या?

चाय की टेबल ऐसी जगह थी कि सीढ़ियों पर के पौधे साफ नजर आ रहे थे। चाय का प्याला सामने रखती हुई बोली थी, श्रीमान जी! कल्पना लोक से वास्तविक लोक में तो आइये, चाय ठंडी हो रही है।

'ओह!' मैंने मैगज़ीन एक ओर रख चाय का प्याला उठा लिया था।

नजर उठी, तो देखा, सीढ़ियों पर का पहला गुलमोहर का पौधा मुरझाया हुआ था। शायद बहुत दिनों से पानी नहीं दिया गया था, या माली

ने ध्यान ही नहीं दिया था, पता नहीं क्या बात थी ।

नीला को तो ये पौधे जान से प्यारे थे । मैंने कुछ आश्चर्यमिश्रित स्वर में पूछा, 'यह गुलमोहर सूख क्यों रहा है, साला माली सार-सँभाल भी कर रहा है या नहीं ? मुझे तो लग रहा है कई दिनों से शायद पानी ही नहीं दिया गया है ?'

'क्या होगा पानी देकर !' और नीला ने प्याले की किनारी होंठों से छुआ दी थी ।

'क्यों ? क्या मोह नहीं रहा पौधों का, 'तुम तो इन पर जान देती थीं ।'

नीला चुप रही ।

'सुन्दर-सुन्दर फूल खिलते हैं तो घर कितना सजा-सजा सा लगता है, और तुम हो कि उदासीन ही हो गई हो इनसे ।' मैंने कुछ छेड़ते हुए पूछा ।

'कितने साल हो गये पानी देते-देते । कुछ फूल-वूल भी तो लगें तब न ! पानी में खुराक ही नहीं होगी तो क्या खाकर पौधा जिन्दा रहेगा और क्या फूल लगेंगे !'

'और मेरी आँखों के सामने मिसेज सेठी का गोल-मटोल बच्चा घूम गया । बात इतनी कड़वी थी कि गले से कलेजे तक चीरती ही चली गई । एकदम से जैसे चीख सा ही पड़ा था, "नीला ऽ ऽ ऽ !"

'चीखो नहीं, अपने आप को पहचानो ।' और कहता-कहती नीला चाय का आधा प्याला अनपिया ही छोड़ पलंग पर जा पड़ी थी और फफक-फफककर आँसुओं से तकिये को भिगो दिया था ।

कई दिनों तक 'मूड' उखड़ा-उखड़ा रहा । नीला से नजरें बचाता रहा, और घर में घुसते ही ऐसा प्रतीत होने लगता मानो मैं कोई अपराधी होऊँ, और अपनी कोठी में नहीं, कठघरे में घुस रहा होऊँ ।

कई दिनों बाद अपने-आपको 'नार्मल' कर सका था । इस बीच मैं डाक्टर चटर्जी से भी मिला था । रक्त का और शुक्राणुओं का 'टेस्ट' भी करवाया था और चटर्जी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा था—मिस्टर भारद्वाज ! तुम पूरी तरह से सन्तानोत्पत्ति में सक्षम हो, न मालूम तुम्हेंक्यों

और कैसे वहम हो गया है कि तुम मर्द नहीं हो । शायद मिसेज···'

और मैं सुन कर भी अनमुना कर घर लौट आया था । डाक्टर चटर्जी की ध्वनि कानों में अभी तक गूंज रही है—शायद मिसेज······पर मैं इस नीला को क्या कहूँ ··कैसे कहूँ···

डाक्टर भारद्वाज की आंखों के सामने उस दिन वाली घटना भी घूम गई जिस दिन रात को सवा ग्यारह बजे के करीब नशे में धुत्त नीला लौटी थी ।

मैं अपने-आपको संतुलित भी तो नहीं रख सका था । मैं स्वयं स्त्रियों की स्वतन्त्रता का हिमायती हूँ, पर इसका यह तो तात्पर्य नहीं कि वे अपनी मर्यादा ही भुला बैठें । रात के सवा ग्यारह बजे घर लौटना··· इस प्रकार से 'ओवर ड्रिंक' कर लेना···और···और···मैं भुंझला उठा था ।

मैं उसके पलंग के सामने की कुर्सी पर बैठ गया था और यथासंभव स्वर को मृदुल बनाकर पूछा था, 'होश में तो हो नीला !' पर मैं स्वयं भांप गया था कि स्वर मृदुल होते हुए भी [illegible] तीखा हो गया है ।

नीला ने अधखुली आंखों से मुझे घूरा [illegible] और बोली थी, 'तुम्हें कैसी लग रही हूँ ?'

'शायद 'ओवर ड्रिंक' हो गया है, इसलिए अपने-आप में नहीं हो ।'

और नीला खिलखिला कर हँस पड़ी थी । बोली थी, 'अब होश में रह-कर भी कौन से तीर मार लेते हैं ।'

'पर !'

'पर वर कुछ नहीं, मैं पूरी तरह होश में हूँ । तुम अपने-आपको होश में रख सको तो गनीमत है ।

मुझे गुस्सा आ गया, [illegible] कि उठकर चार झापड़ रसीद कर दूँ कनपटी पर, सारा नशा हवा हो जाय एक मिनट में, पर अपने-आपको जब्त कर बैठा रहा ।

दो मिनट इसी प्रकार बीते । वह पलंग पर लेट-सी गई थी । मैंने कहा, 'मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता । फिर तुम इस प्रकार से ड्रिंक करो;

या रात को काफी समय तक बाहर रहो…'

'क्यों ?'

'क्यों का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।'

'तो क्या मैं तुम्हारी जर-खरीद लौंडी हूँ जो इस प्रकार सुना रहे हो।'

'चुप रहो!' मैं चीख पड़ा था और भन्नाटे में उठ खड़ा हुआ था।

नीला की वही पैशाचिक हँसी फूट पड़ी थी। 'आज्ञा देने से पहले देख तो लो कि जो कुछ कह रहा हूँ, ठीक कह रहा हूँ…कोरी बातों से मर्दानगी दिखाने से कुछ नहीं होता।'

'नीला…! ऽ ऽ ऽ' मैं जाते-जाते रुक गया था' 'मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूँ, पर तुम ही' और आगे के शब्द मेरे गले में ही अटक गये थे।

वह हँस पड़ी थी, 'अच्छी बात है।' और मुँह फेर कर लेट गई थी।

मैं कमरे से बाहर निकल आया, पर रात-रात भर नींद नहीं आई। सारी रात करवटें बदलते ही बीती थी। सुबह उठा, तो सिर भारी था। आँखें लाल थीं, और चेहरे पर की सलवटें एकबारगी ही गहरी हो गई थीं।

तभी नीला आ गई थी। स्वस्थ प्रसन्नचित्त मुस्कराती हुई, रात के खिलास का कोई चिह्न उसके चेहरे पर न था। मैंने देखकर भी अनदेखा कर लिया और मुँह फेर लिया।

नाराज हो क्या ?'

मैं बोला नहीं।

वह पलंग की पाटी पर आकर बैठ गई और मेरे उलझे बालों में अपनी कोमल-कोमल अँगुलियाँ फेरती हुई बोली, 'बोलते भी नहीं।' और ऐसा लगा, मानो उसका गला रुँध गया हो।

मैंने उसकी ओर कनखियों से देखा। बड़ी-बड़ी आँखों में से आँसू निकल-निकलकर गालों पर लकीरें छोड़ते हुए बह रहे थे।

मैं एकदम से उठ बैठा। मुँह से निकला, 'नीला!'

वह फफक पड़ी और अपना चेहरा मेरे सीने में घुसेड़ दिया, 'मुझे मार डालो…काट डालो डाक्टर…मुझे खतम कर दो…'

'पर तुम्हें हो क्या गया है नीला! बात क्या है!'

भरती हुई आँखें उसने ऊपर उठाईं, 'मैंने कितना कुछ उन्हें कल रात कह दिया। मैं तो कभी नहीं पीती। मिसेज सेठी ने जबरदस्ती मुझे पिला दी…इतनी कि मैं होश में ही नहीं रही, और तुम जैसे देवता को मैंने न जाने क्या-क्या कह दिया।' और कहते-कहते वह बुरी तरह फफक उठी।

मेरे दिल में जमा दर्द एकबारगी ही धुलकर साफ हो गया। उसका सिर मेरे सीने से चिपका था। धड़कता हुआ सीना मैं अपनी गोद में ही महसूस कर रहा था। उसके बालों से निकली सुगंध जोर-शोर से मेरे दिल में हलचल मचा रही थी, और बहते हुए आँसू चीख-चीखकर कह रहे थे, नीला निर्दोष है! वह हल्की नहीं। मेरे जीवन में पिछले सत्रह वर्षों से साथ दिया है। सुख-दुःख को साथ भोगा है, परेशानियों और तकलीफों में कंधे-से-कंधा मिलाकर मेरे साथ चली है। मुझे कभी भी तो शिकायत नहीं रही। किसी भी बात पर शिकायत करने का अवसर ही नहीं दिया। नीला आज भी वही है। कल होश में नहीं थी, बहुत कुछ बक गई थी। पर आज होश में है, उसे दुःख है, पश्चात्ताप है। और मैंने हौले से उसका सिर दोनों हथेलियों में दबा ऊपर उठाया, 'नीला, क्या कर रही हो! कैसा बचपना कर रही हो! कोई नौकर वगैरह देख लेगा तो क्या सोचेगा…' और रूमाल से उसके आँसू पोंछ लिए थे।

और उस दिन के बाद नीला ने स्वयं पार्टियों में जाना छोड़ दिया था। मिसेज सेठी से मुलाकात करनी छोड़ दी थी और उसके बाद एक दिन भी उसने 'ड्रिंक' नहीं किया। मुझे तो एक दिन भी नहीं लगा। मैं पार्टियों में जाने को कहता भी, पर वह स्वयं हँसकर टाल जाती! नहीं जाती।

उस घटना के बाद नीला गम्भीर हो गई थी। मुझे कभी भी किसी भी शिकायत का अवसर नहीं दिया। डाक्टर चटर्जी वाली बात उसे सुनाई और किसी लेडी डाक्टर को दिखा देने का परामर्श भी दिया, पर उपेक्षा से नीला ने टाल दिया, 'हुँह! लिखा होगा तो अपने-आप हो जायेगा। देख लेना, मैं उमर भर बाँझ नहीं रहूँगी।' और कहती-कहती वह मेरी आँखों में आँखें डाल मुस्करा दी थी।

पर उस दिन जो आनन्द ने बात बताई, वह तो एकदम से ही अप्रत्याशित थी। क्या नीला एकदम से इतनी बदल सकती है? इतना बड़ा कदम वह उठा लेगी, ऐसी तो आशा ही नहीं की जाती थी? और उस दिन का आनन्द का चेहरा डाक्टर भारद्वाज के सामने घूम गया। सहानुभूति का हल्का-सा स्पर्श पा किस प्रकार से उसकी घुटन आँखों की राह बाहर निकल जाने को उद्यत हो गई थी।

मैं समझ गया था, बात नीला को लेकर ही है अन्यथा आनन्द इतना अधिक विचलित हो जाय, यह संभव नहीं था। और मैंने जब पूछा था, 'तो क्या राय और नीला···'तो आनन्द एकबारगी ही फफक पड़ा था। अभी तक मुझे राय पर सन्देह था, पर इस घटना के बाद वह विश्वास में परिणत हो गया। इतने समय की चुप्पी, घुटन और उदासीनता एकबारगी ही खुल गई। और चारों तरफ का वातावरण शान्त-सा हो गया, और इस स्पष्टता में मुझे नीला और राय साफ-साफ नजर आने लगे।

पर राय तो मेरा मित्र है। अभिन्न मित्र! फिर वह अपने मित्र को ही धोखा··· नहीं नहीं···बात कुछ समझ में नहीं आ रही है। राय ऐसा नहीं हो सकता। उसे किस बात की कमी है। घर में बीवी है, पास में दौलत है, यश है प्रशंसा है, फिर वह इधर मुँह मारे··· कुछ जँचता नहीं है। कई सालों से उसका मेरा सम्पर्क है। हाँ! यह बात दूसरी है कि वह कुछ खुली तबियत का आदमी है, औरत उसकी कमजोरी है। और उसके लिए वह पैसे को भी हाथ का मैल समझता है। पर वह इतना पतित तो नहीं कि मित्र की पत्नी से ही याराना करे। अपने अभिन्न मित्र को ही धोखा दे दे। मैंने तो ऐसा कुछ भी उसकी आँखों में नहीं देखा। उसी प्रकार आता है, हँसता हुआ। नीला पर उसी प्रकार देवरपन का हक जमाता है, सब कुछ निर्द्वन्द्व ··उन्मुक्त··। कहीं पर भी लुकाव-छिपाव नहीं। फिर···फिर क्या बात है? तो क्या आनन्द झूठा है? पर वह झूठ क्यों बोलेगा! वह मेरे सामने तो कम-से कम झूठ बोल ही नहीं सकता···तो फिर क्या बात है? नीला से पूछूँ···? बेकार! व्यर्थ में एक नया झंझट पैदा होगा··· एक ऐसी गुत्थी कि जिसे जितनी ही

ज्यादा सुलझाने की कोशिश की जाती है, वह उतनी ही ज्यादा उलझती जाती है।···सोचते-सोचते डॉक्टर साहब का सिर दर्द करने लगा। रिस्ट वॉच पर नजर डाली···चार सैंतीस हो रहे थे···।

उठे! नीचे उतरे, और गाड़ी में बैठ, गाड़ी का मुँह राय साहब के घर की ओर कर दिया।

नौकर द्वारा पता लगते ही राय भीतर से भागा आया। 'ओह, हो डाक्टर साहब! आज इधर कैसे भूल गये भाई!' पर दूसरे ही क्षण ऐसा लगा कि कुछ गलत हो गया है। बिना टेलीफोन किए ही यों एकदम से भारद्वाज कैसे आया है। जरूर कोई विशेष बात होगी और एकदम से उसके दिमाग में उस दिन वाली घटना घूम गई। आनन्द का आना··· उन्हें इस हालत में दोनों को देखना, और तुरन्त लौट जाना··· सब कुछ एक क्षण के लिए उसके दिमाग में कौंध गया।

तो क्या भारद्वाज को सब कुछ पता लग गया है? उफ! कितनी बड़ी गलती हो गई उससे। क्या सोच रहाहोगा डाक्टर। मानता हूँ डाक्टर मेरा मित्र है। वर्षों से रहते आये हैं, एक दूसरे से घरेलू सम्पर्क सा है, पर उससे क्या होता है। यह भी तो सही है कि मैं इस समय मित्र नहीं, आस्तीन का सांप हूँ, जो सम्मोहन कर के डस लेता है। कोई भी मित्र चाहे कितना ही गहरा हो, घरेलू सम्पर्क हो, पर यह कोई नहीं चाहेगा कि मित्र उसकी बीवी से ही इश्क लड़ावे! मैं उसकी बीवी का यार हूँ, और मैं यह भी मानने को तैयार हूँ कि नीला को इस काम के लिए मैंने ही तैयार किया है। नीला और डाक्टर इन दोनों के बीच घृणा के बीज बोने का भी उत्तरदायित्व मेरा ही है। डाक्टर समझदार है, विद्वान है, पर भोला है। वह जर्मनी, जापान, इंग्लैंड अमेरिका में जाकर विद्वत्ता की धाक जमा सकता है, पर औरत को किसी प्रकार सहेजना चाहिए, यह इसे नहीं आता। नीला पहली ही नजर में मुझे भाँप गई थी, या यों कहूँ कि मेरे दिल पर चढ़ गई थी। पर मैंने एकदम से झपटा मारना ठीक नहीं समझा। धीरे-धीरे उसे अपने सम्मोहन में लाता रहा। पर इसके लिए यह भी जरूरी था कि पति पत्नी के बीच की खाई चौड़ी

होती जाय और यह खाई जितनी ज्यादा चौड़ी होगी, मैं अपने उद्देश्य में उतना ही ज्यादा सफल होऊँगा। और इसीलिए यह किया भी। डाक्टर मेरा दोस्त था, इसके घर में जाने की मुझे कोई रोक-टोक नहीं थी, और यही कारण था कि मैं नीला से भाभी-देवर का सम्पर्क स्थापित कर सका। धीरे-धीरे उसे क्लबों में ले गया, ड्रिंक सिखाया, अंग्रेजी धुन पर नाचना सिखाया और ज्यादा-से-ज्यादा स्वतन्त्र करता गया। अपना बंधन कसता गया।

और यह भी तो सही था कि नीला मेरी ओर आकर्षित थी, उसकी आँखों की भूख मुझे साफ दिखाई देती थी। कभी कभी नउमें, उन आँखों में ऐसी चमक पैदा होती कि मैं झिलमिला जाता, पर ऐसी घड़ियों में भी मैं सयत रहता, अपने-आप पर काबू रखता। मातृत्व उसकी सबसे बड़ी हविश थी, और मैं इस सबका दोषारोपण डाक्टर पर करता। वह झुँझलाती, व्यथित होती, रोती, और सिसकती ... मैं धीरे-धीरे अवसर का लाभ उठाकर उस पर सहानुभूति का हाथ फेरता, उसके जख्मों को कुरेदता, और स्वयं ही उस पर मरहम लगाता, और यही कारण था कि नीला वेग से मेरी ओर खिंचती चली गई और एक दिन झोली में गिर गई।

और उस दिन भी मेरा क्या दोष था। उसका टेलीफोन पाकर भी मैं न जाता, तो यह उस पर अन्याय ही तो होता, परन्तु सामना होते ही मैंने देखा कि उसकी आँखों में वासना का सागर लहरा रहा है। मैं एकबारगी ही हड़बड़ा गया, पर साथ ही मैं सँभल कर पाँव उठाना चाहता था। नौकर-चाकरों की ओर से आश्वस्त हो जाना चाहता था, इसलिए चाय का बहाना कर बाहर सरका गया था। दूर-दूर तक कोई नौकर नजर नहीं आ रहा था। और यही उपयुक्त समय था। यही वह मौका था जब उसे मदिरा की तरह एक बार में ही पिया जा सकता था, और मैंने उसे पिया भी। उसकी प्यास क्या बुझाई, अपने प्यासे और जलते होंठों को भी तृप्त किया।

पर ऐन मौके पर आनन्द कहाँ से आ मरा। इतना अप्रत्याशित और

एकदम ... कि सँभलने का अवसर ही नहीं मिला। ऐसे समय में वहाँ रुककर भी क्या करता, तुरन्त निकल आना ही उपयुक्त था और यही किया भी ... पर ...

डाक्टर का हाथ पकड़े राय सीढ़ियों के पास ही खड़े थे। एकदम से राय चैतन्य हुआ ... 'ओह!' और डॉक्टर साहब का हाथ लज्जा से, कुछ परेशानी से हल्का-सा दबा लिया।

डाक्टर खड़े-खड़े एकटक राय का अन्तर्द्वन्द्व देख रहे थे। उसके चेहरे पर की बनती-बिगड़ती रेखाओं को भाँप रहे थे। बोले, 'कोई बात नहीं राय, सोच लो ...' और ठहाका लगाकर हँस पड़े।

राय साहब एकबारगी ही शर्म से गड़ गये, पर बात सँभालते हुए बोले, 'सोच रहा था, आज अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के आदमी को समय कैसे मिल गया कि इधर का रास्ता याद आ गया।'

अगली सीढ़ी पर पाँव रखते हुए डाक्टर साहब ने उत्तर दिया, 'कोई एक गुत्थी थी यार, सोचा राय से ही सुलझा लूं, और तो सुलझायेगा भी कौन?' और एक अर्थपूर्ण नजर राय के चेहरे पर डाली।

पैर की हल्की-सी ठोकर से बैठक का दरवाजा खोलते हुए राय बोले, 'पहले सुस्ता लो, बैठो तो सही। फिर गुत्थी तो अपन दोनों मिलकर भी सुलझा लेंगे।'

डाक्टर भारद्वाज डनलप के सोफे पर आराम से पैर फैलाकर बैठ गए।

'हाँ, तो अब यह बताओ कि क्या लोगे? शरबत मंगाऊँ या चाय? यों आजकल मौसम तो चाय का ही हो रहा है।'

'चाय ही मंगवा लो।' और कहकर डाक्टर साहब चुप से हो गये।

'अभी आया, जस्ट ए मिनट' और कहते-कहते राय नौकर को व्यवस्था करने को कहने के लिए अन्दर चले गये।

नौकर पानी के दो गिलास रख गया। 'मीना नहीं दिखाई दे रही है रे किशन, क्या बात है?' डाक्टर साहब ने नौकर से पूछा।

किशन जाता-जाता रुक गया 'हुजूर, मीना बीबी तो किसी पार्टी में गई है और मालकिन अंग्रेज़ी पिक्चर में। शाम को आने को कह गई हैं।'

'अच्छा···तो इस समय राय एकछत्र राज्य कर रहा है,' और कहते-कहते जोरों से हँस पड़े।

'नौकर चला गया था।'

'किस बात पर हँस रहे हो डाक्टर!' अन्दर आते-आते राय ने पूछा।

'मालूम हुआ कि इस समय तुम अटल एकछत्र राज्य कर रहे हो, सब जगह अपनी विजय की पताकाएँ फहरा रहे हो।'

राय बात के मर्म को भली प्रकार समझ रहा था, पर फिर भी उसे स्वाभाविकता से लेते हुए बोला, 'रेखा कई दिनों से पिक्चर के लिए जिद कर रही थी। मैंने कहा मुझे तो टाइम नहीं, तुम चाहो तो हो आना, शायद पिक्चर ही गई है।'

डाक्टर भारद्वाज मौन रहे। राय कभी-कभी नज़र उठाकर एक पल के लिए डाक्टर के चेहरे की ओर देख लेता था। वह समझ गया था कि डाक्टर आज किसी विशेष उद्देश्य से उसके घर आया है। वह यह भी जान गया कि डाक्टर को शायद उस घटना का भी पता चल गया है और संभवतः उसी पर चर्चा करने के लिए यहाँ आया है। डाक्टर की नजरों में कई प्रश्न तैर रहे थे। कौन-सा प्रश्न छिड़ेगा इसका निर्णय राय नहीं कर पा रहा था, पर फिर भी उसे यह चुप्पी खल रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे यह चुप्पी तूफान के पहले की शान्ति हो।

मौन तोड़ा डाक्टर साहब ने ही। बोले, 'राय! एक बात पूछ रहा हूँ, पर्सनल···'

राय एकटक डाक्टर के चेहरे की ओर देख रहा था।

'आज तो तुम कोर्ट से शायद जल्दी आ गये थे—करीब दो-अढ़ाई के लगभग ही···'

'हूँ···'

'तो यार! मिसेज राय अकेली पिक्चर गई, फिर तुम घर बैठे कौन-सा तीर मार रहे हो, साथ तो दे देना चाहिए···'

प्रश्न तीखा था। डाक्टर भारद्वाज शायद सीधे ही नीला का प्रसंग उठाना नहीं चाहते थे, इसीलिए बात मिसेज रॉय से शुरू की।

'कोई जरूरी नहीं डाक्टर कि मैं हरदम बीवी के गले में बँधा रहूँ। आज मेरा मूड नहीं था, और वह 'पिक्चर' जाना चाहती थी तो फिर मैं क्यों रोकूँ? बीवी को बाँधकर रखने के मैं पक्ष में नहीं। वह पढ़ी-लिखी है, स्वतन्त्र है, अपना भला-बुरा सोचती है और इस व्यस्तता के युग में दोनों हरदम साथ रहें ही, यह सम्भव भी नहीं लगता।'

डाक्टर साहब ने पेंसिल उठा ली और एक कोरे कागज पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचते हुए बोले, 'पर औरत को आजादी देना ठीक है? कभी-कभी एकान्त में जब मैं सोचता हूँ तो लगता है स्त्री स्वतंत्रता के लायक ही नहीं। मनु का कथन मुझे तो ठीक लगता है, कि 'नास्ति स्वातन्त्र्य मर्हति।'

राय मुस्करा पड़े। बोले, 'डाक्टर! अठारहवीं शताब्दी के लिए तो ये विचार ठीक थे, पर इस समय तो बीसवीं शताब्दी चल रही है। दुनिया इतनी तेजी से आगे बढ़ रही है कि यदि जरा भी शिथिल पड़े तो हम पिछड़ जायेंगे। पीछे रह जाएँगे। नारी को बहुत दिनों तक बाँधे रखा, शायद अब वह बँध कर जी नहीं सकती···'

'मैं मानता हूँ राय! और तुम्हारी बातों से मेरी शत-प्रतिशत सहानुभूति है; पर ये विचार जब व्यावहारिक जीवन में देखता हूँ तो मुझे इन सिद्धान्तों पर वहम होने लगता है। मैं भी देश-विदेश घूमा हूँ, स्वतन्त्र नारियों को देखा है, उन्हें निकट से पहचाना है, पर ऐसा लगता है, वह स्वतन्त्रता हमारे यहाँ आने में अभी कई वर्ष लगेंगे।'

नौकर चाय की 'ट्रे' रख गया। 'ट्रे' को अपनी ओर सरकाकर प्यालों को सीधा करता हुआ राय बोला, 'क्यों?'

'हमने स्वतन्त्रता का मतलब ही गलत लिया है राय ! भारतवासी कई वर्षों तक गुलामी में रहे न, इसलिए उनके दिमाग में गुलामी इस प्रकार से जड़ें जमाकर बैठ गई है कि चाहने पर भी उसका अस्तित्व मिटता नहीं। भारतीय नारी अभी स्वतन्त्रता को समझी नहीं है। स्वतंत्रता उसे समय से पहले मिल गई है। उसने स्वतन्त्रता का तात्पर्य लगाया है— उच्छृंखलता, ऐयाशी, भोग-विलास···'

डाक्टर साहब के प्याले में चाय का पानी और दूध डाल उसमें चम्मच हिलाते हुए राय बोले, 'यह तो सब जगह है, केवल भारत को ही क्यों घसीट रहे हो इसमें ? क्या अमेरिका में नहीं है ? इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली में नहीं है ? जहाँ तक ऐयाशी का तात्पर्य है, मैं कहता हूँ, उन देशों में भी स्वतंत्रता मिलने के बाद ऐयाशी बढ़ी है, भोग-विलास की तृष्णा बढ़ी है, सहवास की ओर जोरों से रुचि जागृत हुई है।'

'पर फर्क है राय ! उन्हें स्वतंत्रता मिली है तो तलाक की सुविधा भी मिली है। हमारे यहाँ के तलाक के नियमों की अपेक्षा वहाँ के नियम कहीं ज्यादा सरल हैं। इसके अलावा एक और बात है, वहाँ समाज के दांव-पेच इतने जटिल नहीं। यहाँ इण्डिया में स्त्रियों को स्वतंत्रता तो दे दी, पर समाज वैसा का वैसा जड़ बना रहा, उसमें परिवर्तन नहीं आया, और यही कारण है कि वहाँ विचार भेद से मनोवांछित प्राप्त करना सरल हो गया जबकि यहाँ लुक-छिप कर भोग-विलास की प्रवृत्ति बढ़ गई। क्यों झूठ कह रहा हूँ मैं···?

यह सीधी-सादी चोट राय पर थी। और राय इसे भली प्रकार जान गया था। पर चोट को साहसपूर्वक झेलते हुए कहा, 'इसके अलावा रास्ता भी तो नहीं है डाक्टर ! औरत घुट-घुटकर तो मरने से रही। एक जगह यदि उसे वाँछित प्राप्त्याशा नहीं मिले तो स्वाभाविक ही है कि वह उस जगह जाय या उससे सम्पर्क स्थापित करे जहाँ उसे अभीष्ट प्राप्त होता हो।' और एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाक्टर के चेहरे पर डाली।

''डोंट माइन्ड राय ! एक बात पूछूँ तो ! यदि मीना कल को इस प्रकार से अभीष्ट प्राप्त कर ले, तो क्या तुम बर्दाश्त कर लोगे ?' और कह

कर डाक्टर साहब ने अपना सारा ध्यान चाय की चुस्की में लगा दिया।

राय एकबारगी हिल गया। उसे यह ध्यान नहीं था कि डाक्टर इतना आगे बढ़कर ऐसा प्रश्न कर डालेगा। पर फिर सँभलते हुए बोला, डाक्टर ! मैं विचार-स्वातन्त्र्य में पूरा विश्वास रखता हूँ। मीना से गोपनीय रखकर मैं उसके बारे में कोई निर्णय करूँगा भी नहीं। पर यह भी सही है कि मीना आज यदि उस स्थिति तक पहुंच जाय, जहाँ विवाहित जीवन ही पहुँचता है, तो मैं शायद बर्दाश्त भी नहीं कर सकूँगा···'

'क्यों ?'

'हरेक प्रश्न का उत्तर देना आसान भी नहीं है डॉक्टर ! पर इस मामले में मैं बिल्कुल 'क्लीयर' हूँ। जिसका जो प्राप्तव्य हो, वह उसे मिलना ही चाहिए। पर एक अनधिकारी को कोई वस्तु मिल जाय, यह भी ठीक नहीं है। मीना का शरीर किसी एक की थाती है जिसे मैं सँभाल-कर रख रहा हूँ और समय आने पर मीना की इच्छा से किसी एक नव-युवक को वह थाती सौंप भी दूंगा। पर तब तक यदि छिप कर कोई इस थाती पर हमला करे या अनधिकृत चेष्टा करे तो मैं गोली मार देने से भी नहीं हिचकिचाऊँगा।'

डाक्टर धीरे-से मुस्करा दिये। बोले, 'इस प्रकार से तो तुम्हारा व्यक्ति-स्वातन्त्र्य वाला सिद्धान्त अपने-आप खंडित हो जाता है।'

'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भी तो सीमा होती है न आखिर। भारतीय संविधान में सभी को समान स्वतंत्रता प्राप्त है, पर इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि वह दूसरों का घर ही लूट लें। इस प्रकार जहाँ एक की स्वतंत्रता की रक्षा होती है, वहाँ दूसरे की स्वतंत्रता का हरण भी तो होता है।'

'तुम वकील हो, तर्क करना तुम्हारा स्वभाव है। पर एक बात पूछूँ। किसी पति की गैरहाजिरी में उसकी स्त्री को फुसलाकर उससे याराना करना क्या व्यक्ति-स्वातंत्र्य के अन्तर्गत आता है ?' डाक्टर साहब के होंठ गम्भीर हो गये थे। चेहरे पर की मुस्कराहट एक प्रकार से लुप्त हो गई थी।

जिस प्रश्न की आशंका थी, वही सामने आ गया। पर अब तक राय

सँभल चुके थे। बोले, 'फुसला कर यदि को[illegible] प्राप्त करे तो यह धोखा है डाक्टर ! सरासर अधर्म है।'

'यह धर्म-अधर्म कब से मानने लगे ?'

'धर्म-अधर्म तो शुरू से ही रहे हैं, हाँ रूप बदल गया है। तुम इसे कर्तव्य-अकर्तव्य के रूप में गिन सकते हो। पर आज की विवाहित नारी इतनी भोली नहीं कि वह बहकावे में आ जाय। अपना भला-बुरा तो प्रत्येक सोच लेता है।'

नौकर कप-प्लेट समेटकर ले गया था। डाक्टर साहब ने इत्मीनान से सिगरेट सुलगा ली और पीठ को सोफा से लगाते हुए बोले, 'राय ! तुमने अभी विवाहित जीवन की बात कही। मैं एक बात पूछता हूँ कि विवाह के बाद स्त्रियां क्या चाहती हैं ? अपने पति के अलावा दूसरे में क्यों अनुरक्त हो जाती हैं ? क्या कारण होता है कि वे एक से ऊबकर दूसरी ओर सतृष्ण नजरों से देखने लग जाती हैं ?'

राय महसूस कर रहा था कि डाक्टर बड़ी चतुराई से अपने मूल प्रश्न [illegible] पहुँच रहा है। बोला, 'इसका कोई एक तो कारण है नहीं। कई कारण [illegible] सकते हैं। शायद पति के संसर्ग में उसे वह सुख नहीं मिल रहा हो, जो वह चाहती है या यह भी हो सकता है कि वह मानसिक रूप से सन्तुष्ट न हो। केवल शारीरिक तुष्टि ही सब कुछ नहीं। आज शिक्षा का फैलाव इतना ज्यादा हो गया है कि पति-पत्नी दोनों मानसिक रूप से उन्नत होते हैं। ऐसी स्थिति में केवल शारीरिक तुष्टि कोई मायने नहीं रखती। नारी की जब तक मानसिक इच्छा पूर्ण नहीं हो जाती, वह सन्तुष्ट हो ही नहीं सकती।'

'तो शारीरिक सम्पर्क व्यर्थ है केवल मानसिक तुष्टि ही सब कुछ है ?'

'नहीं, दोनों अन्योन्याश्रित हैं, एक के बिना दूसरा व्यर्थ है। दोनों का उचित समन्वय ही पूर्ण जीवन कहा जा सकता है।'

'तो फिर इन दोनों में प्रेम का स्थान कहाँ पर है ?'

'प्रेम तो इन दोनों के मूल में है डाक्टर ! बिना प्रेम के आकर्षण

भव नहीं। किसी अपरिचित के सामने नारी अपना सर्वस्व नहीं खोलती। तुमने सुना नहीं कि नारी में पुरुष की अपेक्षा काम-भावना चौगुनी प्रबल होती है, तो लज्जा आठ गुनी। नारी को प्राप्त करने के लिए लज्जा का लबादा फेंकना तो बहुत जरूरी है।'

'तो फिर राय ! स्त्रियाँ कैसा प्रेम चाहती हैं ?' एक गहरा कश लेकर डाक्टर साहब ने सिगरेट 'एश ट्रे' में डाल दी।

राय दो क्षण मौन रहा। फिर बोला, 'सुन कर हँसोगे तो नहीं ?'

'नहीं ! बिलकुल नहीं ?'

'तो सुन लो, नारी वहशियाना प्रेम चाहती है, जंगलीपन। भावुक और ठंडा प्रेम उसके लिए व्यर्थ होता है। वह प्रेम के साथ भीषण आक्रमण चाहती है—चीते-सा आक्रमण, और काम-प्रबलता में वह आक्रमण स्त्री हँसते-हँसते सह लेती है।'

डाक्टर मौन हो गया। वह किसी गम्भीर चिन्ता में डूब गया। राय साहब का दिल धड़कने लगा। शायद डाक्टर अपने-आप को तोल रहे हों। बात कहने के लिए अपने-आपको व्यवस्थित कर रहे हों। डाक्टर साहब धीरे से आँखें खोलीं। बोले, 'तुम सही हो सकते हो रा[illegible] ! इस मामले में तुम मुझसे कहीं ज्यादा सफल हो…' और उनका हाथ राय साहब के हाथ पर रह गया।

एक क्षण के लिए राय साहब को ऐसा लगा, मानो ठंडा गोश्त उसके हाथ पर चिपक गया हो, जिसमें असंख्य चीटियाँ हों जो उसके सारे शरीर में फैलकर रेंग रही हों।

फिर डाक्टर साहब के होंठ फड़फड़ाये। धीरे-से बोले, 'राय ! तुम्हारे मुँह से प्रेम की व्याख्या और नारी का प्राप्तव्य…दोनों का नया रूप देखा। शायद तुम सही हो। पर वय प्राप्त व्यक्ति के लिए भी यह जरूरी है ? जिसकी चमड़ी पर सलवटें पड़ गई हों, वह व्यक्ति ऊष्णता कहाँ से लाये ? वहशीपन कहाँ से लाये ? चीते सा भयंकर आक्रमण किस बूते पर करे ? उदाहरण के लिए मुझे ही ले लीजिये। क्या यह सब इस उम्र में मुझसे संभव है ?' और डाक्टर ने अपनी निस्तेज-सी आँखें राय साहब

के चेहरे पर ज़मा दीं।

राय साहब चुप रहे, पर उनका मन हो रहा था कि वहाँ से भाग चलें। न मालूम डाक्टर प्रश्न-प्रश्न में ही कहाँ तक बढ़े, बातचीत सन्देह का कौन-सा रूप धारण कर ले, पर यह उस समय स्पष्ट लग रहा था कि डाक्टर साहब की नजरों में नीला की बेवफाई ही थिरक रही है और उसी भाव-प्रावल्य में ही प्रश्न किया गया है।

'जवाब नहीं दिया राय!'

'तुम्हारे सम्बन्ध में ऐसी कल्पना भी क्यों करूँ यार! और अब तो तुम और नीला भाभी दूध-शक्कर की तरह एक हो गये हो। तुम्हारे संबंध में इन प्रश्नों का अस्तित्व ही व्यर्थ है।' अटक-अटक कर राय बोले।

डाक्टर साहब हँस पड़े। बोले, 'शायद तुम ठीक कह रहे हो राय! यह बात नये लड़कों के लिए लागू हो सकती है, हम दोनों तो···खैर!' फिर राय का हाथ कसकर दबाते हुए दृढ़ता से डाक्टर साहब बोले, 'पर एक बात कह दूँ · जिस दिन भी मुझे ऐसा लगा कि नीला बेवफा है, उसी दिन नीला और उसके यार का खात्मा कर दूँगा, बस। और डाक्टर साहब के हाथ की पकड़ ढीली हो गई।

राय साहब के ललाट पर पसीना छलछला आया। क्या कहे वह!

डाक्टर साहब उठ खड़े हुए। हाथ की घड़ी की ओर देखते हुए बोले, 'ओह! सो लेट···चलूँ राय, काफी देर हो गई, एक जगह और 'अपायमेंट' है···' और सामने खड़े राय का मुस्कराकर कंधा दबा दिया।

सीढ़ियों से नीचे उतर डाक्टर साहब कार में जा बैठे और कार एक झटका खाकर आगे को सरक गई।

८

जिस दिन यह समाचार पत्रों में पढ़ा कि बीटल्स पार्टी नई दिल्ली आ रही है, दिल्ली में एक अजीब-सी हलचल शुरू हो गई। जिसे देखो वही 'बीटल्स' के बारे में जानने को व्यग्र था। प्रत्येक की जबान पर उनके समाचार थे। होटल, रेस्त्रां, कैफे, सर्वत्र एक ही चर्चा थी, एक ही बात थी और उनके बारे में जानने को अधिक से अधिक उतावली थी।

अमेरिका में बीटल्स पार्टी ने धूम मचा दी थी। उनके संगीत पर अमेरिकावासी झूम रहे थे। नए-नए आरकेस्ट्रा पर निकली उनकी धुनें एक अजीब-सी मादकता वातावरण में भरती थीं। अकेले अमेरिका में बीटल्स संगीत के कई करोड़ रिकॉर्ड बिक चुके थे। अमेरिका ही नहीं विश्व के अन्य देशों में भी इन बीटल्स युवकों को लेकर एक अजीब-सा आकर्षण था। नई पीढ़ी के नवयुवक और नवयुवतियों के तो वे आराध्य से थे। विश्व भ्रमण करते हुए वे इस समय भारत आ रहे थे।

जिस दिन ये नवयुवक पालम पर उतरे उस की भीड़ देखते ही बनती थी। हजारों नवयुवक और नवयुवतियाँ विचि वेशभूषाओं में उनकी एक झलक-भर देखने को लालायित थे। एयरोड्रम के बाहर चारों ओर जिधर देखो, उधर भीड़ ही भीड़ नजर आ रही थी। कार, टैक्सी, स्कूटर सभी के मुँह पालम की ओर थे, सभी उधर भाग रहे थे, उन्हें देखने को व्यग्र थे।

सात तरुणों का यह दल था। चार नवयुवक और तीन नवयुवतियाँ। लम्बे-लम्बे उलझे हुए बाल, जो लापरवाही से पीछे की ओर गर्दन पर झूल रहे थे। छोटी-छोटी मूछें और मुस्कराता चेहरा। शरीर पर लखनवी काम किया गया कुरता और नीचे सफेद पाजामा-सा। कुल मिलाकर साधारण-सी वेशभूषा। बीटल्स युवतियों की वेशभूषा भी साधारण ही थी, 'साधना कट' बाल जिसकी कुछ लटें ललाट पर और कानों के पास झूल रही थीं। बॉब्ड हेयर, स्लीवलेस कुरता और हल्का-सा स्कर्ट। पर इन सबकी आँखों में एक अजीब-सी मस्ती थी—मादक खुमारी, रतनारे

डोरे और अर्ध-निमीलित आँखें, ऐसी कि जो देखे देखता ही रह जाए। पूरे शरीर में कुछ आकर्षण था तो ये सम्मोहक आँखें और होठों पर थिरकती मादक धुन। और इन्हीं दोनों ने दिल्ली के नवयुवकों को पागल कर दिया था।

'इण्डियन कल्चरल मूवमेंट' की मंत्री होने के नाते जब मीना ने बीटल्स नेता हैरॉक से हाथ मिलाया, तो वह एक अजीब-सी मादकता से भर गई। मीना आज पूरी यूरोपियन ड्रेस में थी। बीटल्स टाइप केश विन्यास, हल्का-सा पर आकर्षक मेकअप, और खिलती मुस्कराहट। हैरॉक स्वयं एक क्षण के लिए ठगा-सा रह गया। 'लवली ! सच् ए लवली ब्यूटी यू आर !' हैरॉक के इन वाक्यों ने मीना पर जादू-सा कर दिया। हैरॉक का मुस्कराना जरा-सा दबाकर हाथ छोड़ देना, और सुन्दरता का सागर कहना, मीना के लिए एक अनिर्वचनीय अनुभूति थी। वह अपने आप में खो-सी गई।

पालम पर के स्वागत के बाद बीटल्स अशोक होटल चले गये। मीना साथ थी, वह इन नवयुवकों से प्रभावित थी। वह देख रही थी कि उनसे सम्पर्क स्थापित कर वह कितनी ऊँची उठ गई है, कितनी आँखें उसके भाग्य पर ईर्ष्या कर रही हैं। कितने हैं ऐसे जो उसे पाने के लिए बेताब हैं, वह इंडियन कल्चरल मूवमेंट की मंत्री जो थी। बीटल्स···विश्वविख्यात बीटल्स उसके शहर में आये हैं तो उनका जोरदार स्वागत हो, किसी प्रकार की कमी न रहे और उनके स्वागत के लिए वह जी-जान से जुट गई।

बीटल्स का नई दिल्ली में तीन दिनों का प्रोग्राम था। गत दो दिनों में मीना ने उनकी पूरी अभ्यर्थना की थी। ज्यों-ज्यों वह उनके जीवन में प्रवेश करती, उसे लगता कितना मुक्त जीवन है इनका, कितनी स्वच्छंदता है, कितनी सरलता और सहजता है इनके जीवन में। काश, मैं भी इनके समान होती, देश-विदेश घूमती, मेरी तारीफ में अखबारों के पन्ने के पन्ने रंग जाते, और जहाँ भी जाती, मेरे नाम की ख्याति फैल जाती; मेरी एक झलक-भर देखने को लोग व्यग्र रहते। पर···

इन दो दिनों में मीना ने उन्हें दिल्ली के सभी दर्शनीय स्थान दिखा दिये थे। अशोक होटल के बाहर भीड़ लगी रहती। वह उन्हें चुपके से पिछले

दरवाजे से ले जाती और ऐसा करते समय जब हैरॉक का शरीर उससे छू जाता तो वह गद्गद् हो उठती, प्रसन्नता से झूम उठती।

दोपहर को बीटनिक 'फ्री' थे। आज मौसम भी गुदगुदा था। काले-काले बादल चारों तरफ फैल गये थे, और सूर्य उनके नीचे छिपकर चल रहा था। सुबह से जो उमस थी वह इस समय हवा चलने से शान्त हो गई थी। मीना ने और स्थान तो दिखा दिये थे, आज कुतुबमीनार दिखाने का प्रोग्राम था।

अशोक होटल के पीछे से निकल एक कार में बीटनिक बैठे और मीना की गाड़ी में हैरॉक और मीना बैठे थे। मीना अपनी गाड़ी को स्वयं ड्राइव कर रही थी। ठंडी-ठंडी हवा के झोंके मीना की लटों से खेल रहे थे और गेसू उड़-उड़कर चेहरे पर छा जाते। मीना कुछ झुंझलाहट, तो कुछ लापरवाही से उन्हें हटा देती। मीना न मालूम क्यों आज जरा अधिक प्रसन्न थी। शायद इसलिए कि हैरॉक उसके पास बैठा था।

'हैरॉक !' चंचल आँखों से मुस्कराती मीना बोली।

'हूँ।'

'दो दिनों में तुम काफी घूमे, कई स्थान देखे। सच कहना, कैसा लगा तुम्हें 'इंडिया !'

'बहुत-बहुत अच्छा मिस मीना !' बातचीत का माध्यम अंग्रेजी ही था, 'क्या बताऊँ कि इंडिया कैसा लगा। जैसा सोचा था, उससे भी बढ़-कर···लवली !'

'कैसा सोचा था ?'

'मैंने तो अनुमान लगाया था, भारत होगा बेचारा सीधा-सादा देश जो अभी अठारहवीं शताब्दी में जी रहा होगा। विचित्र-विचित्र सांपों का देश, जादूगरों का देश, टोनों-टोटकों और अन्धविश्वासों से भरा देश।

'फिर ?'

'पर मुझे तो भारत इन सबसे दूर लगा। ऐसा लग रहा है जैसे मैं भारत में न होकर यूरोप के ही किसी देश में घूम रहा होऊँ। मुझे 'नेच्यूरिटी' नहीं दिखाई दी। सोल ऑफ दी इंडिया, भारत की आत्मा

जिसे कहते हैं, वह तो मुझे कहीं पर भी दिखाई न दी !'

'तो इसका मतलब कि यहाँ आकर आपको निराशा ही हाथ आई। जो कुछ सोचा था, उससे ठीक विपरीत आपको यहाँ मिला—वैसे ही शहर, वैसी ही ड्रैस, वैसा ही खान-पान···फिर निराशा के सिवा···'

'नो-नो मिस मीना, यह बात नहीं। यहाँ कुछ ऐसी चीजें हैं जो 'वर्ल्ड' में कहीं नहीं, और मैंने उन्हें देखा है. उन्हें देखकर मुझे प्रसन्नता हुई है। निराशा नहीं, खुशी हुई है।'

'अच्छा !' उत्सुकता से मीना ने पूछा, 'ऐसी क्या चीज दिखाई दी ?'

'बताऊँ ?'

'हूं।' गाड़ी को बाईं ओर मोड़ती हु. मीना बोली, 'कौन-सी चीज है वह ?'

'वह है मिस मीना, सुन्दरता का पुंज यौवन का ज्वार। सच, मुझे ऐसी चीज दुनिया में कहीं देखने को नहीं मिली।'

[illegible] मीना के हाथ लडखड़ा गये, गाड़ी डगमगा गई। लाज की लो [illegible]ानों के छोर तक पहुँच गई, अधर फड़फड़ा उठे—'हुश ! झूठे···'

'तभी तो कह रहा हूँ मीना कि भारत वाले अपनी ही चीज को नहीं पहचानते। यही चीज यदि यूरोप में होती तो लोग उसे सिर-आंखों पर उठा लेते। चित्रकार हजारों चित्र बनाते, कई कैमरे उसे सदा-सदा के लिए बन्द कर देते, और हॉलीवुड उसे सदा-सदा के लिए अमर कर देता। पर···'

एक सुखद कल्पना में मीना डूब गई। हैरॉक का एक-एक वाक्य मदिरा का मादक घूंट था जिसे मीना पी रही थी और जो हलक के नीचे उतरते ही उसके तन-मन, प्राणों को झनझना रहा था। वह नशे के खुमार में बेसुध-सी थी।

'चर्र···र्रर' और एक घर्राहट के साथ कार रुक गई। मीना होश में आई, ब्रेक पर रखे अपने पांव पर हैरॉक के पांव का दबाव वह महसूस कर

रही थी, और स्टियरिंग व्हील पर उसके दो हाथों के अलावा हैरॉक के भी दो हाथ थे। मीना ने कांच के उस पार देखा, आगे ही खड्ड थी, और खड्ड के किनारे, बिल्कुल किनारे पर गाड़ी ठिठकी खड़ी थी। एक क्षण की भी देरी होती, तो गाड़ी खड्ड में गिरकर उलट जाती। वह अकचका गई। उसके मुँह से हल्के से निकल गया···'ओह !' और कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से उसने हैरॉक की ओर देखा।

'क्या हो गया मिस ! तुम इधर आ जाओ. तुम्हें विश्राम की जरूरत है।' और मीना को अपनी ओर सरकाकर हैरॉक स्वयं ड्राइविंग सीट पर जा बैठा।

'तुम रास्ता दिखाती जाओ मीना, अपन पहुँच जायेंगे।' और मीना की ओर देख हल्के से मुस्करा दिया।

मीना चैतन्य हुई, 'नो···नो···हैरॉक ! आइ यम वैल · सेंट-परसेंट ·· न मालूम क्या बात हुई कि···' और मीना ने हैरॉक के कन्धे पर अपना सिर टेक लिया।

—एक अजीब मस्ती में हैरॉक भर गया।

कुतुबमीनार से जरा हटकर एक ओर गाड़ी खड़ी की। पहले हैरॉक उतरा, और फिर बांह का सहारा देकर मीना को भी उतार दिया। मीना ने 'थैंक्यू' कहते हुए कार के शीशे चढ़ा उसे 'लॉक अप' कर दिया और हैरॉक के साथ सीढ़ियों की ओर बढ़ गई।

बीटल्स परिवार उससे पहले ही वहां आ पहुँचा था और इस समय 'कुतुब' के पीछे की ओर के दृश्य को कैमरों में बन्द करने को व्यस्त था।

'वाह ! क्या लाजवाब है कुतुब, इतनी ऊँची, इतनी भव्य···किसने बनवाई थी यह ?'

मीना हैरॉक को कुतुब का इतिहास समझाती हुई आगे बढ़ रही थी। फिर जरा रुककर बोली, 'हैरॉक ! चलो ऊपर चलें।'

मीना और हैरॉक चक्करदार तंग सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने लगे। जब-

जब भी हैरॉक का गुदगुदा शरीर मीना से छू जाता तो मीना के शरीर में फुरहरी-सी दौड़ जाती ।

अचानक बिना भूमिका के ही मीना ने प्रश्न किया, 'हैरॉक ! एक बात पूछूं ?'

'हूं ?'

अगली सीढ़ी पर पांव रखती हुई मीना बोली, 'क्या तुमने विवाह कर लिया हैरॉक ?'

हैरॉक ठिठक गया, पर दूसरे ही क्षण ऊपर की ओर चढ़ता हुआ बोला, 'क्या यह जरूरी है ? मैं तो सोचता हूं, जीवन में यह रस्म कोई जरूरी भी तो नहीं ?'

ऊपर से आते हुए जोड़े को नीचे जाने के लिए एक ओर रास्ता देती हुई मीना बोली, 'क्यों ? क्या एक अकेला अकेला ही पूरी जिन्दगी खुशी से गुजार सकता है ?'

'व्हाई नॉट मीना ! मैं कहता हूं, क्यों नहीं गुजार सकता ? जब आसानी से विपरीत शरीर मिल सकता है तो क्यों बन्धन में बंधे ! मैं पूछता हूं, क्या तुम्हारे जीवन में मर्दों की कमी हो सकती है ? नहीं, हरगिज नहीं ! तुम तो सदाबहार फूल हो, जो हर मौसम में पराग बिखेरता रहता है, फिर उसे भ्रमरों को बुलाने की क्या जरूरत है । वे तो उसकी गंध से खिंचकर अपने-आप उस पर मंडराते रहते हैं ।'

मीना कुछ बोली नहीं । उसी प्रकार साथ-ही-साथ आगे बढ़ती गई ।

'तो इसका मतलब है हैरॉक, तुमने अभी विवाह किया नहीं ?'

'नहीं, और मेरा करने का इरादा भी नहीं है । मैं जहां भी गया हूं, जिस देश में भी गया हूं, सुन्दर से सुन्दर औरतें मेरे इर्द-गिर्द रही हैं, उनके शरीर की मेरे लिए कमी रही ही नहीं । मैं कहता हूं, मुझे तो कभी लगा ही नहीं कि मैं अकेला हूं···या शरीर से भूखा हूं । कई देश घूमा हूं. और मैंने सभी देशों के खिलते पुष्पों को सूंघा है, एक से एक बढ़कर,

एक-से-एक मादक···'

'भारत का फूल भी सूंघा है ?' और कहकर मीना ने एकदम से दांतों के बीच जीभ दबा ली ।

'इसकी भी कमी नहीं रहेगी मिस ! कोई-न-कोई तो होगी ही मेरी तकदीर में···' और हंसते हुए उसने मीना के पकड़े हाथ को हल्के से दबा लिया ।

मीना शर्म से दोहरी हो गई ।

दोनों अंतिम गुंबद तक आ पहुंचे थे । चारों तरफ के खुले झरोखों से दिल्ली का भव्य दृश्य दिखाई दे रहा था । सम्पूर्ण दिल्ली एक ही दृश्य में ऐसी लग रही थी मानो उन ऊदी घटाओं के नीचे दिल्ली सिमटी हुई लज्जाशील दुलहिन हो । नीचे रेंगती हुई कारें चाबी भरे खिलौने-सी लग रही थीं और चलते हुए पुरुष कीड़े-मकोड़े । ऐसे लग रहा था, मानो यहां केवल दो का ही अस्तित्व है, बाकी सब नगण्य हैं, हल्के हैं, तुच्छ हैं ।'

'बहुत सुन्दर दिल्ली है मीना ! और धन्यवाद तो तुम्हें देना चाहिए कि तुमने हमें ऐसी जगहें दिखाईं । यह दृश्य शायद मैं जीवन-भर न भूल सकूंगा ।'

मीना भी शायद दिल्ली का लुभावना दृश्य देखने में व्यस्त थी, बोली नहीं ।

कुछ क्षण ऐसे ही बीते । दीवारों पर पेंसिल से, स्याही से हजारों-लाखों नाम लिखे हुए थे, छोटे-बड़े, सीधे-टेढ़े, सभी प्रकार के । उनकी तरफ लक्ष्य करके हैरॉक ने पूछा, 'ये क्या है ? क्या लिखा है ?'

'यहां जो भी आता है हैरॉक, अपनी याद को अमर बनाने के लिए अपना नाम लिख जाता है और इस प्रकार इस सागर में अपनी भी एक बूंद बढ़ा लेता है ।'

'वाह ! गुड आइडिया, क्या मैं भी अपना नाम लिख दूं ?'

'क्यों नहीं हैरॉक ! जरूर···'

मीना के पास से पेंसिल लेकर हैरॉक ने अपना नाम लिखा और उसके साथ ही लिख दिया—मिस मीना के साथ, उसके साथ गुजारे कुछ क्षणों की स्मृति-स्वरूप—'और उसके नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिये।

मीना एक अजीब पुलक से भर गई।

'क्यों ? ठीक है न !'

मीना चैतन्य हुई। बोली, 'क्या कहूँ हैरॉक, कि तुम क्या हो ? तुम्हारे साथ गुजारे कुछ क्षण कितने कीमती हैं क्या बताऊँ ? और फिर जब तुम चले जाओगे, तो तुम्हारी याद पीछे रह जायेगी। और रह जायगा यह स्मृति चिन्ह, जिसे देखकर मैं अपने दिल को सान्त्वना देती रहूँगी।'

'तो आओ मीना, क्षणों को अमर बना दें, सदा-सदा के लिए इन क्षणों पर चुम्बन की छाप लगा दें।" और कहते-कहते हैरॉक ने अपनी दोनों बाँहें फैला दीं।

मीना एक क्षण ठिठकी और दूसरे ही क्षण उसकी बाँहों में झूल गई। खो-सी गई उसमें और उसने महसूस किया एक तृप्त, आकांक्षित अछूता चुम्बन—मादक और मद-भरा चुम्बन—उन क्षणों पर मानव की और उनके प्यार की मोहर···। न मालूम कितने ही क्षण बीत गये।

नीचे की सीढ़ियों से आती कहकहे की आवाज ने मीना को चेतना दी और उसने हैरॉक की बाँहों से अपने आपको मुक्त किया। चेहरे पर झूलती हुई लट को लापरवाही से पीछे फेंका और हैरॉक की ओर देख थिरकती-सी मुस्करा दी।

कालेज के कुछ लड़के और लड़कियाँ ऊपर आ गए थे। शायद वे भी घूमने के लिए उधर आये थे, पर ऊपर हैरॉक को देख चकित रह गये। उन्हें यह भरोसा नहीं था कि इतनी आसानी से किसी 'बीटनिक' को इतने नजदीक से देख सकेंगे। कुछ युवतियाँ उससे बातें करने को उतावली हो गई, तो कुछ ने ऑटोग्राफ-बुक निकाल ली। मीनाने स्थिति भाँपी और हैरॉक का

हाथ पकड़कर शीघ्रता से नीचे उतर गई।

धीरे-धीरे वर्षा होनी शुरू हो गई थी। नीचे उतरकर देखा, तो ...'बीटनिक बन्धु' कहीं नजर नहीं आये, शायद वे लौट गये थे। मीना ...हैरॉक के साथ कार में जा बैठी और हैरॉक को अशोक होटल उतार ...गाड़ी को घर की तरफ मोड़ दिया।

शाम को अशोक होटल में बीटल्स-प्रोग्राम था। भारत में आने के बाद यह उनका पहला सार्वजनिक प्रोग्राम था। इसका प्रचार इतना अधिक हो गया था कि दिल्ली ही नहीं, दूर-दूर से लोग इस प्रोग्राम को देखने उमड़ पड़े थे। पुलिस के लिए व्यवस्था रखनी कठिन हो गई थी। कम से कम टिकट पन्द्रह रुपये का था और सबसे ऊँचा टिकट पाँच सौ का। पर पहले ही सारे टिकट बिक गये थे। बाहर से जो आये थे और येन-केन-प्रकारेण इस प्रोग्राम को देखना चाहते थे, वे भी निराश हो उठे थे।

राय अवध बिहारी सिंह और मिसेज राय ने भी एक-एक टिकट ले लिया था।

मीना आज और दिनों की अपेक्षा अधिक व्यस्त थी। वह बीटल्स परिवार के नजदीक पहुँच गई थी पर साथ ही साथ वह 'मूवमेण्ट' की सक्रिय मंत्री भी थी। इस दृष्टि से भी उसे व्यवस्था करनी थी। प्रोग्राम के बाद शाम को ही 'मूवमेण्ट' की ओर से 'बीटनिक-बन्धुओं' को पार्टी दी गई थी और इसकी व्यवस्था भी अशोक होटल में की गई थी।

'इण्डियन कल्चरल मूवमेण्ट' के चुने हुए सदस्य बीटनिक बन्धुओं से खुलकर मिल सकें, उनके साथ विचारों का आदान-प्रदान कर सकें, इसके लिए अशोक होटल में ही एक हॉल किराये पर ले लिया गया था जिसके बाहर 'प्रवेश निषिद्ध है' की तख्ती चिपकी हुई थी। हैरॉक के संकेतानुसार इस पार्टी में पीने-पिलाने की भी व्यवस्था की गई थी।

शाम के पाँच बजे से ही अशोक होटल रंग-बिरंगे लट्टुओं से जगमगा उठा। होटल के बाहर के उद्यान में कई लोग एकत्र हो गए थे। जिनके पास टिकट थे, वे प्रसन्न थे। जिन्हें टिकट नहीं मिल सका था, वह जोड़-तोड़ में

व्यस्त थे। मीना और महेन्द्र को हैरॉक की ओर से 'स्पेशल पास' मिले थे और 'मेहमानों का दिल न टूट जाय' ऐसा सोचकर उसके पास स्वीकार कर लिए गए थे।

मीना ने आज जी भरकर शृंगार किया। डेढ़ दो घन्टे तक वह दर्पण के सामने रही थी और अपने हाथों से अपने-आपको जिस खूबसूरती से सजाया था, वह अनुपम थी।

हैरॉक की इच्छानुसार ही मीना ने आज काँजीवरम् की साड़ी पहनी थी, गुलाबी मोहक दाक्षिणात्य साड़ी। सच ! हैरॉक देखेगा तो देखता ही रह जाएगा। उसे कल की बात याद हो आई। बातों ही बातों में उसने कहा था, 'मिस मीना ! इस स्कर्ट में तुम इतना फबती हो, तो न मालूम भारतीय साड़ी में लिपटकर तुम्हारा रूप कितना-कितना बढ़ जाता होगा। सच, जी चाहता है तुम्हें एक बार भारतीय साड़ी में देखूँ, और उस रूप को सदा-सदा के लिए दिल में उतार लूँ ! और आदमकद दर्पण के सामने ही मीना लजा गई।

कमर के गिर्द साड़ी को लपेट उसका बायाँ पल्ला यों ही घिसटता ही छोड़ दिया—लापरवाही-से और उसने अपने कमरे में ही दो कदम चलकर देखा, उसका व्यक्तित्व खिल रहा था और फर्श पर अपनी साड़ी के घिसटते पल्ले को देख उसे मिस्टर जोशी का कथन याद हो आया, 'मीनाजी ! आप साड़ी के पल्ले को यूँ स्वतन्त्र मत छोड़ दीजिए, न जाने पल्लू के इस घिसटने में क्या आकर्षण है कि आपके सौन्दर्य में चार चाँद लग जाते हैं और इस पल्लू के साथ कई हजार दिल घिसटते ही चले जाते हैं, घायल, बेबस, बेकसूर···' और याद आते ही मीना के चेहरे पर विजय की मुस्कराहट खिल गई।

मीना को ध्यान है कि बाईं ओर थोड़ा-सा और दाहिनी ओर जरा ज्यादा-सा मुँह फैल जाने से उसकी मुस्कराहट सार्थक और गहरी हो उठती है। और इस प्रकार से, इस एंगल में मुस्कराने से उसके दाहिने गाल पर हल्का-सा गड्ढा पड़ जाता है जो प्रत्येक का धैर्य छुड़ा देने के लिए काफी होता है। उसने एक बार फिर आदमकद दर्पण में देखा और हल्के से

मुस्करा दी। गालों पर का हल्का गड्ढा उसकी मुस्कराहट को सार्थक और रहस्यमय कर गया।

आँखों में काजल की पतली-सी सलाई फेरी, जो बाहर निकलकर कानों की ओर अग्रसर हो रही थी। ललाट पर लाल लम्बा-सा तिलक किया, केशों को एक विशेष प्रकार से मोड़ पीछे की ओर जूड़ा बना दिया और चारों ओर चमेली की कलियाँ बिखरा दीं ! फिजा में मादक-सी सुगन्ध तैर गई।

'हल्लो···मीना, भई गजब, आज तो तुम्हारे हल्ले हैं !' कहते-कहते महेन्द्र ने भीतर प्रवेश किया।

'हुश् ! कितनी देर कर दी ! टेलीफोन पर तो कह दिया, बस आ ही रहा हूँ, और हजरत अब आ रहे हैं, इन्तजार करते-करते थक भी गई। देखते नहीं हो, छह बीस होने को हैं।'

महेन्द्र ने कलाई पर की घड़ी देखी, वास्तव में छह बीस हो रहे थे। अपने साथ लाए गुलमोहर के फूलों को मीना को सौंपते हुए बोला, 'क्या करूँ ? देरी हो ही गई, कोई न कोई साला चिपका ही रहता है।'

गुलमोहर के सुगंधित पुष्पों से कमरा महक उठा। सच, यह महेन्द्र मेरा कितना ख्याल रखता है ! इसे ध्यान है कि मुझे गुलमोहर के फूल बहुत पसन्द हैं और जब भी आता है, गुलमोहर की भेंट ले आता है और इसकी सुगंध तन···मन···प्राणों में भरकर चला जाता है। सोचते-सोचते मीना ने गुलमोहर के फूलों को गालों से छुवा दिया। एक अजीब-सी मस्ती उसके अंग-प्रत्यंग में भर गई।

महेन्द्र गुलदस्ते में पड़े फूलों को उठाकर 'डस्टबिन' में फेंक, उसमें ताजे गुलमोहर के फूल लगाते हुए बोला, 'चलो, चलो भई, क्या सोच रहे होंगे सब। मैं तो पहले ही लेट हो गया।'

मीना और महेन्द्र नीचे उतरे। राय अपनी पत्नी के साथ पहले ही जा चुके थे। मीना की गाड़ी राय साहब ले गए थे। एक गाड़ी अभी वर्कशाप से आई नहीं थी। महेन्द्र अपनी ब्यूक लेता आया था। आगे का दरवाजा खोलते हुए बोला, 'बैठो !'

'तुम तो बैठो ।'

महेन्द्र ड्राइविंग सीट पर जाकर बैठ गया और पास वाली जगह मीना के लिए छोड़ दी ।

मीना कार का पिछला दरवाजा खोलकर बैठती हुई बोली, 'चलो, लेट हो रहे हैं ।' और खटाक् से दरवाजा बन्द कर दिया ।

महेन्द्र ने जो दरवाजा मीना के लिए खोल रखा था, उसे धीरे से बंद किया । 'मीना पीछे क्यों बैठी ? पास बैठने में ऐसी क्या हिचकिचाहट...' पर फिर दूसरे ही क्षण 'एक्सलरेटर' पर दबाव बढ़ा और कार आगे की ओर सरक गई ।

अशोक होटल का हॉल खचाखच भरा हुआ था । कहीं पर भी तिल रखने को भी जगह नहीं थी । वेटरों, खानसामों और आने-जाने वाले लोगों के शोर से वातावरण रंगीन-सा हो गया था । मीना और महेन्द्र भी अन्दर पहुँचे और आगे पड़ी कुर्सियों में से एक ओर पड़ी कुर्सियों पर दोनों बैठ गए ।

'क्या बात है मीना, अचानक सुस्त-सी कैसे हो गई हो ?'

'नहीं तो !'

'तो फिर गमगीन-सी क्यों, मैंने कार का दरवाजा खोला तो तुम पीछे जा बैठीं, आखिर क्यों ?'

'महेन्द्र, तुम मर्द लोग प्रत्येक बात को शक के बिना देख ही नहीं सकते । यों ही पीछे बैठ गई तो तुमने उसे भी सन्देह में लिपटा दिया ?'

महेन्द्र चुप हो गया । उसे महसूस हुआ कि मीना का मूड बेवजह उखड़-सा गया है और इस समय कुछ कहना खतरे से खाली नहीं था, अतएव वह चुप ही रहा ।

स्टेज तीव्र प्रकाश में भर गया । हॉल में अपेक्षाकृत शान्ति हो गई । अशोक होटल के जनरल मैनेजर ने स्टेज पर आकर आये हुए अतिथियों को धन्यवाद दिया और 'बीटनिक बन्धुओं' का संक्षिप्त परिचय देते हुए अगले प्रोग्राम की घोषणा की ।

स्टेज पर हल्का नीला प्रकाश फैल गया ! हैरॉक और उसकी पार्टी

के स्टेज पर आते ही लोगों ने तालियाँ बजाकर उनका स्वागत किया ।

धीरे-धीरे संगीत-कार्यक्रम शुरू हुआ । एक हल्की-सी टीस-सी, वेदना फिजा में तैर गई और ऑरकेस्ट्रा से जो स्वर निकला, वह इस दर्द को गहरा करने में सक्षम था । धीरे-धीरे स्वर उभरा और बढ़ता गया । सभी बीटनि कसधे हुए थे, स्वर का मेल अपूर्व था । उनके कंठों में लोच थी, पल में आकर्षण था और संगीत में एक गंभीर विरह वेदना ! श्रोतागण संगीत के सहारे तड़पकर रह गए ।

पहले केवल ऑरकेस्ट्रा ही बजता रहा पर उसकी ध्वनि इतनी सधी हुई और दर्द भरी थी कि वातावरण अपूर्व हो उठा । करीब दो-ढाई घंटों के प्रोग्राम में बीटनिक बन्धु इतनी तन्मयता से गाये, इतनी कुशलता से स्वर साधा कि पता ही नहीं चला कि कितना समय बीत गया है । सभी खो-से गए थे उस संगीत में । न मालूम क्या आकर्षण था उस संगीत में कि लोग झूम रहे थे—सर्प की भाँति जो बीन के स्वरों पर थिरकता रहता है, मचलता रहता है ।

अन्त में बीटनिक नवयुवतियों ने मादक धुन छेड़ी और साथ ही साथ गीत भी । ध्वनि-संयोजन में कुछ ऐसा तालमेल था कि दर्शक झूम उठे ।

और जब प्रोग्राम समाप्त हुआ तो करीब सवा ग्यारह बज रहे थे । लोग चैतन्य हुए, जैसे कि वे किसी अज्ञात सम्मोहन में गिरफ्त थे और उससे एकाएक छूटे हों और ज्यों ही वे उस वातावरण से मुक्त हो वास्तविक स्थिति में आये तो तालियों की गड़गड़ाहट से आकाश गुँजा दिया ।

धीरे-धीरे हॉल खाली हो गया । 'जस्ट ए मिनट महेन्द्र!' कहती-कहती मीना भी हाल से बाहर निकल गई और हाल के पीछे की रंगशाला में पहुँच गई जहाँ बीटनिक इस समय ठहरे हुए थे ।

'हल्लो मीना !'

'कांग्रेच्यूलेशन्स मिस्टर हैरॉक ! एण्ड ऑल यू ! कितना लाजवाब प्रोग्राम आपने पेश किया है कि बस, एक मुँह से क्या हजार मुँह से भी तारीफ करूँ तो थोड़ी है ।'

'मीना जी के एक मुंह की तारीफ भी हमारे लिए बहुत-बहुत है। यह बताइये आपको पसन्द आया या नहीं ?'

'पसन्द ! मैं कह रही हूँ हैरॉक, मैंने अपनी जिन्दगी में ऐसा लाजवाब प्रोग्राम नहीं देखा। आपके गले में जादू है हैरॉक ! सम्मोहन का व्यापक प्रभाव···एक ऐसी मादकता कि जिसमें आदमी डूब जाता है, उसे होश तक नहीं रहता।'

'बहुत तारीफ कर दी मीना जी, आप !'

मीना देख रही थी कि हैरॉक की नजरें उस पर टिकी हुई हैं। उसकी साड़ी और घिसटते पल्लू में उसकी नजर बँध गई है। लापरवाही से मुस्कराती हुई मीना बोली, 'ऊपर चलना है आप सबको। कल सुबह तो पलाई कर जायेंगे आप सब। मैं आप सबका परिचय 'इण्डियन कल्चरल मूवमेंट के सदस्यों से कराना चाहती हूँ—खाने का प्रोग्राम भी वहीं रखा है।'

'पर अब तो थक गये हैं बहुत बुरा ह। देख नहीं रही हो कि···'

'ओह, पर आपको चलना है, मेरे कहने से ही सही—क्या मेरा इतना कहना भी आप नहीं मानेंगे !' वह रुँआसी होकर बोली।

'आपका हुक्म सिर आँखों पर मीना देवी, हमें इतनी हिम्मत कहाँ कि आप कहें और हम टाल जायँ, आप चलिए, हम आ ही रहे हैं।'

मीना गर्वोन्नत भाव से खिलखिलाती रंगशाला से बाहर निकल गई।

हॉल के बाहर ही खड़ा महेन्द्र मीना की प्रतीक्षा कर रहा था। कैमरा अभी तक उसके कंधों से लटक रहा था। बोली मीना, 'तुमने स्नेप तो एक भी लिया नहीं, फालतू ही बोझा ढोया कैमरे का।'

'क्यों ! अभी तो पार्टी है न, मैं तो इस पार्टी के ही कुछ स्नेप लूँगा। और एक तुम्हारा भी प्यारा-सा···'

'क्या जरूरत है मेरे फोटो की, मैं तो सशरीर उपस्थित हूँ तुम्हारे सामने।'

महेन्द्र पुलकित हो गया। दिल में संचित संताप एक क्षण में ही साफ हो गया, 'मैं चाहता हूँ, इन बीटनिक बन्धुओं के साथ तुम्हारा भी एक फोटो ले लूँ।'

'क्यों ?'

'यादगार के लिए। याद तो रहेगा कि हम भी बीटनिकों की संगत कर चुके हैं !' और जोरों से हँस पड़ा।

'लो, सेन भी आ गई, हल्लो, क्या हालचाल है आपके ?' महेन्द्र आगे बढ़ता हुआ बोला।

'ठीक हूँ, हाल-चाल तो आप दोनों सुनाओ !' और कुटिलता से सेन मुस्करा दी।

तब तक गोस्वामी, मिस्टर कपूर, मधु, मिस गीता आदि अन्य भी आ गये थे। सब हॉल की ओर चल पड़े।

हौल में खानसामों ने पूरी व्यवस्था कर रखी थी। कुर्सियों-मेजों का झंझट ही नहीं रखा था। फर्श पर ही कालीन बिछा दिया गया था और भारतीय तरीके से भोजन का आयोजन किया गया था। जीवन में कम से कम एक-दो बार तो छुरी काँटों से छुटकारा मिले।

बीटनिक बन्धु भी आ गये थे। कालीन पर ही सब बैठे, सब गप-शप में लगे हुए थे। खानसामे भोजन की व्यवस्था कर रहे थे।

मीना ने बारी-बारी से सब सदस्यों का परिचय कराया, 'इण्डियन कल्चरल मूवमेंट' पर हल्का-सा प्रकाश डाला और साथ ही सबके टेस्ट, रुचियों और प्रवृत्तियों के बारे में भी साधारण जानकारी दे दी।

'ऐसा लग रहा है, जैसे मिस मीना न हो, इन्साइक्लोपीडिया हो जिसमें सारा वर्णन छोटे से छोटा लिखा हुआ है।' गोस्वामी के कथन पर एक जोरों का ठहाका जड़ गया।

'भले ही कुछ भी हों, मीना जी हमारी इस मूवमेंट की जान हैं, बिना इनके इस मूवमेंट का अस्तित्व ही नहीं।' मधु ने कुछ मुस्कराहट के साथ कहा।

'और सही रूप में देखा जाय, तो इन मीना जी की ही मेहरबानी से हम बीटनिक बन्धुओं से मिल सके हैं। इतने नजदीक से पहचान सके हैं।'

'यह तो हमारा सौभाग्य है कि हम भारतवासियों के इतने निकट आ

सके,' हैरॉक बोला, 'पर है यह सही कि मिस मीना सफल कार्यकर्त्री हैं।' और मुस्कराकर उसने मीना को देखा।

'तो लग रहा है आप भी आ गए उसके चक्कर में,' कपूर बोला, 'भगवान जाने क्या बात है मीना जी में कि पत्थर बनकर आते हैं और मोम की तरह घुलकर पास में से निकल जाने को बाध्य हो जाते हैं।'

'पर कपूर की तरह उड़ते तो नहीं।' चौधरी के इस व्यंग्य पर फिर एक बार जोरों का ठहाका लगा!

साथ ही साथ खाना-पीना चल रहा था। हैरॉक की इच्छा से ही भारतीय खाना तैयार करवाया गया था। चावल, दाल, फुल्का, हरा साग, टमाटर, आदि आदि।

खाने के बाद इलायची बाँटी गई। खाते-पीते रात के करीब डेढ़ बज गए थे। सब उठ खड़े हुए। काफी रात गुजर चुकी थी। एक-एककर सब विदा हो गए। सभी प्रसन्न थे आज के आयोजन पर। इस मूवमेंट के माध्यम से कुछ क्षणों के लिए बीटनिकों का साहचर्य मिला, उनके लिए यही सौभाग्य की बात थी।

अब कुछ खास-खास लोग ही पीछे रह गए थे। बीटनिक खाना खाने के बाद पीते थे, यह हैरॉक ने पहले ही बता दिया था। मीना ने पीने के लिए ऊँची फ्रेंच शराब मंगवा रखी थी। वह बिलकुल नहीं पीती थी, पर हैरॉक को पिलाए बिना ही जाना उसका अपमान समझा जाता। यह उचित भी नहीं था। एक-दो बीटनिकों के अलावा बाकी बीटनिक भी थक-कर सोने को बिना पिए ही चले गये थे। कमरे में केवल हैरॉक, महेन्द्र, मीना, मधु, इलियास और गैवर्ड ही रह गए थे।

हैरॉक ने मोटा सिगार होंठों से लगाया और उसके तम्बाकू की सुगंध कमरे में फैल गई।

सभी उपस्थित कालीन पर फैल कर बैठ गए। मीना ने अटैची से फ्रेंच शराब निकाली और गिलास सीधे कर दिए।

'वाह मीना जी! एक्चूयली यू आर ए गुड आर्गेनाइजर!' और हैरॉक ने सिगार का एक गहरा कश ले लिया।

'इण्डिया मेहमाननवाजी के लिए प्रसिद्ध रहा है मिस्टर हैराक!' महेन्द्र चहका।

'यही नहीं, उसने शत्रु तक का स्वागत किया है। इतिहास में ऐसी ढेरों मिसालें मिलती हैं जबकि भारतीय सम्राटों ने अपने शत्रुओं को भी आश्रय दिया और उनकी रक्षा के लिए कट मरे।'

शराब और सोडे से गिलास भर गए। सभी ने एक-एक गिलास उठा लिया।

हैरॉक गिलास उठाता हुआ आश्चर्य से बोला, 'मीना जी, आपका...'

'सौरी! मैं पी नहीं सकती, आज तक पी नहीं है।' मीना का विवशता-पूर्ण स्वर निकला।

'नो, नो, ऐसा कैसे हो सकता है? आपके बिना तो हम भी कोई नहीं पियेंगे।'

'हैरॉक साहब! आप यदि आज मीना को भी पिला दें तो हम पर बड़ी कृपा होगी।' मधु बोली।

'क्यों?'

'हमारे कहने से तो ये पीती नहीं, कोशिश करके देख ली। अब आज...'

'तो आज हममें से भी कोई नहीं पिएगा।' हैरॉक गिलास नीचे रखता हुआ बोला, 'जब तक कि मीना जी अपना गिलास नहीं बना लेंगी।'

मीना अजीब विवशता में फँस गई थी। उसने आज तक शराब नही चखी थी। उसे पता था कि उसे बिना पिए ही नशा रहता है तो फिर पीने के बाद तो क्या हालत होगी। उसने विवशता और कातरता से हैरॉक की ओर देखा।

हैरॉक की दृष्टि में दृढ़ता थी।

महेन्द्र आगे बढ़कर गिलास सीधा कर उसमें शराब और सोडा मिला मीना के हाथों में जबरदस्ती थमाते हुए बोला, 'थ्री चीयर्स टू मिस मीना, हिप्... हिप्...'

'हुर्रे!' कमरा अजीब-सी खिलखिलाहट और हुर्रे के स्वरों में डूब

गया।

हैरॉक ने अपना जाम मीना के जाम से टकराया और मीना की अक्षुण्ण सुन्दरता की कामना करते हुए एक ही साँस में गिलास हलक के नीचे उतार दिया।

मीना ने भी गिलास होंठों से लगाया और एक घूँट गले के नीचे उतार ही लिया। पर दूसरे ही क्षण ऐसा लगा मानो कोई तेज धार का चाकू गले से कलेजे तक चीरता हुआ चला गया है। सीने में गरमी भर उठी और गाल आकर्ण सेब की तरह लाल हो उठे।

'यह तो पूरा पीना ही पड़ेगा मीना! वी आर वेटिंग यू!' हैराक हँसता हुआ बोला।

सभी ने अपना दूसरा जाम भरा, पर हैराक खाली गिलास लिए ही बैठा रहा, 'जब तक मीना जी इसे खत्म नहीं कर लेतीं, मैं दूसरा जाम नहीं भरूँगा।' और हल्के से मुस्करा दिया।

मीना क्या करती। अपने ही जाल में वह स्वयं उलझ गई थी, बचने का कोई रास्ता नहीं था और न वह हैराक को नाराज करना चाहती थी। आँख मूँदकर एक कड़वाहट के साथ पूरा गिलास हलक के नीचे उतार ही लिया। आग की एक तेज लपट कलेजे में उठ गई।

हैराक ने दूसरा जाम भरा और जिद कर मीना का जाम भी भर लिया। मीना एक गिलास में बेहोश-सी सो रही थी, दूसरा गिलास तो उसके लिए अत्यन्त कठिन था।

'शायद आप पीने-पिलाने के अभ्यस्त नहीं। यूरोप में चार-छः गिलासों तक तो पता ही नहीं चलता।' हैराक बोला।

महेन्द्र ने मधु का दूसरा जाम भर दिया और इंडियन-बीटल्स-मैत्री के नाम सबने दूसरा गिलास खाली कर लिया।

मीना के सामने गिलास भरा पड़ा था। उसकी आँख के डोरे लाल हो रहे थे और सारे शरीर में फुरहरी-सी दौड़ रही थी।

'ये मीना जी यों नहीं पियेंगी हैराक' इलियास बोली, 'अब की तो आप अपने हाथों से पिलायेंगे तभी पियेंगी।'

हैरॉक ने मीना का सिर अपनी बाँहों में ले उसके ना, ना, करने पर भी दूसरा जाम उसके गले के नीचे उतार दिया।

और इस खुशी में हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से भर गया।

सभीने छककर पी, जी भरकर पी। महेन्द्र तो पीने का आदी प्रतीत हो रहा था पर मधु तो तीसरे ही गिलास में झूमने लगी। चौथे और पाँचवें राउण्ड तक महेन्द्र ने भी साथ दिया। पर फिर वह भी थक गया।

हैरॉक, इलियास, गैंबर्ड आदि ने शायद आठ-आठ, दस-दस जाम हलक के नीचे उतार लिए थे।

सारा हॉल अजीब-सी खुमारी से भर गया था। शराब की मस्त सुगंध हवा में फैलकर वातावरण को मोहक और मदमस्त बना रही थी। सभी प्रसन्न थे, सभी झूम रहे थे, सभी बेहोशी के आलम में थे।

पता नहीं कितना ही समय बीत गया। सभी चित्त पड़े थे, गिलास कहीं पर लुढ़क रहे थे तो बोतलें कहीं और ही लुढ़की पड़ी थीं।

रात के करीब साढ़े चार के आसपास महेन्द्र की आँख खुली। होश आया, उसने देखा कि सभी अस्त-व्यस्त पड़े थे। न उन्हें कपड़ों होश था, न अपने शरीरों का। सभी एक अजीब सी खुमारी में मस्त ५. सो रहे थे।

उसने देखा, मीना चित्त सोई पड़ी है। कितना शानदार रूप है मीना का! 'स्लीपिंग ब्यूटी'···कितनी मोहक, अछूती और लाजबाब। पंखे की घनघनाहट के नीचे बार-बार सिर की लट उसके गालों को छूती और हवा बार-बार उसे पीछे की ओर धकेल देती। सीने पर के दो उरोज दिल की धड़कन के साथ ही उठ-बैठ रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो उनके साथ सारा संसार आन्दोलित हो, उद्वेलित हो। पैरों पर की साड़ी कुछ ऊपर सरक गई थी और गोरी-गोरी तराशी हुई पिंडलियाँ साफ नजर आ रही थीं।

पर साथ ही उसने देखा कि हैरॉक का सिर उसकी बाँहों पर है और हैराक का हाथ मीना के सीने पर। उसकी एक जांघ भी मीना की जांघ को दबा रही थी। शायद दोनों ने ही अपनी सामर्थ्य से ज्यादा पी ली थी,

दोनों बेहोश थे।

एक अजीब-सी घृणा से महेन्द्र के होंठ बचबचा उठे। उसकी होने वाली बीवी पर हैरॉक का हाथ इस प्रकार रहे, सोचते ही वह नफरत से भर गया। पर तुरन्त ही उसे एक और ख्याल आ गया। वह उठा और कैमरा ठीक कर मीना और हैरॉक के उसी पोज में पाँच-सात चित्र खींच डाले। एक-दो फोटो मधु के भी लिए, इलियास और गँवर्ड के भी लिए और फिर एक विशेष ऐंगिल से मीना और हैरॉक का फोटो खींच लिया। अपनी सफलता पर वह स्वयं झूम उठा। 'अब मीना उसकी है, सेंट पर सेंट उसकी!' और खुशी के आलम में वह मुस्करा पड़ा।

घड़ी के काँटे पौने पाँच बजा रहे थे। उसने झुककर आहिस्ता से मधु का चुम्बन लिया और फिर इलियास के पास जा उसके नथुनों के पास एक-दो बार हाथ फेरा और झुककर उसका भी चुम्बन ले लिया।

पर तभी तड़ाक-से उसकी कनपटी पर झापड़ पड़ गया। इलियास की आँखें खुली थीं, 'ईडियट! चोरी कर रहा है!'

महेन्द्र का सारा शरीर झनझना उठा। उसे इस प्रकार से परिस्थिति घटित हो जाने का ख्याल नहीं था! झापड़ की आवाज से हैरॉक जग गया था और मीना की आँखें भी खुल गई थीं।

'क्या है इलियास?' हैरॉक बोला।

'कुछ नहीं, नथिंग एल्स!' और इलियास इस प्रकार करवट बदलकर सो गई मानो कुछ हुआ ही न हो।

महेन्द्र सन्न रह गया। उसके सारे शरीर का चलता-चलता खून रुककर एक जगह जमा हो गया था। इलियास के साथ चोरी की है, चोरी से, बिना अनुमति के चुम्बन लेने की कोशिश की है और अब यह इलियास सब कुछ उगल देगी तो उसकी क्या हालत होगी, शायद हैराक उसे धुन डाले! पर मीना जानकर क्या सोचेगी, उसकी नजरों से मैं कितना गिर जाऊँगा और जब यह बात बाहर फैलेगी तो मेरी क्या हालत होगी! और सोचते-सोचते उसकी कनपटी गरम हो उठी। इलियास के थप्पड़ से अभी तक गाल चुनचुना रहा था।

पर इलियास के यह कहने पर कि 'नथिंग, कुछ नहीं।' और पीठ फेरकर सो जाने से उसके जी में जी आया। वह चकित था इलियास के व्यवहार पर, पर साथ ही कृतज्ञ भी था उसका। हैराक से आँखें तक मिलाने का उसे साहस नहीं हो रहा था।

'मीना, चलो न, सबेरे के पांच बज गये, घर वाले क्या कहेंगे!' महेन्द्र बोला।

'ओह गौड! पाँच बज गए! पूरी रात बीत गई!'

'अच्छा हैराक! गुडमौनिंग, पालम पर मिलेंगे अब तो।'

'गुड यू विश लक मिस मीना, थैंक्यू वैरी-वैरी मच!' और हैराक ने हाथ आगे बढ़ाकर मीना से मिला लिया।

मीना और महेन्द्र दोनों सीढ़ियों से नीचे उतरकर कार में जा बैठे। मार्ग में कोई कुछ न बोला। मीना को उसकी कोठी में उतार महेन्द्र अपने घर की ओर [illegible] गया।

९

उस रात वाली घटना से महेन्द्र इतना शर्मिन्दा था कि वह बीटनिक-बन्धुओं को पहुँचाने पालम नहीं गया। दूसरे दिन सुबह जब मीना ने फोन किया था तो महेन्द्र ने सिरदर्द का बहाना बता कर कनेक्शन कट कर दिया था और मीना ने दूसरी बार जब वापस रिंग किया तो पता चला कि महेन्द्र घर पर नहीं है। कहीं बाहर गया है। मीना उसके व्यवहार पर चकित थी कि रात महेन्द्र ठीक-ठाक था, पार्टी में भी जम रहा था और लतीफों पर लतीफे सुनाकर रंग [illegible] कर रहा था, पर सुबह ही एकदम

क्या हो गया ? सिरदर्द बताकर एकदम कनेक्शन कट कर देना और दु-बार फोन मिलाने पर पता चलना कि वह बाहर चला गया है, ये बातें कुछ ऐसी थीं, जो मीना के लिए नई थीं। इससे पहले महेन्द्र ने जा-बूझकर ऐसा कोई व्यवहार किया हो, उसे याद नहीं आ रहा था।

मीना ने गाड़ी निकाली और महेन्द्र के घर की ओर मोड़ दी। कुछ ही चलने पर उसकी नजर रिस्टवाच पर पड़ी तो पता चला कि चालीस हो रहे हैं। नौ तीस पर प्लेन का 'डिपार्चर' था। शायद वह पा पर मिल जायगा, सोचकर मीना ने गाड़ी पालम की ओर मोड़ दी।

रात वाली घटना रह-रहकर मीना के दिमाग में कौंध रही थी महेन्द्र का थरथराना, भय से चेहरा पीला पड़ जाना और हैराक के पू पर इलियास का कहना कि 'नथिंग' और पीठ फेर कर सो जाना। कु कुछ घटना महेन्द्र के साथ अवश्य घटित हो चुकी है। घर लौटते स महेन्द्र का चुपचाप बैठे रहना और इस समय सिरदर्द का बहाना क आदि सब घटनाएँ इस बात को स्पष्ट कर रही थीं कि महेन्द्र औ इलियास के साथ कुछ झगड़ा जरूर हुआ है और दोनों इसे छिपा रहे हैं! इलियास और महेन्द्र···और सोचकर मीना कांप उठी। क्या सम्भव है ? पर फिर महेन्द्र का थरथराना और भय से पीला पड़ना कि बात का द्योतक था। जरूर कुछ गुत्थी तो है जिसे स्पष्ट करना है, 'च महेन्द्र से ही पूछ लेंगे, पालम पर तो आएगा ही' और रेड क्रॉसिंग पर का बाईं ओर मोड़ दी।

पालम पर भी महेन्द्र कहीं दिखाई नहीं दिया। काफी तादाद में दि के नवयुवक और नवयुवतियाँ 'बीटनिकों' को विदाई देने आए थे। उसकी नजरें चारों ओर महेन्द्र को खोज रही थीं पर वह कहीं पर भी दिखाई न दे रहा था। तो क्या···'

'हल्लो मीना जी !'

सामने ही हैराक और इलियास खड़े थे।

'हेल्लो मिस्टर हैराक ! आप जा रहे हैं आज, तो सच कैसा सूना-सून लग रहा है। पिछले तीन दिन पलक मारते ही बीत गये, जी भरकर बा

भी तो नहीं हुईं।'

हैरॉक मुस्करा दिया, 'वास्तव में ही आपका आतिथ्य और स्नेह इतना मधुर था कि तीन दिन बहुत आसानी से ही बीत गए। हम सबको आपका बहुत स्नेह मिला। अपनी पार्टी की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूं।'

'शरमिन्दा कर रहे हैं आप। हम और हमारा मूवमेण्ट तो एकदम ही आपका आभारी है। काश आप कुछ और ठहरते।'

कि तभी उसे दूर भीड़ में महेन्द्र दिखाई दिया, वह किसी को खोजता-सा उधर आ रहा था जिधर ये खड़े थे।

'हल्लो मिस्टर महेन्द्र !'

'गुड मार्निंग हैरॉक, जा रहे हैं आप।'

'क्या करें मिस्टर महेन्द्र ! जाने का जी तो नहीं चाहता पर मजबूर हैं।'

'तो फिर क्या जी चाहता है ? और हल्के से मुस्करा दिया।

'जी चाहता है कि मीना के पास रहें कुछ कहें, बहुत-सी सुनें हाँ! इलियास तो जब से तुम गए हो, तुम्हें याद कर रही है। आपको उनसे मिलकर प्रसन्नता ही हुई होगी।'

महेन्द्र कटकर रह गया और पास से जाते अपने दोस्त का हाथ पकड़ उससे बातें करने में व्यस्त हो गया। मीना को यह सब कुछ असभ्य-सा लग रहा था। यह क्या ? बात कहीं हो रही है और बीच में ही किसी दोस्त का हाथ पकड़कर चल दिए। यह कहाँ की सभ्यता है ?

'शायद मिस्टर महेन्द्र शर्मिन्दा हैं, कल रात वाली घटना से।' इलियास खिलखिलाती हुई बोली।

'क्यों, कोई खास बात थी ? सच, तब से महेन्द्र का मूड उखड़ा-उखड़ा-सा लग रहा है, क्या बात है ?'

'अरे···'

तभी एनाउन्सर की आवाज सुनाई देने लगी और लोग जल्दी-जल्दी अपने विमान की ओर बढ़ने लगे। इलियास की बात एनाउन्सर की आवाज में ही खो गई।

'अच्छा, मिस मीना! चीरियो ! जिन्दा रहे तो फिर मिलेंगे।' हैरॉक ने मीना का हाथ हौले से दबा उस पर चुम्बन ले लिया।

मीना की आँखें डबडबा आईं।

हैरॉक विमान में सीट पर जाकर बैठ गया। एनाउन्सर की एक और आवाज़ सुनाई दी और मीना ने देखा कि विमान ने धरती छोड़ दी है।

पिछले तीन दिनों की कई स्मृतियाँ मीना के दिमाग पर तैर गईं। आह ! हैराक !

और धीरे-धीरे विमान आँखों से ओझल हो गया। भीड़ लौट रही थी। मीना अभी तक अपने को बचाती एक ओर खड़ी हैराक की स्मृति में ही लीन थी—मादक स्मृति।

'हल्लो मीना ! क्या देख रही हो ? वह तो गया!'

मीना कुछ चैतन्य-सी हुई। बोली, 'क्या ?'

'विमान, और क्या !' और महेन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़ा।

महेन्द्र के साथ मीना लौट पड़ी। बोली, 'तुम बड़े शैतान हो। सिर-दर्द था न आपको, कहाँ गया जनाब का सिर-दर्द ?'

'मीना, सच सिर का दर्द तो अभी इतना ज्यादा है कि पीड़ा से सिर फटा जा रहा है। पर चिन्ता तो मुझे यह थी कि कहीं तुम नाराज न हो जाओ और इसलिए यहाँ तक आना पड़ा।'

मीना मुस्करा पड़ी, 'मेरा तो बहाना है, यों कहो न कि इलियास को देखे बिना चैन नहीं पड़ रहा था, इसीलिए खोजते हुए हड़बडी में आ रहे थे।'

'इलियास ! मैं उससे घृणा करता हूँ मीना !'

'क्यों, इलियास तो तुम्हारी तारीफ कर रही थी।'

महेन्द्र सन्न रह गया, तो क्या इलियास ने सब कुछ उगल दिया ? पता नहीं क्या कह दिया हो। पर जानकर भी अनजान बनता हुआ बोला, 'क्या तारीफ कर रही थी मेरी ?'

'कह तो कुछ नहीं रही थी पर तुम्हारी हड़बड़ी, यों गुमसुम रहना और उसका चहकना, सारी बात तो खोलकर रख रहे हैं, फिर क्या बताना बाकी

[रह] गया है ?

महेन्द्र आश्वस्त हुआ। तो मीना को बताया तो कुछ भी नहीं गया है, चलो ठीक हुआ। बोला, 'तुम औरतों को वहम के अलावा आता ही क्या है ? सच्ची बात बताऊँ ?'

'हूँ···' उत्सुकता से रुक कर मीना ने जिज्ञासात्मक दृष्टि से देखते [हुए] कहा।

'इलियास मेरी बहन के बराबर है—' और जल्दी से आगे बढ़ गया, [जिससे] कि उसके चेहरे के बनते-बिगड़ते भाव पोल न खोल दें।

मीना सन्न रह गई। उफ़ ! कैसी गलती हो गई मुझसे···इलियास [और] महेन्द्र के बारे में मैंने क्या-क्या सोच लिया था ? मेरी बात पर कितना दुःख हुआ है महेन्द्र को ! तभी तो उसे इतनी कड़ी बात कहने के लिए बाध्य होना पड़ा है। उसे महेन्द्र पर श्रद्धा के साथ-साथ प्यार हो [आ]या। करुणार्द्र स्वर में बोली—सॉरी महेन्द्र ! मेरे शब्दों से तुम्हें [दु]ख पहुँचा, इसका मुझे खेद है।

[महेन्द्र] प्रसन्न था। उसका तीर निशाने पर लगा था, वह मीना की [नि]कटता ही तो चाहता था। बोला—नहीं, नहीं, खेद की बात नहीं मीना ! मेरा दिल कोई मिट्टी का टुकड़ा नहीं, जिसे हर किसी को देता फिरूँ ? उस पर किसी एक का स्वामित्व हो गया है, वह जाने और [उ]सका काम···?'

मीना कार के पास जाते-जाते रुक गई। आँखों में शरारत भर कर [बो]ली—मैं भी सुनूँ तो नहीं कि महेन्द्र बाबू के दिल पर किस का स्वामित्व हो गया है ?

महेन्द्र पास आ गया। बोला—'बताऊँ ?'

मीना ने अपनी पीठ गाड़ी की बॉडी से लगा दी। बोली—'हूँ'

'विश्वास नहीं करोगी मीना, बताने से फायदा ही क्या ?'

'अरे बताओ तो सही, शायद मैं ही कुछ हेल्प कर सकूँ—'

'और नहीं की तो ?'

'वायदा करती हूँ।

'कि दिल से उसका असली स्वामी लाकर मिला दोगी ?'

'हाँ…हाँ…।'

'तो सुनो मीना, उस दिल पर राय बहादुर अवध विहारी सिंह की सुपुत्री मीना कुमारी का स्वामित्व है ।'

सुनते ही मीना लजा गई । लाज से उसके कान की छोरें लाल सुर्ख हो गईं और पलकें झुक गईं !

महेन्द्र ने अपने दोनों हाथ गाड़ी की बॉडी पर लगा दिये । दोनों हाथों के बीच मीना का सिर था । स्वर को कोमल और संयत कर महेन्द्र बोला, 'मैंने तो मालिक बता दिया मीना, अब तुम अपना वायदा पूरा करो ।'

मीना चुप रही ।

'मीना ! मैं तुम्हें मांगता हूँ । जल्दी से जल्दी तुम से विवाह करना चाहता हूँ । आज अनुमति मांगने आया हूँ । मीना, शायद मुझे निराश नहीं लौटाओगी…'

मीना चुप रही ।

'तो तुम्हारा मौन स्वीकृति है, ऐसा मान लूं ?'

मीना की पलकें ऊपर उठीं । बोली, 'मेरी इच्छा होने पर मेरे पिता मना नहीं करेंगे, यह मुझे विश्वास है, पर तुम अपने पिता से पहले पूछ लो ।'

'वे स्वतन्त्र विचारों के व्यक्ति हैं मीना, मेरे विवाह में वे किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे, इसका मुझे विश्वास है । मुझे सिर्फ तुम्हारी स्वीकृति की ही आवश्यकता थी और वह आज मिल गई । क्यों ?'

'अपने पिता को साथ ले, मेरे पिता से मुझे मांग लो…और क्या ?' और कहती-कहती मीना हर्ष से विभोर हो उठी ।

कार का दरवाजा खोल उसमें बैठती हुई मीना बोली, 'आओ !'

'नहीं ! मैं गाड़ी लेता आया हूँ ! तुम्हारे साथ तो अब शादी के बाद ही…'

'हट ! नटखट कहीं के —'और खिलखिलाती हुई मीना ने कार का

एक्सलरेटर दबा दिया ।

महेन्द्र वहीं खड़ा था, प्रसन्नता में मग्न, उसका प्राप्तव्य सन्निकट था, बहुत ही नजदीक । केवल छूने भर की देर थी । मीना…गुलाब की पंखुड़ी और फिर उसके पिता की जायदाद…अहा ! और सोचता-सोचता कब वह अपनी कार में बैठा, गाड़ी कब उसने बढ़ा दी, उसे ध्यान ही न रहा ।

उसने उसी समय पिता से मिलने की ठानी । घड़ी में देखा, साढ़े दस बज रहे थे । शायद वे फ्री हों । और सोचता-सोचता चांदनी चौक की ओर बढ़ गया । पर क्लिनिक पर बहुत ज्यादा रोगियों की भीड़ देख वह वापस लौट गया । इस समय ऐसी बात करना ठीक नहीं है । शाम को घर पर ही आराम से बात हो सकेगी और सोचकर उसने गाड़ी वापस घुमा दी ।

दिन-भर वह इधर-उधर भटकता फिरा । शाम को ठीक पांच बजे ही जाकर बगीचे में बैठ गया, जिससे पिताजी के आते ही बातचीत की जा सके । पर एच० एन० नारंग रात के … नौ बजे के करीब घर लौटे और कार से उतरते ही सीधे अपने क… में चले गये । सेक्रेटरी मिस जूली को भी साथ लेते आये थे, वह भी उनके साथ ही साथ उनके निजी कक्ष में चली गई । महेन्द्र ने देखा, पर बोला नहीं, बाहर बैठक में बैठकर पिताजी के बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगा ।

करीब आध घण्टे के बाद दोनों बाहर निकले, बैठक के पास में से होकर वे दोनों जब वापस बाहर जाने लगे तो महेन्द्र भी उनके पीछे-पीछे चला और धीरे से पुकारते हुए कहा, 'पिताजी !'

नारंग पीछे घूम पड़े —'ओह, तुम महेन्द्र ! कुछ कहना चाहते हो क्या ?'

महेन्द्र ने मिस जूली की ओर देखा । जूली आगे बढ़कर कार में जा बैठी ।

'पिताजी, मैं आपसे किसी आवश्यक विषय पर परामर्श करना चाहता हूँ ।'

'कोई बहुत जरूरी मसला है क्या ?'

'हाँ ! मेरी शादी के सम्बन्ध में आपसे कुछ बातचीत करना चाहता हूँ ।' और आंखें उठाकर पिताजी की ओर देखने लगा ।

नारंग हँस पड़ा और प्रश्न को बिलकुल हल्के ढंग से उठाते हुए बोला, 'बस, सिर्फ इसी बात पर ?'

'क्यों, यह जरूरी विषय नहीं क्या ?' महेन्द्र की आंखों में आश्चर्य तैर गया ।

'इस समय मुझे जूली के साथ जाना जरूरी है महेन्द्र ! कल शाम को तुम्हारी बात पर बातचीत कर सकूंगा ।' और कहते-कहते मिस्टर नारंग कार में जा बैठे और कार एक झटका खा आगे की ओर बढ़ गई ।

मिस्टर नारंग एक सफल डॉक्टर थे और अपनी प्राइवेट प्रेक्टिस चांदनी चौक में जमा रखी थी । शहर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में नारंग का भी नाम था । पैसा कमाना उन्हें आता था, तो पैसा खर्च करना भी वे जानते थे । फिर भी लक्ष्मी की [illegible] कुछ विशेष कृपा थी कि खर्च के बावजूद भी उनका बैंक बेलेन्स बढ़ ही जा रहा था ।

नारंग के अपने स्वयं के अलग ही विचार थे । इंगलैण्ड से लौट कर उन्होंने अपनी प्राइवेट प्रेक्टिस जमाई थी । 'चार्वाक' के इस कथन का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा था कि जीवन में खूब खाओ और ऐश-आराम करो । छोटी-सी जिन्दगी है, इसे जितना बेहतरीन बनायी जा सके, उतना बेहतरीन बनाओ । सुन्दर से सुन्दर और जवान से जवान सेक्रेटरी वह रखता था, फिर भी उसके पास चार-छः महीनों से ज्यादा कोई सेक्रेटरी नहीं टिकती थी । ताजा माल चखो और शान से चखो और जी भर जाय तो फेंक दो, उसकी तरफ देखो भी मत । दुनिया में एक से एक बढ़कर माल भरे हैं । कुछ ऐसे ही विचार नारंग के थे । क्लब, होटल, सिनेमाघर और क्लिनिक—बस इन्हीं के इर्द-गिर्द उसकी जिन्दगी घूम रही थी ।

पिताजी के जाने के बाद कुछ समय तो महेन्द्र वहीं खड़ा रहा, पिताजी पर झुंझलाहट भी आई, पर कुछ चारा भी तो न था । आखिर अपनी गाड़ी लेकर वह भी बाहर निकल पड़ा । रात के करीब साढ़े ग्यारह

[illegible] आसपास वह घर लौटा, पर तब तक पिताजी नहीं आये थे, वह हार-कर स्लीपिंग रूम में चला गया ।

दूसरे दिन वह दिन भर घर में ही पड़ा रहा और एक अमेरिकन नाविल में सिर खपाता रहा । करीब चार बजे के लगभग वह उठा, स्नान किया और गाड़ी लेकर 'टर्मिनस' चला गया; पाँच सवा पांच के लगभग वह घर लौटा, पर पिताजी घर पर नहीं लौटे थे । क्लिनिक टेलीफोन किया, तो पता चला कि डॉक्टर साहब चार बजे ही बाहर चले गये थे अभी तक नहीं लौटे । महेन्द्र लॉन में कुर्सी बिछाकर बैठ गया ।

करीब साढ़े छः के आसपास नारंग लौटे और गाड़ी 'गैरेज' में खड़ी कर अन्दर जाने लगे तो लॉन में महेन्द्र को बैठा देख रुक गये । बोले, 'ओह ! तो तुम मेरी इन्तजार कर रहे हो ?'

महेन्द्र खड़ा हो गया और उसके स्वीकृति सूचक गर्दन हिलाने पर हंस पड़े, 'तो बहुत उतावली है तुम्हें शायद' और फिर अपने साथ आये मित्र चौधरी से हंसकर बोले, जानते हो, महेन्द्र क्या कहना चाहता है ?'

चौधरी के मना करने [illegible] ले, 'अच्छा चलो, चलो अन्दर बैठें, मुझे चाय भी पीनी है और चाय [illegible] विचार भी कर सकेंगे ।

कपड़े बदल कर नारंग कमरे में आ गया । महेन्द्र और चौधरी पहले ही कुर्सियों पर बैठ गये थे । नौकर चाय के बर्तन रखकर चला गया ।

बात छेड़ी नारंग ने ही, 'तो महेन्द्र ! तुम क्या कहना चाहते थे कहो ! कुछ शादी-वादी के बारे में बातचीत करना चाहते थे ।'

'जी हां, मैं चाहता हूं, अब मेरी शादी कर दी जाय ।'

'पर ऐसी उतावली की क्या बात है जो शादी के लिए इतनी हड़-बड़ी है. कुछ खास बात है क्या ?'

'नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं । पर अब हम दोनों चाहते हैं कि शादी जल्दी ही हो जाय तो ठीक रहे ।'

'कौन है वह ?'

'शायद आप उसे जानते भी हों । मैं सीमा के बारे में बात कर रहा

हूँ, अवध बिहारी सिंह की पुत्री—जो यहाँ हाईकोर्ट में एडवोकेट हैं।'

सुनते ही नारंग चौंक पड़े, पर तुरन्त ही अपने को साधारण स्थिति में लाते हुए चाय की चुस्की लेकर बोले, 'है तो ठीक, देखा तो मैंने नहीं, पर तारीफ जरूर सुनी है।'

'वास्तव में ही वह खूबसूरत है पापा ! ऐसी कि आप देखते ही रह जाएँ।'

नारंग मुस्करा दिया। बोला, 'पर इसमें शादी की जरूरत कहां आ पड़ी ?'

महेन्द्र भौंचक्का-सा टुकुर-टुकुर पिता का मुँह देखता रहा। बोला, 'क्यों ?'

अब की नारंग खुलकर हँसे। बोले, 'शायद समझे नहीं मेरी बात को। मैं कहता हूँ खूबसूरत है तो उससे सम्पर्क बढ़ा लो।'

'हम दोनों का सम्पर्क ही नहीं, बल्कि हम तो एक-दूसरे को प्यार करने लगे हैं।'

अब की नारंग चौधरी की ओर मुखातिब हुआ। बोला, 'चौधरी ! तुमने शादी कितने साल में की ?'

चौधरी एकाएक तो नारंग का मतलब नहीं समझा। पर उसे समझते देर भी नहीं लगी। बोला, 'छत्तीसवें साल में।'

'तब तक जिन्दगी कैसे गुजारी ?'

'मौज से…मैं कहता हूँ ठाठ से। रोज रंगीन रात और रोज नई अल्हड़ जवानी। एक बार के बाद उसकी तरफ देखा तक नहीं।'

'और मैं बताऊँ अपनी कहानी। तुम्हारी मां से शादी होने के पूर्व शायद पच्चीस-तीस जवानियों के सम्पर्क में मैं आ चुका था और तुम देखते ही हो कि अब भी मेरे पास जवान से जवान सेक्रेटरी रहती है और उसे भी चार-छः महीनों में बदल देता हूँ। समझे ?' और प्याले में पड़ी चाय पूरी की पूरी हलक के नीचे उतार ली।

महेन्द्र के लिए पिताजी की बातें जितनी सत्य थीं, उतनी ही नई भी। एकाएक वह कुछ समझ नहीं सका। पर बोला, 'तो आपका मतलब…?'

वाक्य पूरा होने से पहले ही नारंग बोल उठे—'मेरा मतलब है कि यदि मीना तुमसे प्रेम करती है, तो उसे जाल में फँसा लो।'

महेन्द्र ने पिता की हँसती हुई आँखों में झाँका। होंठ फड़फड़ाये—'कैसे ?'

'उसे 'रैप' करके।'

'पर पिताजी ! यह तो धोखा है, उसके साथ विश्वासघात है।'

नारंग ठठाकर हँस पड़े, 'धोखा…विश्वासघात…महेन्द्र, अभी तुम इस मामले में कच्चे हो। जिंदगी रंगीन बनाना चाहते हो तो लड़कियों के पीछे भागो मत, उन्हें अपने पीछे भागने के लिए मजबूर करो। और फिर देखोगे कि किस प्रकार तुम्हारी प्रत्येक रात जवान होती है, फिर शायद तुम्हें विवाह की जरूरत नहीं रहेगी।'

'रैप' शब्द अभी तक उसके दिमाग में चक्कर काट रहा था। वह यह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि पिताजी का कथन कितना अनुभवयुक्त है और कितना गलत। मीना को इतना बड़ा धोखा क्यों दूं, जब कि विवाह का प्रस्ताव वह स्वीकार कर चुकी है। बोला—पर पिताजी ! मीना स्व[illegible]ाह का प्रस्ताव स्वीकार कर चुकी है, फिर 'रैप' की…

नारंग हंस पड़े, 'तुम मूर्ख हो महेन्द्र ! बहती हुई नदी का पानी स्वच्छ और ताजा होता है, और जितनी बार भी पियो, उतनी ही बार ताजगी देता है। इसके विपरीत एक जगह पड़ा-पड़ा तालाब का पानी गंदला हो जाता है, उसमें स्वच्छता और ताजगी नहीं रहती, पर हारकर गंदला पानी भी पीने को मजबूर होना पड़ता है। तुम बोलो, कैसा पानी पीना पसन्द करोगे ?'

'निश्चय ही नदी का।'

'तो फिर विवाह कर अपनी जिंदगी को क्यों बांध रहे हो और केवल एक ही स्त्री से सन्तुष्ट होने की क्यों सोच रहे हो ? जीवन को बहती हुई नदी बना दो। तुम्हारे जीवन में एक मीना नहीं, ऐसी कई मीनाएँ आ सकती हैं, पर बँधने के बाद नहीं ?'

'तो फिर शादी करना बेकार है ! फिर बताइये आपने मेरी माँ से शादी क्यों की ?' प्रश्न बिल्कुल सीधा था ।

'आज अवसर आ ही गया है तो मैं तुम्हें सही-सही बता देता हूँ, शादी से पहले मैंने तुम्हारी मम्मी से दो बार 'रैप' किया था और एक बार तो कुछ ठहर भी गया था, पर उसे साफ करवा दिया था...'

'पर फिर शादी ?' महेन्द्र का प्रश्न था ।

'जब चमड़ी शिथिल पड़ जाय, और आंखों की कोरों पर झुर्रियाँ पड़ने लगें, तब एक न एक से 'ऐंगेज' होना ही पड़ता है जो जिंदगी भर साथ दे । मेरिज इज दी लास्ट आइटम...'और नारंग हो-हो करके हँस पड़े ।

महेन्द्र ने अपना प्याला चाय के पानी से एक बार फिर भर लिया और उसमें दूध मिलाता हुआ बोला—'तो आपकी सलाह है मैं मीना को रैप कर दूँ ।'

'यस् !'

'क्या यह धर्म है ?'

'महेन्द्र ! यह धर्म फिर क्या बला है ? तुम इस धर्म-अधर्म के चक्कर में कब फंसे ? मैंने तुम्हें स्वतन्त्र वातावरण दिया है, तुम्हारी जिंदगी को नये सिरे से ढाल रहा हूँ, फिर यह धर्म बीच में कहाँ से आ गया । यह तो मेरी शिक्षा नहीं है ?'

महेन्द्र कुछ नहीं बोला । चुपचाप चाय पीता रहा । कुछ समय ठहर कर नारंग ने पूछा, 'क्या मीना बहुत अधिक सुन्दर है ?'

महेन्द्र उत्साहित हुआ । बोला, 'हाँ, पिताजी !'

'तुम्हारे पास प्रमाण है कुछ ?'

महेन्द्र क्या प्रमाण दे ? पर तभी उसे उस रात खिचे फोटुओं की याद आ गई । बोला, 'कुछ फोटो हैं, कहें तो दिखा सकता हूँ ?'

'दिखाओ तो जरा ।'

महेन्द्र ने अपनी पेंट की जेब से फोटो निकाल कर पिताजी के सामने फैला दिये ।

नारंग ने फोटो देखे । सोती हुई मीना के हर ऐंगिल से फोटो खिचे हुए थे । किसी फोटो में मीना की जाँघ पर हैरॉक की जांघ थी, तो किसी में मीना के सीने पर हैरॉक का हाथ । इसी प्रकार के फोटो थे ।

'यह सोया हुआ आदमी कौन है ?'

'हैरॉक ! बीटनिक पार्टी का नेता, पिछले दिनों ही तो राजधानी में आये थे ।'

'पर इसमें तुम कहाँ हो ?'

'पिताजी ! मीना निर्दोष है । रात को शराब की पार्टी जमी थी, और शायद सभीने अपनी हैसियत से ज्यादा पी ली थी, इसलिए सब वहीं फर्श पर ही लुढ़क गये थे । सुबह पाँच बजे मेरी आंख खुली, तो मीना की 'स्लीपिंग ब्यूटी' से मैं प्रभावित हुआ और कुछ स्नेप ले लिये ।'

नारंग की आंखें फैल गईं । बोला, 'क्या ये फोटो तुम मुझे दे सकते हो ?'

'... क्यों ?'

'तुम्हारे पास मीना और उसकी जायदाद पहुँचाने को । तुम एक ही झटके में लाखों के मालिक हो सकते हो और मीना भी तुम्हारे संकेत पर नाचने के लिये मजबूर हो जायगी ।'

महेन्द्र धीरे-धीरे सब समझ गया था । उसे तो मीना प्राप्त करनी थी, फिर चाहे रास्ता कोई भी चुनना पड़े । वह बोला नहीं ।

नारंग ने वे फोटो कोट की भीतरी जेब में रख दीं और महेन्द्र से 'नेगेटिव कापियाँ' भी लेकर अपने पास रख दीं, 'हाँ तुम मेरे योग्य पुत्र, इसमें शक नहीं...' और नारंग अतिरिक्त उल्लास से हँस पड़ा ।

'तो...'

'कुछ नहीं महेन्द्र, एक बार क्लिनिक में मीना को मुझे दिखा दो । अपने बेटे की बहू तो देख लूँ फिर तुम्हारे विवाह की भी स्वीकृति दे दूँगा । बस !'

'सच पिताजी !' महेन्द्र आशान्वित हुआ ।

'हां ! मीना से भी पूछ लूं और उसकी भी रजामन्दी हुई और तुमने चाहा तो शीघ्र ही तुम्हारी शादी भी कर दूंगा।' और कहते-कहते नारंग उठ खड़ा हुआ।

महेन्द्र भी उठ खड़ा हुआ और मुँह से प्रसन्नता की सीटी बजाता हुआ बाहर निकल गया।

१०

महेन्द्र अत्यन्त प्रसन्न था और जल्दी से जल्दी विवाह की स्वीकृति का समाचार मीना को ना चाहता था। रात को उसकी पिताजी से जो बातचीत हुई थी, पर वह गंभीरता पूर्वक विचार कर रहा था। क्या जीवन इतना बदल गया है कि उसमें नीति-अनीति का प्रश्न उठाना ही व्यर्थ हो गया है। क्या जीवन में धर्म का महत्त्व नगण्य हो गया है। अभी तक उसका जीवन एक निश्चित ध्येय की ओर चल रहा था, पर आज उसे पता चला कि उसके जीवन को उसके पिता द्वारा बनाया जा रहा है। 'मैं तुम्हें एक निश्चित जीवन देना चाहता हूँ, मेरी शिक्षाएँ गांठ बांध लो।' पिताजी का यह वाक्य अभी तक उसके कानों में गूंज रहा था।

तो क्या पिताजी ने जो रास्ता सुझाया है, वह सही है ? आज उसे नई बात मालूम हुई कि उसकी मां शादी होने से पूर्व ही पिताजी द्वारा छली गई थी। कल पिताजी ने ही तो कहा था कि मैं दो बार तुम्हारी मां को सिड्यूस कर चुका था और यह तो एक ऐसा ही कारण बन गया, जो उससे शादी कर लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। उफ़ !

पर शायद पिताजी सही भी हों। उनका अपना जीवन-दर्शन है। नई से नई सेक्रेटरी रखते हैं और चार-छः महीनों से ज्यादा किसी सेक्रेटरी को अपने पास रखना ठीक नहीं समझते। आज उनके पास क्या नहीं है ? शानदार कोठी, चमचमाता फर्नीचर, नौकरों-चाकरों की भीड़ और बेशुमार दौलत ···क्या यह सब धन पिताजी ने इसी प्रकार इकट्ठा किया है ? और यदि यह सही है, तो ऐसी जिन्दगी ही खूबसूरत जिन्दगी है। पिताजी का कथन ठीक ही लग रहा है कि एक खूंटे से बंध जाना मूर्खता है, घाट-घाट का पानी पीना और नदी का बहता ताजा जल प्राप्त करते रहना ही वास्तविक जिन्दगी है। वह सोचने लगा, उसके जीवन में ही कितनी लड़कियां आईं। रेशमा नूर...मधु···उमा और अब यह मीना, वास्तव में ही उन्मुक्त और स्वच्छन्द जीवन ही जीवन है और मुझे इसी प्रकार से जिन्दगी ढालनी है।

पर मीना के साथ वह विवाह का वायदा कर चुका है, उसका क्या होगा। और तभी उसे रात का पिता का कथन स्मरण हो आया, जब उन्होंने की वे फोटो देखीं तो उनकी आंखों में चमक आ गई थी, और होंठ मुस्करा उठे थे—'महेन्द्र ! अब मीना तुम्हारी है, और उसके बाप की बेशुमार दौलत भी तुम्हारी है, पर काम सावधानी से करना, ऐसा न हो कि वह डर कर बिदक जाय। तुम उसे एक बार मुझे मिला दो, मैं तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध कर दूंगा।' तो क्या सचमुच इतनी जल्दी मीना मुझे मिल सकती है, और उसके बाप की जायदाद भी मेरे कब्जे में आ सकती है ? अहा ! तब तो मजा आ जायगा···यह जिदगी कितनी खूबसूरत बन जायगी···।

गाड़ी मन्थर गति से बढ़ रही थी, और उसके साथ ही साथ महेन्द्र के विचार भी उड़ रहे थे। पीछे से लगातार हॉर्न की आवाज आ रही थी। कल्पना लोक से वह ठोस यथार्थ की भूमि पर आ खड़ा हुआ, उसने साइड दे दी, और मिलिटरी जीप फर्राटे से उसके पास से निकल गई।

गाड़ी मीना की कोठी के पास से गुज़र रही थी, अब तक विचारों में वह इस कदर लीन था कि उसे पता ही नहीं चला कि कैसे वह इतनी

दूरी पार कर यहां तक आ गया ? उसने सिर बाहर निकाला, देखा तो मीना ऊपर बरामदे में बाल सुखा रही थी। वह एक सोफे पर आराम से बैठी थी और काली सघन केश-राशि चारों तरफ बिखरी पड़ी थी, शायद वह कोई उपन्यास पढ़ने में लीन थी। काले-काले सघन केशों के बीच में उसका गोरा-गोरा मुंह ऐसा लग रहा था, मानो काली बदलियों को फाड़ प्यारा-सा चांद निकल आया हो। महेन्द्र ने एक किनारे गाड़ी पार्क की, और कोठी में घुस गया।

धीरे-धीरे दबे पांव वह ऊपर गया, और ठीक मीना के पीछे जाकर खड़ा हो गया। मीना 'एलन' के 'नाइट इन पेरिस' नॉवेल में इस प्रकार खोई हुई थी कि उसे पता ही नहीं चला कि उसके पीछे भी आकर कोई खड़ा हो गया है।

'आदाब अर्ज है मलिकाए-हुस्न को !' और गम्भीर बने महेन्द्र ने झुककर कोर्निश की।

मीना अकचकाकर उठ खड़ी हुई, 'ओह तुम ! तुम कब आये यहां तक ?'

'कभी खड़ा हूँ, इस आशा में कि शायद इधर भी नजरे-इनायत हो जाए।'

'चोर कहीं के ! किसी के घर में इस प्रकार घुसना चोरी नहीं तो और क्या है ?' मुस्कराकर उपन्यास बन्द कर टेबल पर रखती हुई मीना बोली।

'बजा फरमा रही है आप। अब तो कुसूर हो ही गया, जो भी सजा दें, इस नाचीज को मंजूर है।' और वह हौले से मुस्करा दिया।

'अब रहने दो ये चालबाजियां। बैठो नीचे। अब यह बताओ क्या पिओगे ?' और मीना ने पास पड़ी घण्टी बजा दी।

नौकर के आने पर उसे चाय और कुछ नमकीन का आदेश दे मीना बोली, 'हां, तो बताइये हुजूर की सवारी किधर से आ रही है ?'

'घर से सीधा यहीं आ रहा हूँ, कहीं पर भी तो नहीं ठहरा हूँ।' भोलेपन से महेन्द्र ने उत्तर दिया।

नौकर चाय रखकर चला गया। प्यालों में चाय का पानी ढालती हुई मीना बोली, 'बहुत सीधे बन रहे हो, जैसे सतयुग से उठकर आ गये हो। चेहरे पर से तो ऐसी मासूमियत टपक रही है जैसे दूध पीते बच्चे हो और अभी त् त् मम करके बोलने लगोगे।'

बना हुआ कप अपनी ओर सरका, जेब से गोल्डफ्लेक की सिगरेट
निकाल उसे मुंह में लगाता हुआ महेन्द्र बोला, 'हुक्म हो तो सिगरेट सुलगा
लूं ?' और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए माचिस जलाकर सिगरेट सुलगा
ली, और ढेर सारा धुंआ बाहर उगल दिया।
मीना चुपचाप चाय पीती रही। महेन्द्र ने ही बात छेड़ी मम्मी नहीं
दिखाई दे रही हैं, कहीं बाहर गई हुई हैं क्या ?'
'क्यों, आज मम्मी की याद कैसे आ गई ?'
'यों ही पूछ लिया।' औरसिगरेट पर जमी राख 'एशट्रे' में झटक दी।
'शायद सुबह से ही मम्मी का सिर दर्द कर रहा था, एसप्रो भी
ली, पर कुछ लाभ नहीं हुआ, पापा को टेलीफोन किया तो उत्तर मिला
मैं बिजी हूँ आ नहीं सकूंगा, तुम किसी डॉक्टर के पास हो [illegible] तो
और शायद गाड़ी लेकर किसी क्लिनिक में ही गई है।'
महेन्द्र चाय पीता रहा और बीच-बीच में सिगरेट के भी कश [illegible]ता
रहा। बोला. 'मीनां, तुम्हें खुश-खबरी सुनाना चाहता हूँ।
मीना चौकन्नी हो गई। प्याले को प्लेट में रखती हुई बोली, 'अच्छा
सुनाओ न फिर, तो…'
'मेरे पिता ने स्वीकृति दे दी है।
मीना कुछ समझी नहीं ! आश्चर्यचकित सी बोली, 'किस बात की ?
महेन्द्र खिलखिला पड़ा। बोला, 'बस ! इतनी जल्दी भूल गई।…
मीना ने दिमाग पर जोर डाला, पर उसे कुछ भी स्मरण नहीं आया।
बोली, 'पहेलियां क्यों बुझा रहे हो, साफ-साफ कहो न ?
'अरे ! कल ही तो अपनी शादी की बातचीत हुई थी और तुमने
स्वीकृति देने के साथ-साथ शर्त लगा दी थी, कि पिताजी की परमीशन
ले ली जाय…'
मीना सलज्ज मुस्करा पड़ी. 'ओह हो. तो इतनी-सी बात को सात

रहस्यमय तालों में बंद कर के लाये, मैं तो डर गई कि ऐसी क्या बात है कि…'

महेन्द्र हँस पड़ा, 'तो जनाब, यह बात मामूली है, मैं कहता हूँ, यह तो जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है जिसके लिए सालों से तैयारी करनी पड़ती है और एक आप हैं कि विवाह की बात न हो गई, किसी घसियारे की बात हो गई जो सड़क चलते-चलते कुचल दिया गया हो।' और सिगरेट का जोरदार कश लेकर उसे 'ऐशट्रे' में डाल दिया।

तभी एकाएक मीना को जैसे चक्कर आया हो, वह आंखें मूंद कर कुर्सी से पीठ सटा कर बैठ गई। दो ही मिनट नहीं बीते होंगे कि उसे उल्टी हो गई और वमन द्वारा पेट का सारा खाया-पिया निकल गया। सारा फर्श गंदा हो गया।

महेन्द्र हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ और मीना को सहारा दे कमरे में बिछे पलंग पर लेजाकर लिटा दिया, पंखा फुल स्पीड से ऑन कर दिया … नौकर को बुलाकर फर्श साफ करने को कह मीना के पलंग की पाटी प… बैठ गया।

कुछ क्षणों के बाद ही मीना चैतन्य हुई। महेन्द्र ने पूछा, 'कैसी तबियत है?'

'ठीक हूँ' और भय से पीले पड़े चेहरे को साड़ी के आंचल से पोंछ दिया।

'राय साहब को फोन कर दूं क्या?' फोन की तरफ बढ़ता हुआ महेन्द्र बोला।

'नहीं, रहने दो। किसी को भी बुलाने की जरूरत नहीं है।'

महेन्द्र वापस आकर पलंग के पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गया। हैरत से पूछा, 'डॉक्टर को भी नहीं?'

मीना मुस्करा दी। बोली, 'नहीं! डॉक्टर की कोई जरूरत नहीं है।'

'पर एकाएक तुम्हें क्या हो गया। भली-चंगी बैठी चाय पी रही थीं, हँस रही थीं, कहकहे लगा रही थीं और एका-एक इस प्रकार तबियत बिगड़ गई। क्या बात है?'

मीना उसी प्रकार फीके-फीके मुस्कराती रही।

'तुम औरतों की जात भी विचित्र हो, कुछ पता ही नहीं चलता कि क्या बात है? डॉक्टर को बुलाने का कह रहा हूँ तो मना कर रही हो।' और महेन्द्र ने परेशानी में हाथ झटक दिये।

मीना चुपचाप पड़ी रही। कुछ भी बोली नहीं। महेन्द्र भी उसी प्रकार कुर्सी पर बैठा रहा। उसे यह सब गोरख-धंधा समझ नहीं आ रहा था कि क्या बात है? उल्टी हो गई, पर डॉक्टर को बुलाना ठीक नहीं समझ रही है, रॉय साहब को टेलीफोन करने का कहता हूँ, तो मना कर देती है और हारकर उसने एक नई सिगरेट सुलगा ली।

पर अभी तक महेन्द्र की दृष्टि मीना के चेहरे पर ही जमी थी। वह मीना का पीला पड़ता चेहरा और थरथराते होंठ साफ देख रहा था। वह अनुभव कर रहा था कि मीना के मन में भयंकर अन्तर्द्वन्द्व घुमड़ रहा है जिसकी छाया चेहरे पर स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है, पर शायद कहते हुए वह हिचकिचा रही है, कुछ ऐसी बात जरूर है, जो मीना कहना चाहते हुए भी कह नहीं पा रही है, मन ही म… …यद उसे कोई …बोल रहा है। न कहने के लिए मजबूर कर रहा है। … क्षण-प्रतिक्षण …के बनते-बिगड़ते भाव उसके चेहरे पर स्पष्ट देख रहा… ।

अचानक उसने देखा कि मीना की बड़ी-बड़ी आँखों की कोर से आँसू निकले और गालों पर लकीरें बनाते हुए नीचे की ओर लुढ़क गये।

'मीना! मीना!! तुम्हें हो क्या गया है? तुम रो क्यों रही हो? क्षण-प्रतिक्षण तुम्हारा चेहरा भय से पीला क्यों पड़ता जा रहा है? शायद तुम्हारे दिल में कुछ ऐसी बात है, जो तुम कहना चाहते हुए भी नहीं कह पा रही हो। बोलो न, बोलो क्या बात है?' और महेन्द्र पलंग की पाटी पर बैठ उसकी हथेली अपने दोनों हाथों में दबाता हुआ बोला, 'मेरे सिर की कसम, जो मुझे न कहा तो…।'

और मीना जोरों से फफक पड़ी। ऐसा लग रहा था, विषाद उसके दिल में भर गया था और बाहर निकल पड़ने के लिए अवसर ही ढूंढ रहा था। जोरों से उसे रुलाई छूट गई।

महेन्द्र के लिए यह बिल्कुल अप्रत्याशित बात थी। वह मीना को हठी, दृढ़निश्चयी और कठोरहृदय वाली समझता था, पर यह तो कांच का महल निकली, जो एक ही झन्नाटे में टूट कर चूर चूर हो गया। पर नहीं, मीना इतनी कायर तो नहीं जो साधारण सी घटना से इतनी विचलित हो जाय। जरूर कोई खास बात है जिसे मीना उससे और अपने घर वालों तक से छिपा रही है। क्या है यह बात? और उसे जानने के लिये महेन्द्र आतुर हो उठा।

'मीना !' उदासीन थरथराते से स्वर में झुककर महेन्द्र बोला।

मीना की बड़ी-बड़ी डबडबाई आंखें ऊपर उठीं, एक क्षण देखते रहने के बाद उसकी आंखों का बाँध टूट गया और चारों ओर से आँसुओं की धाराएँ बह निकलीं। महेन्द्र पास बैठा उसके सिर पर सांत्वना का हाथ फेरता रहा।

'मीनाऽऽ...' महेन्द्र ने दुबारा पुकारा।

'हूँ' एक अतल गहराई से स्वर फूटा।

'तुम मुझसे ही छिपा रही हो मीना, जरूर कोई ·· कोई बात है जो तुम सबसे छिपाती हुई घूम रही हो और वह दर्द तुम्हारे दिल में पककर नासूर हो गया है। दुःख तो अकेले नहीं भोगा जाता मीना, उसे तो सबमें बाँट देना ही ठीक होता है। कहो न, क्या बात है ?'

मीना स्थिर दृष्टि से दो क्षण महेन्द्र को तोलती रही, जैसे वह उसे परीक्षण की कसौटी पर कस रही हो। फिर जरा उठकर अपनी पीठ पलँग के सिरहाने लगा, लम्बे पैर फैलाकर बैठ गई। पैरों पर हल्का-नीला शाल पड़ा था।

महेन्द्र उसकी अंगुली में पड़ी हीरे की अँगूठी से खेलता रहा। बोला, 'कहो न ! मुझसे तो मत छिपाओ, मेरे सिर की कसम जो मुझसे न कहा तो··· ?'

धीरे-धीरे मीना अपने हृदय को दृढ़ करती रही। बोली, 'महेन्द्र ! सच-सच बता दूँ···?'

'हाँ···हाँ···इसमें हिचकिचाहट क्यों महसूस कर रही हो ?' आँखों में आँखें डालता हुआ महेन्द्र बोला।

'मुझे गर्भ रह गया है महेन्द्र!' एक-एक शब्द अंगारे की तरह निकला।

महेन्द्र एकदम से चीख पड़ा। पर हृदयस्थ चीख निकलते-निकलते भी ··ने होंठों के बीच दबा ली। ऐसा महसूस हुआ जैसे हजारों बिच्छुओं ने उसे ··कसाथ डँस लिया हो। और उनके जहर से वह तड़प रहा हो, तिलमिला ··हा हो, सिसक रहा हो।

मीना के ये शब्द एकबारगी महेन्द्र के दिमाग पर हथौड़े की तरह ··ोट कर गये। नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। यह सब झूठ है। पर जब ··ीना खुद कह रही है तो फिर झूठ कैसे हो सकता है। पर···और इस ··र' शब्द पर महेन्द्र अटक गया।

यह मेरा तो गर्भ है नहीं। मैंने तो इसके साथ ऐसा कोई व्यवहार नहीं किया। फिर···फिर यह किसका गर्भ हो सकता है ? सूदन का···धर्मू का···हैरॉक का···और पिछले नाम पर वह ठिठक गया। यह हैरॉक का ही हो सकता है और उसकी आँखों के सामने रात वाला दृश्य घूम गया। रात-रात भर शराब में धुत···और फिर कालीन पर ही पड़े रहना··· मीना की जांघ पर हैरॉक की जांघ···तो क्या हैरॉक ने मीना को पहले ही सीड्यूस कर लिया था···ओह ! —और उसका सिर दर्द से भन्ना गया।

प्रकट में बोला, 'यह झूठ भी हो सकता है मीना, ! हो सकता है, तुम्हारा वहम ही हो।' मीना, यह सच नहीं है। झूठ···झूठ है यह सब ···एक बार कह दो कि तुमने जो कुछ कहा है वह झूठ है, मजाक है···'

मीना के फीके होंठों पर जरा सी मुस्कराहट आई। बोली, 'इस प्रकार के शब्दों से सत्य को झुठलाया तो न जा सकेगा न···। वास्तविकता जो थी, वह तुम्हारे सामने प्रकट कर दी। फिर···'

'नहीं, नहीं !'

'मैं जानती थी महेन्द्र ! तुम इतने बड़े आघात को हँस कर शायद सहन न कर सकोगे, इसलिए कहते हुए मैं हिचकिचा रही थी। आखिर तो पुरुष हो न···'

महेन्द्र को सफेद लिबास में लिपटी वह सचमुच जहरीली सर्पिणी दिखाई दी। इतने बड़े पाप-कृत्य के बाद भी यह मुस्करा सकती है, तर्क कर सकती है, तब फिर इससे बड़ी पापिनी कौन हो सकती है ? उफ् !

तभी उसे पिताजी का कथन स्मरण हो आया। पाप और धर्म मूर्त रूप में कुछ नहीं, आज के युग के ये दो ऐसे शस्त्र हैं जो व्यक्ति अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए उपयोग करते रहते हैं। पिताजी की दृष्टि से देखें, तो मीना ने कुछ भी गलत नहीं किया। जीवन को और अधिक रंगीन बनाया, अपनी हविश पूरी की, इससे ज्यादा क्या ?...

पर यह धोखेबाज है। बेवफा है। इस सुन्दर चेहरे के नीचे भयंकर डरावना मुखौटा है। मैं इसके जादू में पड़ता-पड़ता बच गया। ठीक हुआ।

'क्या सोच रहे हो महेन्द्र ?'

महेन्द्र चैतन्य हुआ। बोला, 'हो सकता है, तुम जो गर्भ की धारणा बना बैठी हो, वह गलत हो। मात्र तुम्हारे मन का वहम हो ...।'

'कल मैं लेडी डॉक्टर सरीन के पास गई थी, उसने मेरे कथन की पुष्टि की है।' धीरे-धीरे नपे-तुले शब्दों में मीना बोली।

अब और कुछ पूछना व्यर्थ था, पर अभी तक महेन्द्र का मन नहीं मान रहा था। फिर भी उसके दुःख में शामिल होता हुआ धीरे-धीरे मृदु स्वर में बोला, 'एक बात पूछूं ?'

'हाँ।' मीना का चेहरा ऊपर उठा।

'क्या तुम डिस्चार्ज कराना चाहती हो ?'

प्रश्न एकदम अप्रत्याशित रूप से आया था, इसलिए मीना हिल गई। पर बात उसके मन के अनुकूल ही कही गई थी। वह स्वयं यही चाहती थी कि किसी प्रकार इस झंझट से छुटकारा मिले।

उसके सामने पिता का चेहरा घूम गया। वह जानती थी कि ऊपर से मृदु दिखने वाले पिता अन्दर से कितने कठोर हैं और जब वे सुनेंगे कि

उसकी बेटी ने जान-बूझकर गलत रास्ते पर कदम रक्खा है तो तिलमिला उठेंगे। उसकी माँ किस प्रकार से पिता की आग को भड़कायेगी। उसकी सहेलियाँ थू-थू करेंगी, समाज उसे कोसेगा, उस पर लांछन लगायेगा और आज जो उसकी स्थिति है, वह मिट जायेगी।

पिताजी के क्रोध को भी वह जानती थी। इस घटना से तिलमिलाकर वे न मालूम क्या कर बैठें ? शायद उसे घर से निकाल दें, मार-मार कर हड्डी-पसली एक कर दें...या बन्दूक की गोली से अपने-आपका खात्मा...और सोचती-सोचती मीना थर-थर काँप उठी।

महेन्द्र बैठा-बैठा मीना के चेहरे को ध्यानपूर्वक देख रहा था। बोला, 'जवाब नहीं दिया मीना ?...'

मीना चैतन्य हुई। उसने महेन्द्र की ओर देखा। महेन्द्र के रूप में उसे उस समय साक्षात देवदूत दिखाई दिया और वह महेन्द्र की गोद में सिर दे बुरी तरह फफक पड़ी।

'हिम्मत रखो मीना, मेरा कहना मानो। मेरे पिता इस मामले में 'एक्सपर्ट' हैं। मुझे पता है। मैं तुम्हारा केस सैटल करा दूंगा, कानोंकान खबर तक न होने दूंगा। तुम पिताजी से मिलोगी तो पता चलेगा कि वे कितने सज्जन हैं, दयालु हैं। आगे बढ़कर वे अपनी सहायता करेंगे। उठो ?...'

मीना ने सिर ऊपर उठाया। उसके थरथराते होंठों से निकला 'किन्तु...'

'किन्तु-विन्तु कुछ नहीं मीना ! यह समय व्यर्थ गँवाने का नहीं है। आग को फैलने देने से पहले ही उस पर काबू पा लेना ठीक रहता है। उठो तुम...' और कहते-कहते महेन्द्र उठ खड़ा हुआ।

एकाएक मीना कुछ निश्चय न कर सकी। यंत्र-चालित-सी उठकर गुसल में जा हाथ-मुंह धो कपड़े बदलने चली गई।

सज-संवर कर जब वह गाड़ी में बैठी तो दिन के साढ़े ग्यारह बज

रहे थे । मीना उदास थी और उदासी की रेखायें उसके चेहरे पर स्पष्टतः अंकित थीं । ऐसा लग रहा था कि जैसे अन्तर का भय उसे अन्दर-ही-अन्दर कचोट रहा है और समाज को जूती की नोक पर रखने वाली मीना ही उससे भयभीत होकर काँप रही है ।

महेन्द्र आश्वस्त था और सावधानीपूर्वक कार ड्राइव कर रहा था । इस समय भीड़ बहुत कम होती है । शायद क्लिनिक खाली ही हो । पिताजी भी करीब ग्यारह, साढ़े ग्यारह के आस-पास 'फ्री' हो जाते हैं । इस समय वे घण्टा, आध घण्टा 'क्लिनिक' में ही 'रेस्ट' करते हैं । इसी समय मीना को दिखाना ठीक रहेगा ।

उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि वह पिताजी से किस प्रकार बात शुरू करेगा । मीना के केस को किस प्रकार स्पष्ट करेगा और इस प्रकार मीना की सहायता कर वह सच्चे प्रेमी का फर्ज पूरा करेगा ।

'महेन्द्र !'

गाड़ी को जरा बाईं ओर घुमा कर उसे सीधा करता हुआ महेन्द्र बोला, 'हूँ ।'

'मुझे डर लगता है···।'

महेन्द्र हँस पड़ा । बोला, 'डर ! और वह भी मीना कुमारी को, जो डर-वर से कभी का पिण्ड छुड़ा चुकी है ।'

'नहीं महेन्द्र ! सच कहती हूँ, आज मुझे यदि तुम्हारा सहारा न मिलता तो न मालूम मैं क्या-से-क्या कर बैठती !'

महेन्द्र ने बायाँ हाथ मीना के मुँह पर रख दिया । 'ऐसी बात नहीं कहा करते मीना···और यह तो जीवन है, जिसमें सुख-दुःख की घड़ियाँ आती ही रहती हैं । तुम्हारे साथ सुख की कुछ घड़ियाँ व्यतीत की हैं, तो क्या यह मेरा फर्ज है कि तुम्हारे दुःख की घड़ियों में मैं शरीक न बनूं··· नहीं मीना···नहीं ! ऐसा कभी हो ही नहीं सकता···।'

डाक्टर नारंग का क्लिनिक आ गया था । महेन्द्र ने गाड़ी सड़क के

किनारे पार्क की और खुद नीचे उतर कर मीना के लिए दरवाजा खाल दिया ।

धड़कते हृदय से मीना नीचे उतरी । वह डाक्टर नारंग को इससे पूर्व एक-दो बार देख चुकी थी । उसकी 'बर्थ डे' पार्टी में भी वे आये थे । दिखने में तो भव्य और शालीन लगते थे, पर देखें उनका व्यवहार कैसा रहता है । 'कहीं झिड़क दिया तो·· या पिताजी को टेलीफोन कर दिया तो···और मन-ही-मन काँप उठी । पर उसी समय पास खड़े महेन्द्र का एहसास हुआ । महेन्द्र तो साथ है, आखिर तो वह इसका पिता है । क्या इतनी सी बात न मानेगा ? डाक्टर है । उसका तो परिचय क्षेत्र बहुत बड़ा होता है । खुद नहीं तो कहीं-न-कहीं उसे इस संकट से मुक्ति दिला ही देगा । उफ् ! कितनी बड़ी गलती हो गई ? पर कैसे हो गई, यह अभी तक वह समझ नहीं पा रही थी । जानते-बूझते तो उसे ऐसी कोई घटना याद नहीं आ रही है, फिर यह हुआ कैसे ? और उसका सिर चक्कर खा गया, पैर लड़खड़ा उठे और तुरन्त पास खड़े महेन्द्र की मजबूत बाँहों का सहारा ले लिया । दो-चार क्षणों में ही उसने अपने आप पर काबू किया और मन को दृढ़ कर आगे बढ़ गई ।

'क्यों, कैसी तबियत है ?'

'ठीक हूँ महेन्द्र ! यों ही चक्कर आ गया था । अब ठीक हूँ ।'

महेन्द्र उसे साथ ले क्लिनिक में घुस गया । क्लिनिक खाली-सा ही था । दो-चार मरीज बाहर बैंच पर बैठे थे और कम्पाउण्डर की प्रतीक्षा कर रहे थे । कम्पाउण्डर कुछ दवाएँ लेने केमिस्ट के यहाँ गया हुआ था । गेट पर ऊँची मूँछे उठाये चौकीदार खड़ा था ।

'कहो हरू, डॉक्टर साहब कहाँ है ?' हरू की ओर मुखातिब होकर महेन्द्र ने पूछा ।

'अन्दर अपने दफ्तर में बैठे हैं । शायद किसी से बातें कर रहे हैं । किसी को भी अन्दर आने को मना किया है ।'

महेन्द्र हँस पड़ा। बोला, 'मुझे भी मना किया है क्या?' और हँसते-हँसते मीना को साथ ले अन्दर की ओर बढ़ गया।

मीना और महेन्द्र दोनों ने ज्यों ही पर्दा हटाकर दफ्तर में पाँव रखा कि बुरी तरह चौंक गये। मीना तो घबरा-सी गई, उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। सामने ही 'ईजी चेयर' पर डाक्टर नारंग बैठे हैं और उनकी गोद में रेखा, मीना की सौतेली माँ—पड़ी है। डॉक्टर साहब भावुकता से उसके गालों पर की लट से खेल रहे हैं और रेखा आँखें मूँदे उनकी गोद में सो-सी रही है।

महेन्द्र और मीना को देखते ही डॉक्टर नारंग हड़बड़ाकर उठे। क्रोध से वे पागल हो गये। 'गेट आउट! व्हाई आर यू कमिंग हियर विदाउट परमीशन...' और खड़े-खड़े वे चीख-से पड़े।

रेखा भी हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई और सामने मीना को देख यह हक्की-बक्की रह गई। तुरन्त अपने अस्त-व्यस्त कपड़े सँभाले और भाग-कर पास वाले कमरे में घुस जोरों से दरवाजा बन्द कर दिया।

यह सब कुछ इतना आकस्मिक और अप्रत्याशित रूप से हुआ कि कुछ पता ही न चला। मीना तो जैसे जड़-सी हो गई, उसकी तो सोचने-विचारने की शक्ति ही जैसे गुम हो गई हो। अभी-अभी जो उसने देखा था, वह इतना अप्रत्याशित और अकल्पित था कि मीना एकाएक अपने को 'एडजस्ट' भी न कर सकी।

महेन्द्र मीना को लेकर घूम पड़ा और ज्यों ही बाहर जाने को उद्यत हुआ कि उसे पिताजी की आवाज सुनाई दी—'महेन्द्र!'

महेन्द्र घूमा और पिताजी को देखता रहा। बोला कुछ नहीं।

'तुम्हें इस प्रकार बिना पूछे अन्दर नहीं आना चाहिए था। यह 'एटीकेट' के खिलाफ है।'

'इसीलिए तो वापस जा रहा हूँ।' महेन्द्र का धीर-गंभीर स्वर निकला।

डाक्टर नारंग महेन्द्र के पास आ गये। उनके चेहरे पर के क्रोध के भाव लुप्त हो गये थे और उस जगह वही रहस्यमय मुस्कान थिरक रही थी, जो हमेशा उनके चेहरे पर छाई रहती थी। बोले, 'बाहर जाने की जरूरत नहीं। बैठो! हाँ, कहो कैसे आये थे?'

महेन्द्र एकाएक निर्णय न कर सका कि वह रुके या चला जाय। उसने मीना की ओर देखा।

'चलो महेन्द्र! यहाँ रुकना ठीक नहीं है...' और उसने अपने पैर दरवाजे की ओर बढ़ा दिये।

डाक्टर हँस पड़े, 'नाराज हो क्या बिटिया!' और फिर खिलखिला पड़े, 'मुझे क्रोध आ जाता है तो फिर न मालूम क्या-क्या कह देता हूँ। क्या नाराज हो गई हो?'

'बिटिया' शब्द मीना के कानों में पड़ा, तो उसके पैर रुक गये। उसने महेन्द्र की ओर देखा।

'रुक जाओ न, पिताजी को क्रोध आ जाता है द... ही आता है। मैं जानता हूं, इनका स्वभाव।' और कहते-कहते वह ...ल के पास पड़ी कुर्सी की ओर बढ़ गया।

विवश-सी मीना को भी कुर्सी पर बैठना पड़ा। अभी-अभी जो मीना देख चुकी है, सहसा उस पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। रेखा... मिसेज राय...उसकी सौतेली माँ...जो हर समय 'धर्म' और 'पतिव्रता' शब्दों के इर्द-गिर्द ही घूमती है, इस प्रकार दिन-दहाड़े प्रेम करती फिरती है। पिताजी कितना विश्वास करते हैं इस पर...बात-बात में सादगी और शिष्टता में रेखा की दुहाई देते हैं। वही आज पिताजी को धोखा देकर इस प्रकार डाक्टर नारंग से अपना सिर दर्द ठीक करवा रही है। उफ! उसका सिर भन्ना गया, और उसने लम्बी-लम्बी पतली अँगुलियाँ ललाट पर टेक दीं।

'शायद सिर दर्द कर रहा है आपका। क्या चाय मँगवाऊँ आपके

लिए ?' डाक्टर नारंग ने सहज आत्मीयता से पूछा, और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये पास खड़े चपरासी को होटल से 'टी पॉट' मँगाने का आदेश दे दिया।

'पिताजी ! आपका शुभ नाम मीना है, मिस्टर अवध बिहारी सिंह की लाड़ली पुत्री···'

'ओह ! आई सी !' डाक्टर प्रभावित हुए से बोले। एक क्षण के लिए वे चौंके जैसे चोरी करते पकड़ लिए गये हों, पर तुरन्त सँभल गये। चेहरे पर की जो दो-एक रेखाएँ लुप्त हो गई थीं, वे पुनः लौट आईं। बोले, 'भई, वाकई जैसी तारीफ सुनी थी, वैसी ही निकली···' और लाइटर से अपनी सिगरेट लगाने लग गये।

'हूँ।' मीना के मुँह से अचानक निकला।

'हाँ, हाँ···ठीक ही तो कह रहा हूँ। सुना था कि राय साहब की लड़की 'दिल्ली क्वीन' है, और वाकई···' डाक्टर ने जान बूझ कर वाक्य अधूरा छोड़ दिया, और सिगरेट का एक जोरदार कश ले लिया।

मीना चुपचाप गुम-सुम बैठी रही।

डाक्टर की अनुभवी आँखों ने ताड़ लिया कि जरूर कुछ गोल-माल है और मोटी मुर्गी स्वतः ही फन्दे में फँस गई है। पर फिर भी अपना सन्देह स्पष्ट कर लेना जरूरी था। महेन्द्र की ओर अपना चेहरा घुमाकर बोले, 'पढ़ाई कैसी चल रही है ?'

'ठीक है, अब की मैं अच्छे नंबर सिक्योर कर लूंगा।' महेन्द्र ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

'और आप ?'

उत्तर दिया महेन्द्र ने, 'ये तो ब्रिलियण्ट है पिताजी, टॉप करने वाली। इस साल भी पेपर ठीक रहे तो शायद क्लास में टॉप्र करेंगी।' और मीना की ओर देख मुस्करा दिया।

होटल का बैरा टी-पॉट रख कर चला गया। डाक्टर ने ट्रे अपनी ओर

खींच ली और चाय बनाता हुआ बोला, 'सुगर वन स्पून ऑर···'

'नहीं ! नहीं !! रहने दीजिये, मेरी चाय की कतई इच्छा नहीं है।' मीना ने उत्तर दिया। वस्तुतः मीना का वहाँ दम घुट रहा था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे कोई मेमना भयंकर भेड़ियों के बीच में फँस गया हो। वह जल्द-से-जल्द वहाँ से निकल भागना चाहती थी। पर आज तो फंस गई थी, मन मारकर भी बैठने के लिए मजबूर होना पड़ा था।

'शायद आप हिचकिचा रही हैं, या हमें गैर समझ रही हैं···' और फिर डाक्टर नारंग जोरों से हो-होकर के हँस पडे। बोले, 'अरे भई, मैं और रॉय तो लंगोटिया यार हैं। हम दोनों में तो वर्षों से दोस्ती चली आ रही है। फिर यह संकोच कैसा ?' और प्याला बना कर मीना के सामने रख दिया।

चाय का घूंट लेते हुए महेन्द्र ने बात छेड़ी, 'पिताजी, मैं और मीना एक जरूरी काम से आपके पास आये हैं।' और चाय का प्याला पुनः प्लेट में रख लिया।

मीना ने महेन्द्र की ओर देखा, और डाक्टर नारंग ने मीना की ओर। बोले डाक्टर, 'हूँ··· हूँ कहो न···निश्चिन्त रहो, यहाँ कोई नहीं सुन रहा है।'

मीना बीच में ही बोल पड़ी, 'नहीं ! नहीं !! महेन्द्र, अभी नहीं, फिर कभी···'

'घबराइये नहीं मिस राय। मैं तुम्हारा चाचा हूं, अपनी ही फेमिली का एक मेम्बर। यथासंभव मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।' फिर आँखों में चमक भरकर धीमे से स्वर में बोले, 'आपस में शादी-वादी का मामला है क्या ?···'

मीना चुप रही। महेन्द्र दो क्षण अपने-आपको तोलता रहा। फिर बोला, 'यह बात तो बाद की हो गई है पिताजी, इससे पहले संकट तो एक दूसरा आकर खड़ा हो गया है।'

डाक्टर नारंग मँजे हुए थे, इस प्रकार के कार्यों से उनका पाला पड़ता

ही रहता था। बोले, 'हूँ···कहे जाओ···'

'मीना को गर्भ रह गया है।' महेन्द्र ने इस प्रकार अचानक रूप से कहा, कि जैसे एकदम गोला दाग दिया हो।

डाक्टर नारंग भी एकदम चौंक पड़े। पर तुरन्त ही अपने आप पर काबू पा लिया। बोले, 'हूँ।'

'और हम आपके पास इसलिए आये हैं कि आप एक्जामिन करके देखें कि यह बात सही है या नहीं, और यदि है तो इस संकट से मुक्ति···'

डाक्टर नारंग एकाएक कुर्सी से उठ खड़े हुए। बोले, 'जीव हत्या मेरे वश की बात नहीं। डाक्टर मनुष्य को जिन्दा रखता है, मारता नहीं।' पर फिर एकाएक कुर्सी पर बैठते हुए बोले, पर यहाँ बात दूसरी है। यहाँ मेरे मित्र का सवाल है···'

थोड़ी देर वे चुपचाप बैठे रहे। फिर बोले, 'क्या इस बात का पता राय को लग चुका है?'

'नहीं! किसी को भी नहीं। यहां तक कि हम [illegible] के अलावा किसी पंछी तक को भी नहीं।' धीरे-धीरे महेन्द्र बोला।

डाक्टर नारग की आंखों में चमक आ गई और होंठ कुटिल मुस्कराहट के साथ फल गये। बोले, 'केस गम्भीर है, पकड़े जाने पर सीधी जेल है। पर एक बात पूछूं? यह सब हुआ कैसे?' और फिर महेन्द्र की ओर मुखातिब होकर बोले, 'क्या तुमसे?'

'नहीं पिताजी! कत्तई नहीं! जाने-अनजाने में भी मैं अभी तक यहाँ तक नहीं बढ़ा।' महेन्द्र दृढ़ता से बोला।

'तो फिर किसका है?' डाक्टर नारंग के स्वर में तलवार जैसी धार आ गई।

दो क्षण कमरे में चुप्पी रही। मीना नीचा मुँह किये ही बैठी रही। बोली नहीं। डाक्टर नारंग की नजरें मीना और महेन्द्र पर जमी रहीं। प्रश्नात्मक स्वर में बोले, 'हूँ ऽऽ'

'शायद हैरॉक का हो।' दबी जबान से अब की महेन्द्र बोला।

'नहीं! नहीं!! कत्तई नहीं। यह झूठ है, बकवास है, धोखा और छल है। उस निर्दोष पर दोष मढ़ना अन्याय है।' मीना चीख-सी पड़ी।

'तो फिर किसका है? किसी-न-किसी का तो है ही?' डाक्टर नारंग पैनी धार वाली आवाज में बोले।

मीना क्या जवाब दे। उसने ऐसा कृत्य किया ही नहीं था तो फिर इसका जवाब भी क्या देती। पर फिर प्रश्न तो यही बाकी रह जाता था कि फिर यह किसका है? क्या उत्तर दे वह। मौन रही वह। गुमसुम, नीची नजर किये।

'अभी पता चल जाता है। ब्लड टेस्ट करके मैं इस संदेह को ही स्पष्ट कर देता हूं कि ऐसा मामला है या नहीं।' और कहते-कहते डाक्टर नारंग उठ खड़े हुए।

मीना भी उठ खड़ी हु[illegible] बोली, 'नहीं कराना मुझे 'ब्लड टेस्ट! देखी जायगी, जो भी होगी, [illegible] भुगत लूंगी···पर···' उसका सारा शरीर क्रोध से थरथरा रहा था।

डाक्टर नारंग हँस पड़े, 'क्रोध करना व्यर्थ है बेबी। तुम बैठो। घबराने की बात नहीं है। यदि ऐसा हो भी गया तो मैं मामला घण्टे, आधे घण्टे में साफ कर दूंगा, कानों-कान खबर भी नहीं होगी।' और मृदुलता से मुस्करा दिये।

'बैठ जाओ मीना, जो हो चुका सो हो चुका, अब तो उसे रफा-दफा कर लेना ही बुद्धिमानी है।' महेन्द्र सान्त्वना भरे स्वर में बोला।

'पर महेन्द्र, मैंने ऐसा कृत्य किया ही नहीं, तो फिर भगवान मुझे किस बात की सजा दे रहा है।' और कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू छलछला आये।

डाक्टर नारंग बाहर चले गये थे और थोड़ी ही देर में वे कांच की प्लेट और स्प्रिट का फोहा लेकर आ गये। अंगुली में थोड़ा-सा चेक करके

काँच की प्लेट पर मीना का खून ले लिया, और पास वाली लेबोर्टरी में चले गये।

'लेबोर्टरी' में डाक्टर नारंग ने खूब अच्छी तरह रक्त का टेस्ट किया, पर कहीं पर भी उसे उसमें गर्भ के कीटाणु नज़र नहीं आये। रक्त की एक बूंद में कुछ अन्य मिक्स्चर डाल कर भी परीक्षा की, पर किसी भी प्रकार यह सिद्ध नहीं हो सका कि रक्त में गर्भ के कीटाणु हैं। डॉक्टर चक्कर में पड़ गया।

तो क्या मीना को 'डिलेवरी' नहीं है। शायद वह सही कह रही हो। खून का टेस्ट भी तो यही रिजल्ट दे रहा है कि उसे डिलेवरी नहीं है। तो फिर क्या मीना को भ्रम ही है। पर ··पर···एकाएक डॉक्टर की आँखों में चमक उभर आई। मन-ही-मन कहा, 'उसे भ्रम बने ही रहने देना चाहिए! इसी में मेरी, महेन्द्र की और रे··· की खैर है। हो सकता है इस खटपट में उसे दस-बीस हजार मिल जाय ठीक है···।

वह बाहर आया, और गुमसुम अपनी उसी कुर्सी पर बैठ गया।

'पिता जी···।'

'हूँ!'

'क्या रिपोर्ट है?'

'बेबी को डिलेवरी है, और उसके कण रक्त में साफ चमक रहे हैं।' मीना पर आँखें गड़ाकर रहस्यमय से स्वर में डाक्टर नारंग बोले।

मीना एकदम से जैसे अतल खड्ड में गिर गई हो। उफ्! कल तक जो सन्देह था, वह आज सत्य में परिणत हो गया। कल सिस्टर सरीन को दिखाने पर भी उसने यही कहा था, और आज डाक्टर नारंग भी यही कह रहे हैं। तो क्या सचमुच उसे गर्भ रह गया है? पर किससे?··· कब···? वह विक्षिप्त सी हो उठी।

कमरे में मौन छाया रहा। मौन भंग किया महेन्द्र ने, 'तो फिर अब?···'

'अब क्या···?' दोनों हाथों की अँगुलियाँ आपस में उलझा परस्पर मरोड़ते से डाक्टर नारंग बोले।

'इस केस को···'

पर महेन्द्र के वाक्य पूरा होने से पूर्व ही डाक्टर नारंग बीच में बोल पड़े, 'देखो महेन्द्र! मैं इस केस को सैटल करने में असमर्थ हूँ···।'

'पर क्यों?' हैरानी के से स्वर में महेन्द्र और मीना ने डाक्टर के चेहरे की ओर देखा।

'इसलिए कि मैं अपने मित्र राय को धोखा नहीं दे सकता। मेरा फर्ज़ है कि मैं उसे यह सारा काण्ड साफ-साफ शब्दों में सुना दूँ···।'

'पर आपने तो ·' मीना हतबुद्धि-सी डाक्टर की ओर देखती हुई बोली।

'हाँ, मैंने सह··· का वचन दिया था और अब भी सहायता कर सकता हूँ। पर ए··· शर्त पर···'

दोनों चौकन्ने-से हो गये। मीना के होंठों से बरबस निकला, 'क्या?'

धीमे से स्वर में डाक्टर नारंग बोले, 'बस इतनी सी बात कि यदि मीना दस हजार का प्रबन्ध कर सके तो···'

मीना एकदम से कुर्सी पर से उछल पड़ी। उसका चेहरा तमतमा आया। बोली, 'तो तुम भी मनुष्य की खाल में भेड़िये हो, मुझे इसका पता न था। यह ज्ञान न था कि तुम्हारी नजर मेरे पिता की दौलत पर है। आज पता चला कि महेन्द्र भी इस षड्यंत्र में पिता के साथ है, और मुझे फुसलाकर, सहायता का लालच देकर यहाँ तक खींच लाया है', क्रोध में मीना का चेहरा लाल-भभूका हो रहा था और सारा शरीर तमतमा रहा था।

'पर मीना···'महेन्द्र धीरे से बोला।

'शट् अप ! मुझसे बात करने की जरूरत नहीं ।'

'पर मीना जी !' डॉक्टर नारंग ने बीच में दखल दी, 'गुस्सा होने से क्या होगा, जो बात सही है, वह तो सही ही रहेगी । और यह भी सिद्ध हो चुका है कि गर्भ 'हैरॉक' का है ।"

'चुप रहो डाक्टर ! अभी तक मैं आपके साथ इन्सानियत का व्यवहार कर रही हूँ···अन्यथा···क्या प्रमाण है तुम्हारे पास कि हैरॉक का गर्भ मेरे पेट में है···? मीना क्रोध में आग बबूला हो रही थी ।

डाक्टर मुस्कराये, 'प्रमाण है मीना जी, और हाथ कंगन को आरसी क्या ! ये रहे प्रमाण ?' और डाक्टर नारंग ने महेन्द्र के वे खींचे फोटो टेबल पर छितरा दिये ।

एकबारगी तो मीना हक्की-बक्की रह गई । ये फोटो कहाँ से आ गये ? और फिर इस हालत में । हैरॉक का हाथ मेरे सीने पर और उसकी जांघ··· उफ् ! 'और मीना दोनों हाथों से अपना चेहरा ढँक धम्म से वहीं कुर्सी पर बैठ गई ।'

डाक्टर ने देखा, तीर ठीक निशाने पर लगा है । बोला, 'अभी भी सन्देह है मीना जी···' और मीना जी शब्द को लम्बा खींच व्यंग्य से मुस्करा दिया ।

मीना बुरी तरह से फँस गई थी । पिंजरे में फँसे तोते की तरह वह छटपटा रही थी । उफ् ! महेन्द्र इतनी बड़ी गद्दारी करेगा, उसे इस प्रकार सुलाकर चुपके से उसके फोटो खींच लेगा, और उसे उस रात की घटना एक-एक कर याद हो आई । वह उठी, पर टाँगें लड़खड़ा रही थीं । जैसे कि सारा खून पानी हो गया था. और ताकत कपूर की तरह उड़ गई थी ।

'यदि मेरा प्रस्ताव स्वीकार हो तो···'डाक्टर नारंग धीरे से बोले ।

मीना ने जलती हुई नजरों से डाक्टर नारंग की ओर देखा । और फिर एकाएक टेबल पर के वे फोटो हाथ में ले उसके टुकड़े-टुकड़े करती हुई

मीना बोली, 'झूठ ! बिल्कुल झूठ ! यह धोखा है, मेरे साथ छल है··· कपट है···' और गुस्से में उसने महेन्द्र की ओर देख थूक दिया ।

'कैमरा झूठ नहीं बोलता मीना देवी, वह बिल्कुल सही बात बताता है ।' और डाक्टर नारंग खिलखिला पड़े । 'इन फोटो और राज को हमेशा-हमेशा के लिए दफना देने की कीमत केवल पचीस हजार रुपये··· सिर्फ पचीस हजार···' और धीरे से हँस दिये ।

'तुम कुत्ते हो···नीच, बदजात···' और कहती-कहती गुस्से से तम-तमाई मीना कमरे से बाहर निकलने को मुड़ गई ।

'इन सब फोटो के मेरे पास 'नेगेटिव' हैं, कल शाम तक पचीस हजार मात्र···' और डाक्टर नारंग जोरों से हंस पड़े···खिलखिला पड़े ।

मीना दनदनाती क्लिनिक के बाहर निकल गाड़ी में जा बैठी और एक ही झन्नाटे में गाड़ी आगे बढ़ गई । मीना की आँखों से बेबसी के लगातार आँसू बह रहे थे, बहते ही जा रहे थे ।

११

दिन भर कोर्ट में वकीलों और मुवक्किलों से बहस करते-करते थक कर शाम को जब राय साहब अवध बिहारी सिंह दालान में चाय का प्याला लेकर बैठे तो उन्हें जरा कुछ राहत महसूस हुई । सामने ही मोढ़े पर रेखा बैठी थी ।

'क्यों ? सिर दर्द कैसा है अब ? दिखाया था किसी को ?'

रेखा मुस्कराई । छोटे-छोटे सफेद दाँत झिलमिला उठे । राय साहब मुग्ध हो गये । बोली, 'न मालूम क्या हो गया है मुझे, कि महीने में दो-चार बार सिर दर्द हो ही जाता है, और फिर जब यह दर्द उठता है तो सँभाले नहीं सँभलता । ऐसा लगता है मानो सिर के टुकड़े टुकड़े हो

जायेंगे···' और रेखा ने एक सर्द आह अन्दर खींची ।

'तो क्यों नहीं जमकर इलाज करा लेतीं, रोज-रोज के दर्द से पिण्ड छूटे । मैं कपूर को···'

चाय का घूंट लेती हुई मिसेज राय बोली, 'नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं । आपको टेलीफोन करने के बाद जब सिर का दर्द बहुत अधिक बढ़ गया था तो मैं स्वयं डाक्टर नारंग के क्लिनिक चली गई थी···'

'कौन डॉक्टर नारंग···' कुछ याद करते हुए से राय साहब बोले ।

'वही डाक्टर एच० एन० नारंग, मैण्टल एक्सपर्ट···मुझे सलाह दी, कि मैं एक दिन आपके साथ चलूं, वे शायद इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी और सलाह देना चाहते हैं, जिससे यह दर्द जड़ से ही खत्म हो जाय ।'

राय साहब ने इत्मीनान से सिगरेट सुलगा ली । बोले, 'तुम किन प्राइवेट क्लिनिकों के चक्कर में पड़ गई हो । मैं अभी डॉक्टर कपूर को टेलीफोन कर लेता हूँ । घर के आदमी हैं । और उनकी ··वाइज भी ठीक रहेगी ।' और फिर सिगरेट का एक ज़ोरदार कश लेकर ·· पर जमी राख चुटकी बजाकर एश-ट्रे में डाल दी ।

रेखा ने मुड्ढा और पास सरका दिया । बोली, 'एक बात कहूँ, जरा सीक्रेट है ?···' और रहस्यात्मक ढंग से पति की ओर देखने लगी ।

राय साहब कुछ सोच-से रहे थे । रेखा की बात से चौकन्ने हुए । बोले, 'हूँ ।'

'मीना को कुछ भी नहीं कहो तो एक बात कहूँ !' धीरे-धीरे रेखा बोली ।

'मीना ? क्या हो गया मीना को ? ऐसी क्या सीक्रेट है जो मीना से छुपाने को कह रही हो ?' अबकी शायद राय साहब के दिल में कौतूहल ज्यादा जग गया था ।

'खाओ मेरे सर की कसम कि मीना पर हाथ न उठाओगे ?' रेखा ने बात में और गहराई भरी ।

'अरे कुछ कहोगी भी कि यों ही बात में से बात निकालती जाओगी?' अधीरता से राय साहब बोले ।

'आप तो अभी से नाराज होने लगे ।' रूठती हुई सी रेखा बोली, 'मुझे क्या करना है कहकर ? मैं तो कोई भली बात भी कहूँगी तो कौन मानेगा ? कौन होती हूँ मैं इस घर में ?···'

राय साहब के धैर्य का प्याला समाप्त हो चुका था । उतावली में बोले, 'मेरी कसम जो बात न कही तो, आखिर बात तो कुछ होगी···?'

'आपकी लाड़ली जो मीना है न, जिसे लाड़-लाड़ में सिर पर चढ़ा रखा है···'

'हाँ, हाँ···'

'उसके कुँआरी के ही गर्भ रह गया है ।'

राय साहब इस प्रकार चौंके मानो कोई प्रलय आ गई हो । हाथ में पकड़ा प्याला छिटककर दूर जा गिरा और चाय की कुछ बूँदें पाजामे पर गिर उसे भी मटमैला कर गई । एकबारगी तो वे संज्ञाशून्य-से हो गये ! चीखकर बोले, 'तुम कैसे कह सकती हो, तुम्हें किसने कहा ?···'

'चिल्लाओ मत, शान्ति से बातचीत करो,' रेखा धैर्य की पुतली बनी बोली, 'चिल्लाने से तो अभी घर के नौकर इकट्ठे हो जायँगे और जो बात मैं पर्दे की ओट में रखती आ रही हूँ तुम उसे एक ही झटके में गली-कूचों में फेंक दोगे···'

राय साहब कुछ ठंडे पड़े । बोले, 'तुम्हें कहा किसने ? इस बात पर तुम्हें विश्वास कैसे हुआ ?···'

'विश्वास ?' घृणा से नाक सिकोड़ती हुई रेखा बोली, 'अभी विश्वास की भी क्या जरूरत है । जो आँखों से देख चुकी हूँ वह झूठी तो नहीं हो सकती?···'

'आँखों से ?'

'हाँ, हाँ ! आँखों से । आज दिन को अपनी आँखों से यह नजारा देखकर आई हूँ !'

राय साहब को यह गुत्थी कुछ समझ नहीं आ रही थी कि इतना

बड़ा काण्ड एकाएक कैसे हो गया ? मीना तो ऐसी लड़की है नहीं ! यह जरूर है कि मैंने उसे लाड़-प्यार में पाला है, उसे ऊँची से ऊँ शिक्षा दिलाते रहने की व्यवस्था की है और स्वच्छंद जीवन बिता उन्मुक्त विचारों में विचरते रहने की उसे प्रेरणा दी है। बंधन न तो क मैंने स्वीकार किया और न किसी और पर कसा बन्धन देख सकता हूँ पर इन सबका अर्थ उच्छृंखलता तो नहीं। जीवन जीने के भी तो कु नियम होते हैं और जो उन नियमों का उल्लंघन करता है, वह मुँह के ब गिरता भी है। यदि रेखा जो कुछ भी कह रही है, वह सब कुछ सत्य है त बहुत बड़ी गलती है मीना की, मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता, सहन नहीं कर सकता···नहीं···नहीं ! कतई सहन नहीं कर सकता।—और अन्तिम बात चीख के रूप में उनके मुँह से निकल गई।

रेखा पास ही बैठी अपने पति के पल-पल के परिवर्तित भावों को एकचित्त से देख रही थी। चीख सुनकर बोली, 'चीखिए मत ! जो हो चुका सो हो चुका।'

'रेखा !' राय साहब गरजे, 'तुम मुझे यह सलाह देती हो कि जो हो चुका, सो हो चुका और जो कुछ घटित हो गया है मैं उसे भूल जाऊँ ! गलत···कतई गलत···! इस प्रकार की उच्छृंखलता न तो मैंने जीवन में बर्दाश्त की है और न किसी की बर्दाश्त कर सकता हूँ।'

फिर एकाएक चुप हो गये। उफ् ! मीना ने कितना अनर्थ कर लिया ! समाज सुनेगा तो क्या कहेगा ! मैं स्वतन्त्र हूँ पर समाज को तो मैं अभी तक अपने विचारों का नहीं बना सका हूँ। वह तो अभी तक वैसा ही कूपमण्डूक और संकीर्ण हृदय वाला है, वह इस प्रकार की घटनाएँ चुपचाप कब सहन कर सकता है ?···

और सहन करे भी क्यों ? यह तो अन्याय है, नियमविरुद्ध है। लड़की के पास यही तो पवित्र थाती होती है जो वह अपने पति को सौंपती है; इसके अलावा उसके पास होता भी क्या है ? और यदि लड़की इसी थाती की भली प्रकार रक्षा नहीं कर सकती तो फिर उसे जीने का भी क्या हक है ? जिस किसी ने भी मीना की इस थाती को अनधिकृत रूप

से छीना है, वह दोषी है, भयंकर अपराधी है, सरे बाजार उसे नंगा कर बेंतों से पीटना भी कम सजा है।

पर दोष मीना का भी तो है। वह क्यों अपने रास्ते से विचलित हुई ? क्या वह अपने कौमार्य की रक्षा भी नहीं कर सकी ? उसमें इतनी भी ताकत नहीं थी कि इस क्षणिक वेग से संघर्ष लेती और उसे परास्त कर अपने को अक्षुण्ण रखती। जिधर से भी, जिस कोण से भी देखता हूँ मुझे इसमें मीना की ही गलती नजर आती है, वही अपराधी है, पापिनी है, सजा की पात्र है।

राय साहब व्यग्र से हो उठे। उन्हें जो यह राय साहब का खिताब मिला है, वह व्यर्थ हो गया। इस मीना ने उनके मुँह पर कालिख पोत दी। अभी तक यह इण्डिया है, यूरोप का कोई नगर नहीं बना है, जहाँ इन बातों पर विचार न किया जाय। यहाँ तो तिल का ताड़ बनाया जाता है। लोगों को बस कोई बात मिलनी चाहिए, फिर तो वे किस प्रकार उसे हवा में उछालते हैं, खिल-खिला कर प्रसन्न होते हैं यह वे अपने जीवन में सैकड़ों बार देख चुके हैं ! उफ् ! क्या मुँह दिखाऊँगा स्टाफ के लोगों को, मिलने-जुलने वाले मित्रों को, स सम्बन्धियों को। लोग मुझे देखकर कहेंगे, 'ये उसी लड़की के पिता हैं जिसके कुँआरपन में गर्भ रह गया है !'

सोचते-सोचते राय साहब परेशान हो उठे। क्या किया जाय ? गर्भ गिरवा दूँ ? हाँ, यही ठीक रहेगा। कपूर को, मिश्रा को या भण्डारी वगैरह किसी को भी कहकर सब ठीक करवा दूँगा। पर···मैं तो कहता हूँ, यह स्थिति आई ही क्यों ? नहीं ! नहीं !! यह सब गलती मीना की है, उसे इसकी सजा मिलनी ही चाहिए। वह कोई दूध पीती बच्ची नहीं है जो···पर रेखा को पता कैसे चला ? पूछा, 'तुम्हें किसने कहा ?'

'मैंने अपनी आँखों से देखा है, कहे कौन !' रेखा धीरे से बोली।

'आँखों से ? आँखों से क्या देखा ? कौन था वह बदमाश ? कहाँ पर कुकर्म करते देखा ? अपनी कोठी में ? बाहर कहीं ?'

रेखा उठकर राय के ठीक पास में आकर बैठ गई, 'मैं कहती हूँ जरा धीरे बोलो, दीवारों के भी कान होते हैं !'

'क्या देखा तुमने, पहले मुझे यह बताओ ?' व्यग्रता से राय बोले।

रेखा धीरे-धीरे पर गोपनीय रहस्यात्मक ढंग से बोली, 'आपको टेली-फोन करने के बाद जब सिर का दर्द असह्य हो गया तो मैं गाड़ी लेकर डाक्टर नारंग के क्लिनिक चली गई थी। पहले भी जब सिर दर्द हुआ था तो मैं वहीं गई थी। उसकी दवा से जल्दी 'रिलीफ' मिलती है। आपने ही तो पहले-पहल चलकर मुझे दिखाया था।...'

'हाँ ! हाँ ! आगे कहो न !'

'तो मैं जब वहाँ पहुँची तो आगे मीना और एक लड़का वहीं बैठे डाक्टर से कुछ धीरे-धीरे कह रहे थे और डा० नारंग हाथ झटक-झटका कर मना कर रहे थे। गुस्सा हो रहे थे। मेरे कानों में जब नारंग की आवाज पड़ी कि 'नो, नो, राय मेरा मित्र है, मैं उसके साथ धोखा नहीं कर सकता, उसे तो मैं सही-सही बात बताऊँगा ही ! ऐसा केस मैं हाथ में नहीं ले सकता।' तो मैं जरा चौकन्नी हुई। आपका नाम जब सुनाई दिया तो मैं समझी, कुछ बात जरूर है, इसलिए सीधे उनके दफ्तर में घुस गई।

'हूँ !' खोये राय ने हुँकारा भरा।

'अन्दर जाकर देखती हूँ कि मीना और महेन्द्र दोनों डाक्टर के सामने बैठे हैं, और...'

'कौन महेन्द्र ?' राय ने बीच में दखल दिया।

'वही मीना का लवर। और कौन ?'

'कौन है यह ?'

'मैं क्या जानूँ, कौन है ? यहाँ पर भी तो कई बार आता रहता है। मुझे तो शुरू से ही उसके रंग-ढंग ठीक नजर नहीं आ रहे थे। मैंने एक-दो बार दबी जबान से मीना को कहा भी, पर वह कब मानने वाली थी। आपने तो उसे सिर पर चढ़ा रखा था।'

'हाँ...हाँ, बात कहो न, फिर क्या हुआ ?'

'होना क्या वह लड़का प्रार्थना कर रहा था कि किसी प्रकार कुछ ले-देकर मीना का गर्भ गिरा दें। पर डाक्टर नारंग इस बात पर कतई सहमत न थे। वे तो बार-बार यही कह रहे थे कि वे मित्र को धोखा नहीं दे सकते।

उनकी 'अब्सेंस' में कुछ नहीं कर सकते...'नजर तिरछी कर राय को देखते हुए रेखा कहती गई।

फिर जरा ठहरकर रेखा बोली, 'और यह तो बाद में पता चला कि मीना को गर्भ महेन्द्र का नहीं है !'

'तो ?'

'किसी हैरॉक नामक अमेरिकन लड़के का है जो पिछले दिनों यहाँ आया था। बीटनिक ग्रुप का लीडर।'

राय साहब जैसे आसमान से नीचे गिर पड़े। उनके सामने जिस प्रकार तथ्य खुलते जा रहे थे वे सर्वथा नवीन और चौंकाने वाले थे। जेब से उन्होंने रूमाल निकाल ललाट पर का पसीना पोंछा, बोले, 'क्या यह सही है ?'

'हाँ ! डाक्टर नारंग के पास कुछ फोटो थे, जिसमें मीना और हैरॉक पास-पास सोये साफ नजर आ रहे हैं। यही नहीं, एक की जाँघ दूसरे के...' और कहते-कहते रेखा ने अलमारी से वे फोटो निकालकर राय साहब के सामने पटक दिए।

राय साहब हक्के-बक्के रह गए। उफ् ! बात इतनी रहस्यमयी और गहरी बन गई है कि उसके फोटो भी खींचे जा चुके हैं। राय ने एक-एक करके वे फोटो देखे, फोटो से साफ लग रहा था कि मीना हैरॉक के पास, बिलकुल नजदीक सोई थी। हैरॉक का हाथ मीना की छाती पर और जाँघ...मीना की जाँघ पर। राय साहब से फोटो न देखे गए, उन्होंने वे फोटो वापस एनवेलाप में डाल दिए और किसी गहरे विचार में डूब गये।

कहीं मीना किसी षड्यन्त्र में तो नहीं फँस गई ? ये फोटो तो इसी बात को स्पष्ट कर रहे हैं। यदि स्वेच्छा से प्रेम या वासनात्मक कार्य किया होता तो वे एकान्त ढूँढते, इस प्रकार सबके सामने न सोते और न फोटो ही खिंचवाते। पर फोटो किसने खींचे और फिर वे डाक्टर नारंग के पास कैसे पहुँच गए। बोले, 'डाक्टर नारंग ने और कुछ कहा था ?'

'मुझे ये फोटो दिये और कहा कि मैं ये फोटो आपको दिखा दूँ और साथ ही यह भी चेतावनी दी कि मैंने जो कुछ भी क्लिनिक में देखा है या

सुना है, उसे जल्दी से जल्दी आपके कानों में डाल दूँ···'

'क्यों ?' राय का संशयात्मक स्वर गूँज उठा।

'इसलिए कि मीना कुछ उल्टी-सीधी आपको पट्टी न पढ़ा दे। डूबता आदमी क्या कुछ नहीं कर गुजरता। वह मुझे बदनाम कर सकती है, डाक्टर नारंग के विषय में उलटी-सीधी बक सकती है और···और···'

'मगर तुम क्यों घबरा रही हो रेखा, बात जो भी होगी सामने आएगी और यह तुम्हें मालूम ही है कि मेरा गुस्सा कितना भयंकर है। अपराधी के टुकड़े-टुकड़े कर फेंक देने में भी मुझे झिझक नहीं होती : मैं अभी नारंग को टेलीफोन कर बात क्लीयर कर देता हूँ।' और वे उठकर टेलीफोन की ओर बढ़ गए।

राय की बात से और उनकी चेतावनी से रेखा का चेहरा भय से पीला पड गया। उसके अन्तर का भय ही उसका गला घोंटने लगा। ऐसा लगने लगा जैसे वह लड़खड़ाकर गिर पड़ेगी। उसने कुर्सी का सहारा लिया और धम्म से उस पर बैठ गई।

राय ने नारंग की कोठी के नम्बर मिलाए तो पता चला कि 'डाक्टर साहब किसी 'इमर्जेंसी केस' में कार से आगरा चले गये हैं, कल शाम तक मुश्किल से लौट सकेंगे।' और टेलीफोन कट गया।

झुंझलाकर राय साहब ने भी टेलीफोन पटक दिया।

उनके दिमाग में ववण्डर उठ रहा था। इस गुत्थी को वे जितनी ही ज्यादा सुलझाने की कोशिश करते वह उतनी ही ज्यादा उलझती जाती थी। वे यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि मीना ने इतना बड़ा कदम कैसे उठा लिया! इस काण्ड से एक मिनट पहले तक वे इस बात पर विश्वास तक करने को तैयार न थे। मीना की चाल-ढाल, उसके व्यवहार-विचार आदि में कहीं पर भी तो ऐसा कुछ नहीं था, जिसके आधार पर भ्रम उठ सके। मीना में वही उन्मुक्तता थी, वही स्वच्छन्दता थी, उसी प्रकार हँसती-खेलती और उनसे बातचीत करती थी।

पर ये फोटो भी तो झूठे नहीं हैं। कहीं पर भी इनके आधार पर बात सिद्ध की जा सकती है। कैमरा तो झूठ नहीं बोलता। मैं चित्रों को कैसे

झुठला दूँ? हैरॉक और मीना का संबंध ये फोटो चीख-चीखकर बता रहे हैं और कह रहे हैं कि इस घटना में सत्यता है। रेखा की बात में बल है। उसे यों ही व्यर्थ में झुठलाया तो नहीं जा सकता।

पर ये फोटो नारंग के हाथ कैसे लगे? उसने इस विषय में इतनी अधिक रुचि क्यों ली? ये फोटो खींचे किसने? कब और कहाँ खींचे? क्यों खींचे, कैसे खींचे?—राय साहब सोचते जा रहे थे और झुंझलाते जा रहे थे। इतना बड़ा काण्ड घटित हो गया, नारंग तक फोटो पहुँच गए और वह सोता ही रहा। उसे तो आज भी पता न चलता यदि रेखा उसे यह सब न बताती।

'पर नारंग ने रेखा को ये फोटो क्यों दीं? मुझे भी तो बुलाकर दे सकता था। शायद मैं न मिला होऊँ और संयोग से रेखा आज उसके क्लिनिक पहुँच ही गई थी तो फिर रेखा को देना ही तो चाहिए था। वास्तव में नारंग कितना शरीफ है, सच्चा दोस्त है, उसने बात उड़ाई नहीं, बल्कि ढककर रखी। चुपचाप रेखा को बता दी और फोटो उसके हवाले कर दिए। वाकई नारंग एक अच्छा मित्र है, सज्जन पुरुष है, यह उसका एहसान है मुझ पर···' और राय उसके प्रति कृतज्ञता से भर गया।

पर तभी एकाएक उन्हें मीना की याद आई। जल्दी से बोले, 'रेखा!'

रेखा अन्दर चली गई थी, वापस आती हुई बोली, 'जी।'

'मीना कहाँ है?'

'मुझे क्या मालूम कहाँ है? मुझे कौन-सी पूछकर जाती है या आने पर सूचना देती है।' हाथ झटकते हुए रेखा ने उत्तर दिया।

राय साहब ने घड़ी पर नजर डाली। सात बजकर अठारह मिनट हुए थे। इस समय तक तो मीना आ ही जाती है। शाम की चाय पिता-पुत्री दोनों साथ लेते थे और बहुत ही कम अवसरों पर इसमें नागा होता था। पर आज अभी तक मीना नहीं लौटी थी, उनका मन चिन्ता में डूब गया।

कहीं मीना घबराकर आत्महत्या न कर ले और सोचते ही उनका हृदय आशंका से भर गया। तो क्या होगा! कैसे मुँह दिखायेंगे वे लोगों

को ? उनकी मृत पत्नी की अन्तिम निशानी—मीना। सोचते-सोचते राय साहब को दिवंगता पत्नी की याद हो आई और आंखों की कोर में हल्के-से आँसू छलछला आये।

क्या हो गया, बच्ची है। इस उम्र में अच्छे-अच्छों का पाँव फिसल जाता है। उन्हें अपना स्वयं का बचपन और किशोरावस्था याद आई। धीरे-धीरे उनकी बीती हुई यौवन की घटनाएँ एक-एक कर साकार होने लगीं। किन-किन तरीकों से उन्होंने प्रेम के फल चखे हैं। प्रेम के चक्कर में उन्होंने क्या-क्या नहीं किया। घरवालों का, पत्नी का और मित्रों तक का विरोध उन्होंने सहा, पर वे प्रेम के क्षेत्र में आगे बढ़ते गये। जो भी स्त्री उनके दिल पर चढ़ गई, उसे हस्तगत करके ही रहे। क्या नहीं किया उन्होंने इस क्षेत्र में।'

फिर इसमें मीना का क्या दोष है ? इतनी ही तो गलती है उसकी कि वह अपने-आप से बेखबर रही। तभी तो लोगों को फोटो खींचने का मौका मिल गया। जो काम छिपकर किया जाता है, मीना ने उसे चौड़े में आ जाने दिया। जिस कार्य को दिल के भीतर सात तालों में बन्द करके रखा जाता है, मीना ने उसे ही सरे आम फैला दिया और यही तो गलती हुई उससे। पर गलती किससे नहीं होती, कौन माई का लाल दूध का धोया है जो सर्वथा पाक हो। और इस समय मीना पर क्या गुजरती होगी? वह कितने-कितने आघात सह रही होगी। चाहिए तो मुझे यह था कि मैं उसकी सहायता करूँ, दुःख में मददगार बनूँ, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसकी 'हैल्प' करूँ और मैं ही उसे इस समय मदद न दूँगा तो वह बच्ची क्या करेगी ? कौन-सा रास्ता उसके पास रहेगा—और सोचते-सोचते राय साहब का मन मीना के प्रति करुणा से भर गया।

तभी उन्हें गेट में से होकर अन्दर आती हुई कार की आवाज सुनाई दी। मीना ही थी। राय साहब के उड़ते हुए विचारों पर यकायक ब्रेक-सा लग गया। उन्हें दुःख इसी बात का हो रहा था कि उन्होंने उसे जो शिक्षा दी थी, वह व्यर्थ गई। मीना को जिस साँचे में वे ढालना चाहते थे, उनका वह स्वप्न एकाएक ही ढहकर चूर-चूर हो गया। उन्हें आज पहली बार धक्का

लगा। कई कुमारियों और परिणीताओं का उन्होंने कौमार्य भंग किया था, ससर्ग किया था, पर कोई सेंध लगाकर उनके घर में ही घुस आएगा, यह उन्हें भान ही नहीं था। इस प्रकार की तो उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी।

सिद्धान्ततः वे यह मानते थे कि कौमार्य एक पवित्र धरोहर है जिसकी रक्षा का जिम्मा माँ-बाप और लड़की पर है और इन तीनों का यह फर्ज है कि वे इस धरोहर की रक्षा करें और जो इसका नियमानुकूल मालिक है, समय आने पर उसे यह सौंप दे।

पर मीना ने बीच में ही इस धरोहर के प्रति गद्दारी की है। क्षणिक सुख के लिए मीना ने उनके विचारों को ठेस पहुँचाई है। 'क्षण-भर पहले की करुणा, मीना के प्रति लाड़-भावना एकाएक तिरोहित हो गई और उस जगह घृणा भर गई। उस बदमाश के प्रति, जिसने सेंध लगाई, समाज के प्रति, जो संकीर्ण और रूढ़िग्रस्त है तथा मीना के प्रति जिसने अपने-आप को अपवित्र किया, स्वयं को धोखा दिया…

कार से उतर नीची गर्दन किये, मीना दा   नें से होकर अपने कमरे की ओर जाने लगी कि उसके कानों में राय सा का कठोर स्वर गूँज पड़ा, 'मीना ?'

मीना के पाँव वहीं ठिठक गए। पिताजी के कठोर स्वर ने उसके हृदय में अनजाने ही भय भर दिया। नीची गर्दन किये ही वह पिताजी के सामने आकर खड़ी हो गई।

राय साहब ने एक क्षण के लिए मीना के चेहरे को देखा और उस क्षण में ही उन्होंने जान लिया कि रेखा ने जो कुछ कहा है, वह अक्षरशः सत्य है। राय साहब ने देखा, मीना का चेहरा भय से सफेद पड़ गया है, उसके गालों पर की ललाई जैसे लुप्त हो गई है, आँखों में गहरा विषाद उतर आया है और उसके चारों ओर हल्की हल्की कालिमा छा गई है। हमेशा मुस्कराता रहने वाला चेहरा आज फक् पड़ा हुआ है, लरजते होंठ भय से थरथरा रहे हैं।

'नीचे बैठ जाओ !' स्वभावतः ही राय साहब का स्वर कठोर हो

गया।

चुपचाप, निःशब्द मीना पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गई।

राय साहब अन्दर ही अन्दर उबलते रहे, मगर ऊपर से यथासंभव शान्त बने रहे। टेबल पर पड़े वे फोटो मीना के आगे सरका दिये। पूछा, 'यह क्या है ?'

सब कुछ जानते-बूझते भी मीना निःशब्द बनी रही, कुछ न कहा।

'मैं कहता हूँ, इसे उठाओ, देखो और बताओ ये क्या है ?' गंभीर स्वर और तीव्र हो उठा।

काँपते हाथों से मीना ने वे फोटो उठाये। आँखों के आगे अंधेरा-सा छा गया, खोलना चाहने पर भी वे फोटो एनवेलाप से निकल न सके। होंठ थरथराये और वह इतना ही कह सकी, 'इसमें मेरा कोई दोष नहीं ?···'

'तड़ाक्' से एक थप्पड़ मीना के गाल पर जा पड़ा, 'तुम्हारा नहीं तो यह दोष मेरा है ? मैंने यह सब किया है ! कुकर्म···छल···धोखा···फरेब···' राय साहब थर-थर काँपते हुए चीख से पड़े।

थप्पड़ पड़ते ही मीना की आँखों से चिनगारियाँ-सी छूट पड़ीं। एकाएक तो वह कुछ सोच ही न सकी जैसे उसके [illegible]ग ने काम करना बंद कर दिया हो। संज्ञाशून्य-सी वह पत्थर की प्रतिमा [illegible] तरह जड़ बनी रही।

पर धीरे-धीरे वह चैतन्य हुई तो उसका गा[illegible] चुनचुना आया। गाल पर जैसे सैकड़ों चींटे सरक रहे हों और उसका माँस नोच-नोचकर खा रहे हों, कुछ ऐसा ही अनुभव उसे हुआ। जीवन में पहली बार उसका इतना बड़ा अपमान हुआ था।

पिता—जो उसे मारना तो दूर, आज तक कठोर शब्द तक न बोले थे, मक्खन की तरह उसे पाल रहे थे, उसकी किसी भी बात की अवहेलना नहीं हुई। उसने जिस बात को भी होंठों से निकाला वह पूरी हुई। अभाव और दुःख क्या होता है, यह तो उसने जीवन में जाना ही नहीं था। वही पिताजी आज थप्पड़ लगा बैठे ! उफ् ! इस अपमान से तो मर जाती, तो अच्छा था। उसकी आँखों में आँसू छलछला आए, होंठों से रुलाई फूट पड़ी। पर होंठ पर होंठ दबाकर उसने जबरदस्ती से वहीं रोक दिया।

'मैं पूछता हूँ ये फोटो किसके हैं ?' राय साहब का स्वर गरजा।

'मेरे हैं।' मीना ने पहली बार स्वीकार किया।

'और मैंने जो सुना है, वह कहाँ तक सही है ?'

मीना चुप रही। उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएं बह निकलीं। क्या जवाब दे वह। उसने झरता हुआ चेहरा ऊपर उठाया।

मीना के गाल पर थप्पड़ पड़ने से हाथ की पाँचों अँगुलियाँ ज्यों की त्यों उभर आई थीं। सारा गाल लाल हो चुका था। उसकी रोती हुई आंखें और सिसकते होंठों ने राय साहब के दिल को पानी-पानी कर दिया। उन्होंने मीना का हाथ अपने हाथों में ले लिया और आँखों में आँसू छलछला आए। बोले, 'क्या तुम आज नारंग के क्लिनिक में गई थी ?'

गर्दन हिलाकर मीना ने हामी भरी।

'साथ में कौन था ?'

'महेन्द्र !' मीना ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। उसने अब तक अपने बहते हुए आँसुओं पर नियन्त्रण कर लिया था। हृदय को वह दृढ़ कर चुकी थी कि इस प्रकार वह घुटने [illegible]केगी। सौतेली माँ के षड्यन्त्र का शिकार इतनी आसानी से नहीं होगी।

'कौन महेन्द्र !'

'वही जो यहाँ आता-जाता रहता है, डाक्टर नारंग का पुत्र, मेरी क्लास में पढ़ने वाला, और कौन ?'

राय साहब आश्चर्यचकित रह गए। वे हैरान थे कि मीना के स्वर में एकाएक इतनी दृढ़ता कैसे आ गई ? अन्दर से वे पुलकित भी हुए कि आखिर है तो मेरा ही खून, दृढ़ नहीं होगा तो क्या लिजलिजा होगा। पर ऊपर से वे उसी प्रकार कठोरता का आवरण ओढ़े रहे। बोले, 'क्यों गए थे नारंग के क्लिनिक में ?'

मीना दो मिनट बिलकुल चुपचाप बैठी रही। फिर धीरे-से बोली, 'क्या यह बात मुझे पूछनी बहुत जरूरी हो गई है ?'

'तो और कौन देगा उत्तर ?' राय साहब बीच में ही दखल देते हुए बोले।

'शायद रेखा अम्मा ने सब कुछ तो कह दिया होगा आपको। क्या कसर रखी होगी उसने पहले से ही इस प्रकार का वातावरण बनाने में···'

'मीना !' गरजते हुए-से राय साहब बोले, 'शायद तुम्हें ध्यान नहीं है कि तुम क्या कह रही हो !'

मीना को एक बार तो गुस्सा आया कि वह सब कुछ साफ-साफ पिताजी को कह दे। उन्हें जो रेखा के प्रति अगाध विश्वास है उसका कच्चाचिट्ठा ज्यों का त्यों खोलकर रख दे। उन्हें बता दे कि जिस स्त्री को वे दुलार दे रहे हैं, वही सर्पिणी है। जिस पर वे इतना विश्वास कर रहे हैं, वही उनके लिए सच्ची विश्वासघातिनी है : रेखा···मीना के होंठ घृणा से बिचक गए और आँखों से अविश्वास की लपट छूट पड़ी। जो नारंग की गोद में गिर कर अपने सिर-दर्द का इलाज करा रही थी, जो···

'मुझे जवाब चाहिए मीना !'

मीना दो मिनट ज्यों की त्यों अविचल बैठी रही। बोली, 'मेरा मुँह न खुलना ही ठीक है। आप जो भी ठीक समझें, वही ठीक है। रेखा अम्मा···'

न मालूम कहाँ से रेखा बीच में [illegible]र खड़ी गई। उसका चेहरा तमतमा रहा था, जैसे किसी ने भट्ठी में [illegible] दिया हो। तमककर बोली, 'हां ! हाँ !! झूठी-सच्ची दो-चार बातें बनाकर कह क्यों नहीं डालती ? अपने पाप पर पर्दा डालने के लिए कुछ न कुछ तो कहा ही जा सकता है, न हो तो महेन्द्र को भी बुला लो जो तुम्हारी बात का समर्थन कर दे···' और उसकी आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे।

राय साहब हतबुद्धि से ठगे से रह गए। पत्नी की आँखों से आँसू गिरते देख वे चुपचाप न रह सके। बोले, 'पर तुम क्यों रो रही हो ? तुम्हें किसने क्या कहा है ?'

'कहते कौन-सी देर लगती है? आजकल की शिक्षा जो न सिखावे, वह थोड़ी है। अपना पाप मेरे सिर पर थोपती हुई मुझे दुश्चरित्रा बना सकती है। कुलटा और व्यभिचारिणी कह सकती है। उस समय मैं कहाँ जाऊँगी··· क्या करूँगी···' और उसका गला भर आया, रह-रहकर गले से हिचकियाँ आने लगीं।

'पर केवल किसी के कहने से तो कुछ नहीं हो सकता न ! और मीना कैसे कह देगी?···' राय साहब पत्नी को सान्त्वना देते हुए बोले।

रेखा कुर्सी से एक तरफ हटकर खड़ी हो गई। अपने दुपट्टे से वह लगातार आँसू पोंछती जा रही थी और आती हुई रुलाई को रोक रही थी।

'तुम भीतर जाओ। मुझे मीना से कुछ पूछने दो।'

रेखा मीना पर उपेक्षा भरी दृष्टि डालती हुई विजय मद में गर्वित-सी सिसकती-सिसकती भीतर चली गई।

'मीना !'

मीना ने ऊपर चेहरा उठाया। वह आश्चर्यचकित थी रेखा के व्यवहार पर। अभी तक उसने पुस्तकों में ही 'त्रियाचरित्र' के किस्से पढ़े थे या सुने थे पर आज जो उसने प्रत्यक्षतः देखा वह उन सबसे बढ़कर रोमांचकारी था, आश्चर्यजनक था। उसकी आँखों में सैकड़ों प्रश्न तैर रहे थे।

'तुम रेखा के बारे में कुछ कहना चाह रही थीं ?' नया पैंतरा बदलते हुए मृदु स्व[illegible]ाय साहब ने पूछा।

एक बार [illegible] मन हुआ कि सब कुछ कह दे। उसने जो कुछ भी देखा है वह सत्य-सत्य पिता के सामने कह दे। पर, और इस 'पर' पर आकर वह ठिठक गई। उसके पास प्रमाण क्या है ? किन आधारों पर वह इस बात को सिद्ध कर सकेगी ? और अब तो यदि वह कहेगी भी तो उसकी कौन सुनेगा ? पिताजी भी यही समझेंगे कि डाह, ईर्ष्या या नफरत के कारण झूठा लांछन लगाया जा रहा है।

'बोली नहीं मीना ?' राय साहब ने प्रश्न दुहराया।

'मुझे कुछ नहीं कहना पिताजी। न्याय यहाँ नहीं मिल सकता। इसका न्याय तो ईश्वर के दरबार में ही मिल सकेगा।' और कहती-कहती रेखा उठ खड़ी हुई।

मीना को उठते देख राय साहब बोल पड़े, 'अब तो न्याय और ईश्वर शब्द प्रिय बन गये हैं।' फिर पास आकर सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, 'मीना! इस प्रकार घबराने और हिम्मत हारने की बात नहीं है। जो कुछ

तूने गलत किया···'

मीना चमक पड़ी। बीच में ही बोल उठी, 'पर मैंने गलत किया क्या है जो···'

'तो क्या अब भी दिखावा बाकी है? यह इतने लाड़-प्यार और स्वच्छन्दता का ही फल है कि तुमने मेरी नाक काट डालने की जुर्रत की। रेखा ठीक कह रही थी कि जवान लड़कियों को इतनी आजादी देना ठीक नहीं है पर मैं ही तरह देता रहा, यही कहता रहा कि नहीं, मेरी मीनू ऐसी नहीं। पर···' एक ही सांस में राय साहब इतना सब कुछ कह गए।

मीना बोली नहीं, चुपचाप चल दी।

राय साहब उसकी यह ढिठाई सहन न कर सके। वे तो इसके भले के लिए कह रहे हैं और इसे परवाह ही नहीं हैं। चीखकर बोले, 'यह बेहयाई अब नहीं चलेगी, समझी, बहुत दिनों तक मटरगश्ती की है। बिना पूछे इस कोठी से बाहर कदम रखा तो टागें चीरकर रख दूँगा और उस कुत्ते महेन्द्र को इधर देख लिया तो शूट कर दूँगा···'आगे के शब्द उनके मुँह में ही खो गए। गुस्से में वे थर-थर काँप रहे थे। एक तो मीना की गलती और उस पर इतनी ढिठाई दिखाना वे बर्दाश्त ही न कर सके और कहते-कहते धम्म से कोच में जा पड़े।

जाती हुई मीना ने सुना। यह आवाज उसके पिता की ही थी जो उस पर उसकी इच्छा पर सब कुछ कर गुजरने को तैयार थे। पर आज···और तूफान के वेग की तरह दौड़कर कमरे का दरवाजा खोल धम्म से पलंग पर जा पड़ी। आँखों से लगातार आँसू की धाराएँ बह रही थीं और दिमाग में बवण्डर-सा उठ रहा था।

घर आते समय उसके दिमाग में पिता का जो चित्र था वह इस व्यवहार से पुंछ गया। उसे विश्वास था यदि उससे गलती हो भी गई है तो भी पिता उसे दुलार देंगे। चाहे पूरी दुनिया उसके विपरीत हो जाय पर पिता कभी उससे विमुख नहीं होंगे। विपत्ति में उसे धैर्य बंधाएंगे और इस मुसीबत से भी किसी न किसी प्रकार उबार ही लेंगे।

पर आज उसने पिता का जो रूप और व्यवहार देखा वह कल्पना के सर्वथा विपरीत था।—वे तो इस प्रकार व्यवहार कर रहे थे मानो मैंने कोई मनुष्य मार दिया हो और कोर्ट में खड़े-खड़े मुझसे जिरह कर रहे हों। खोद-खोदकर बातें पूछना और मुझसे ऐसी बातें पूछना, जो नियम-विरुद्ध हैं, क्या स्पष्ट करता है? यही न कि मुझ पर उनका विश्वास नहीं रहा है। मैंने विश्वासघात किया हो···धोखा दिया हो—और उसकी आँखों से आँसू की एक लहर बह गई।

आँखों की उस धारा में उसे माँ का चित्र दिखाई दिया। करुणामयी माँ का, जिसने रूठकर उससे नाता तोड़ लिया था और वहाँ चली गई थी जहाँ जाकर आज तक कोई लौट नहीं सका है। आज यदि मेरी माँ जीवित होती तो क्या मुझे इस प्रकार जलील करने देती? मुझे सुबकती देखकर भी क्या उसका दिल न पसीज जाता? दौड़कर मुझे छाती से न चिपका लेती! पर कौन दे मुझे दुलार? कौन मेरे सिर पर स्नेह का हाथ फेरे? कौन मेरी सही बात सुने? किससे मैं अपना दर्द कहूँ। अपनी सच्ची बात किसके सामने खोलकर रखूँ? मेरी सुनेगा कौन? ··· पता चला कि मैं अकेली हूँ! निपट अकेली! ये जो सभी दिखाई दे ··· है, मुझसे जो हमदर्दी दिखाते थे, केवल स्वार्थ के कारण थे। इनमें वास्तविक हितैषी मेरा कोई नहीं है। अरे! जब बाप ही बदल गया तो दूसरा कौन है जो मेरी आँखें पोछे, मुझे सान्त्वना दे!—और उसकी आँखों से आँसुओं की लहर बह चली।

रेखा कहने को तो मेरी माँ बनती है, सच्चरित्रता और पातिव्रत्य धर्म की दुहाई देती फिरती है पर उसके अन्दर कितनी नफरत और कितना जहर भरा है, मैं आज जान सकी हूँ। आज तक मैंने उसमें भी अपनी माँ के दर्शन करने की कोशिश की थी। यद्यपि वह समवयस्क सी ही थी, मुश्किल से दो-चार सालों का फर्क होगा, पर फिर भी मैं उसे 'माँ' के सम्बोधन से ही पुकारती रही। उसकी हर आज्ञा को मानना अपना कर्तव्य समझा। पर आज उसने जो पार्ट 'प्ले' किया वह आश्चर्यजनक होने के साथ-साथ अकल्पित भी था। पिताजी ने उसे सिर आँखों पर बिठा रखा

है, उसे पवित्रता की देवी मानते हैं, भारतीय नारी की कल्पना उसमें करते हैं और बात-बात में उसकी दुहाई देते हैं। पर यही रेखा दुमुही सर्पिणी है, यह पिताजी ने कब जाना ? एक तरफ पतिव्रता बनने का ढोंग रचती है और दूसरी तरफ डाक्टर नारंग की गोद में पड़ी-पड़ी सिर का इलाज कराती है। वस्तुतः त्रियाचरित्र में माहिर है यह औरत। मेरे घर पहुँचने से पूर्व ही पिताजी को इस कदर भरमा दिया, इस प्रकार से सच्ची-झूठी मनगढ़ंत कहानी बनाकर बहका दिया कि यदि मैं इसकी सही-सही बात बताती भी तो मेरी बात पर विश्वास न किया जाता। यही समझा जाता कि मैं ईर्ष्या के वश झूठ बोल रही हूँ, माँ जैसे पवित्र नाम पर दुश्चरित्रता का कलंक लगा रही हूं और उसने पिताजी के सामने, मेरे सामने जिस कदर से रो-रोकर अपनी पवित्रता की दुहाई दी और मुझे जलील किया, वह तो मेरे डूब मरने लायक थी। उफ ! यह माँ है···और पिताजी भी खिलौने बने इसके हाथों में खेल रहे हैं ! पर मैं दोष किसको दूँ ? रेखा को, पिताजी को या अपने भाग्य को ! वस्तुतः यह मेरे भाग्य का ही तो दोष है कि मुझे यह सब कुछ देखना पड़ा। ओह ! क्या करूँ? इस प्रकार की जलील जिन्दगी जीने से तो बेहतर है, फाँसी खा लूँ, अपने [illegible] अन्त कर दूँ ?···और उसके मुँह से एक जोरदार रुलाई फूट पड़ी !

वस्तुतः यह दोष मेरा ही है कि मैं इतनी सस्ती बन गई। महेन्द्र को मैंने भला समझा और उसके सामने सब कुछ खोलकर रख दिया। पर मुझे यह ध्यान नहीं था कि महेन्द्र की नजर मुझ पर या मेरे प्रेम पर नहीं बल्कि मेरे पिता के धन पर है। मैं उसके मोहक व्यक्तित्व में खिंचती ही चली गई, जिस प्रकार कोई अजगर की साँस से खिंचकर उसके मुँह में जा पड़ता है। वह मेरा मित्र नहीं, शत्रु है जिसने मेरी जिन्दगी को चौपट कर दिया। मुझे विश्वास था कि इस संकट के समय वह मेरी सहायता करेगा और इसलिए उसके कहने पर उसके साथ नारंग के क्लिनिक में गई। पर मुझे क्या पता था कि यहाँ सर्वत्र जाल बिछा हुआ है और चारों तरफ मुझे फँसाया जा रहा है। और यह नारंग···दुष्ट···कमीना···मानवता

का शत्रु···रेखा का यार···पिता के प्रेम का विश्वासघाती, जो मुझे बहू इसलिए बनाने को तैयार था कि मेरे पिता के पास लाखों की जायदाद है, मैं उनकी इकलौती बेटी हूँ, और इस प्रकार वे उस जायदाद को हड़पना चाहते थे। उसके दिमाग में डॉक्टर नारंग की पैशाचिक हंसी फूट पड़ी···पच्चीस हजार रुपये···मेरी इज्जत के पच्चीस हजार रुपये, अपना मुंह बंद रखने के पच्चीस हजार रुपये···और जब पिता ऐसा प्रस्ताव रख रहा था, तो बेटा खामोश बैठा था, चुपचाप सुनता रहा था। एक बार भी तो विरोध नहीं किया, हल्का-सा भी तो प्रतिवाद नहीं किया। इससे तो यह काँच की तरह साफ था कि बाप-बेटे दोनों मुझे फंसाना चाहते थे, उनकी नजर मेरी जायदाद पर थी और इस प्रकार मुझे 'स्मगल' करना चाहते थे। महेन्द्र···घृणा और नफरत का जीता-जागता तावूत—और घृणा से मीना के नाक-भौं सिकुड़ गए।

और इधर वह बेचारा आनन्द, जिसने मुझे बार-बार सावधान किया, पर मैं सँभली नहीं। उसने एक-दो बार नहीं सैकड़ों बार कहा कि 'महेन्द्र अच्छा युवक प्रतीत नहीं होता है' पर मैं हमेशा यही [illegible]ती रही कि यह आनन्द नहीं, उसकी नफरत बोल रही है, महेन्द्र के प्र[illegible] ईर्ष्या बोल रही है—और मैं उसे तरह देती रही।

वस्तुतः आनन्द मनुष्य नहीं, देवता है जो वास्तविक रूप में पुरुष कहलाने के योग्य है। मैं पश्चिम के अन्धानुकरण में बहती ही जा रही थी, मुझे कुछ भान भी तो नहीं था और वह हमेशा इसका विरोधी रहा, बार-बार मुझे सावधान करता रहा, पर मैं संभली नहीं। बीटनिक आये और मैंने उसे चलने को कहा तो वह साफ मना कर गया। मना ही नहीं, उसने इन बीटनिकों की वह धज्जियाँ उड़ाईं, इनके ड्रग्स और आउट्स की वह व्याख्या की कि मैं सहम गई। पर मैंने ध्यान दिया भी तो नहीं। मैं इसे केवल एकांगी पक्ष मानती रही। पर आज जब मैं इन सब घटनाओं का विश्लेषण करती हूँ तो पता चलता है कि आनन्द कितना गहरा है, बात के मर्म को पहचानने की कितनी अपूर्व क्षमता है उसमें ! वह छिछला

नहीं है, इन राग-द्वेषों से ऊपर है। इन्सान ही नहीं, इन्सान का आदर्श रूप है।

पर मैंने हमेशा उसकी उपेक्षा की। उसने जो भी बात कही, उसका डटकर विरोध किया, जिस काम के लिए भी उसने मना किया, मैं वही काम करने में आनंन्द लेती रही।—और पिछले दिनों की घटना मीना के दिमाग में कौंध गई।

यही करीब चार साढ़े चार का समय था। मैं बगीचे में टहल रही थी। उस दिन मैं जरा मूड में थी, मैंने निश्चय कर लिया था कि महेन्द्र से विवाह कर जीवन को सुखमय बना सकूंगी। इसी वर्ष विवाह कर लूँगी और कॉलिज छोड़ दूंगी। कालेज से मैं करीब-करीब ऊब भी तो गई थी।

इसके साथ एक और बात थी। मुझे कुछ ऐसा लग रहा था जैसे मुझे गर्भ ठहर गया है। मासिक धर्म नियमित हुआ नहीं, और इस प्रकार डेढ़ महीना बीत गया था, इसलिए भी मैं झटपट विवाह कर लेना ही चाहती थी। इसके अतिरिक्त जब मैंने मिसेज सरन के सामने अपनी शंका रखी, तो उसने भी स्वीकार किया कि मेरे शरीर पर गर्भ के ही आसार हैं। मैं उस समय घबराई भी, ललाट पर पसीने के छोटे-छोटे बिंदु छलक आए थे, उस समय भी मिसेज सरन ने सलाह दी थी कि मैं महेन्द्र से शादी कर लूँ। मिसेज सरन से क्या छिपाया था, उसे तो मैं राई-रत्ती बात बताती रहती थी।

तो उस दिन जब मैं टहल रही थी तो आनन्द आया। वही वेश, वही आकृति, चेहरे पर वही गंभीरता और भोलेपन का भाव। उसने शिष्टतावश नमस्कार किया पर मैंने जवाब भी नहीं दिया, मैं तो अपनी ही धुन में थी, अपने-आप में ही मग्न थी।

आनन्द ने अपने-आपको शायद अपमानित महसूस किया और लौटने लगा तो मुझे ख्याल आया। मैंने कहा, 'वापस कहाँ चल दिये। बैठिए न!'

वह मुड़ पड़ा। चेहरे पर क्षोभ का कोई चिह्न न था। पास आता हुआ बोला, 'शायद आप किसी ख्याल में मग्न थीं, इसलिए वापस जा रहा था।'

वह पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गया। बोला, 'बीटनिक चले गये?'

मैंने कहा, 'हाँ! आए भी और चले भी गए। पर आप तो एक बार भी उनके प्रोग्राम में नहीं गए न!'

वह बोला, 'कोई प्रोग्राम होता तो जाता न? वे तो खुद भ्रमित हैं, लक्ष्यभ्रष्ट हैं, हमें क्या लक्ष्य देते। बहके हुए और यौन-क्षुधा से पीड़ित हैं, उच्छृंखल, पिपासु...'

बात मुझे लग गई। बोली, 'तुम जितने छिछले हो, शायद वैसा ही सभी को समझ रहे हो।' सच! उस समय मुझ पर हैरॉक का नशा सवार था, इसलिए कई बातें ऐसी भी जो मुझे नहीं कहनी चाहिए थीं, मैंने उन्हें कह दी थीं। मैंने कहा था, 'तुम खुद भूखे हो, कायर और कामकला से हीन हो, इसीलिए सज्जनता का यह लबादा ओढ़े फिर रहे हो। दूसरों पर टीका-टिप्पणी करने से पहले अपने गरेबां में हाथ डाल कर देख लेना ज्यादा उचित होता है आनन्द बाबू!' और कहकर मैंने नफरत से एक ओर थूक दिया था।

बात बड़ी तेज थी और पैनी भी। आनन्द के कलेजे में चुभी भी और वह बिना कुछ कहे चला गया था, निःशब्द, निस्पन्द और मैं टुकुर-टुकुर उसका जाना देखती रही। एक बार भी अपने शब्दों पर माफी नहीं मांगी, उनसे रुक जाने के लिए नहीं कहा।

उफ! कितना गजब कर दिया। उस देवता पुरुष को क्या-क्या कह डाला। मैं अपने जोम में कितनी लक्ष्यभ्रष्ट हो गई थी। उफ! और सोचते-सोचते उसकी आंखों से आंसू की बाढ़-सी बह चली, जैसे कि वे आंसू आंखों की राह निकलकर आनन्द के प्रति पश्चात्ताप कर रहे हों।

मीना उठी। कमरे के बाहर आई। देखा तो सारा आकाश तारों से भर गया था, और धरती की गोद में अंधेरा सिमट आया था। आज उसके दिल में भी तो अन्धेरा ही अन्धेरा भरा पड़ा था। जिधर भी नजर

जाती उसे अंधेरा ही नजर आता। महेन्द्र गया, आनन्द गया, कॉलेज की सहेलियाँ गईं, पिता का दुलार गया। सभी की नजरों में वह तिरस्कृता है, कौन उसे धैर्य दे ? कौन है उसका ? माँ धरती, फट जा जिससे कि उसमें मैं समा सकूँ···

मीना अपने कमरे से निकल नीचे लॉन में आ गई। उसकी नजरें ऊपर उठीं, तो देखा कि लॉन के एक तरफ बने राधाकृष्ण के मंदिर में अभी तक दीप जल रहा है। पुजारी शायद पूजा करके चला गया था। यह छोटा-सा मंदिर उसकी कोठी में ही एक ओर बना था, जिसकीपूजा पुजारी आकर कर जाता था।

उसे ऐसा जान पड़ा, मानो श्रीकृष्ण उसे बुला रहे हैं। इस दुःख में वही धैर्य दे सकते हैं। अशरण शरण···ईश्वर ही उसके रक्षक हैं। वह नास्तिक थी, पूजा का और पत्थर की मूर्तियों का वह उपहास करती थी, पर आज एकाएक ऐसा लगा, मानो वह सर्वात्मना आस्तिक हो गई है। दौड़कर राधाकृष्ण की मूर्ति के सामने धड़ाम से गिर पड़ी; नाथ ! आप तो अन्तर्यामी हैं, घट-घट की जानने वाले हैं, फिर बताइए, मैंने क्या पाप किया ? कौन-सी अनीति की राह पकड़ी जिसका फल मुझे भोगना पड़ रहा है।···

मीना की आंखें आँसुओं से तर हो गई थीं। चारों तरफ छाए अन्धेरे में श्रीकृष्ण के चरणों में उसे कुछ सान्त्वना मिली। उसके जलते और उफनते हृदय को शान्ति-सी मिली। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे श्रीकृष्ण उसे हाथ हिला-हिलाकर बुला रहे हों।

'प्रभो ! मैं इस नफरत की दुनिया में जिन्दा नहीं रहना चाहती ! कल फिर सूर्योदय होगा और मेरा पाप जो आज घर तक ही सीमित है, कल तक पूरी दिल्ली में फैल जायगा, पिताजी मुझे देखकर घृणा से भर उठेंगे, रेखा मुझे जली-कटी सुनायेगी और शायद पिताजी को कहकर मुझे घर में कैद भी कर दें। यों भी पिताजी ने घर से बाहर निकलने पर टाँगें चीर देने की धमकी दी है, फिर मैं कैसे जिन्दा रह सकूँगी।

अन्तर्यामी ! नाथ !! दीन बन्धु !!! तू ही बता ! मैं अपना मुँह कैसे दिखाऊँगी।

'इससे तो अच्छा है मैं यमुना में डूबकर मर जाऊँ ? इस प्रकार की जिन्दगी जीने से तो यह लाख दर्जा बेहतर है।'—उसने आँखें उठाकर देखा, लगा जैसे सामने श्रीकृष्ण खड़े-खड़े मुस्करा रहे हैं और उसकी बात का समर्थन कर रहे हैं···

वह वहीं पड़ी रही। कमरा उसे काटने को दौड़ रहा था, वहाँ, उस भगवान के दरबार में उसके हृदय को वास्तविक शान्ति मिल रही थी··· वह उसी प्रकार प्रभु के चरणों में लेटी रही···रोती रही···प्रार्थना करती रही।

१२

आनन्द इन दिनों अपने आप में अस्त-व्यस्त सा था। वह कई दिनों से सोच रहा था कि अब एक ही मकान में रहना संभव नहीं है। रोज बचाते-बचाते भी मिसेज भारद्वाज और आनन्द आमने-सामने हो ही जाते और उस समय दोनों ही हड़बड़ाकर एक-दूसरे से कन्नी काटकर निकल जाने की कोशिश में रहते। आनन्द धीरे-धीरे यह भी महसूस करने लगा था कि मिसेज भारद्वाज येन केन प्रकारेण उसे फाँसना चाहती है, इसलिए वह दिन का अधिकांश हिस्सा या तो पार्क में बिता देता या फिर किसी लाइब्रेरी में किताबें टटोलने में दिन गँवा देता। काफी अँधेरा पड़े घर लौटता। भोजन मार्ग में ही कर लेता और आते ही अपने कमरे में जा

पड़ जाता। पढ़ने और नोट्स लेने की तो उसे कत्तई इच्छा नहीं रहती।

धीरे-धीरे उसे लग रहा था कि वह चुकता जा रहा है। उसका स्वत्व अपने-आप बिखरता जा रहा है। दिमाग किसी अज्ञात उलझन में उलझा रहता और अपने-आपको थका-थका-सा अनुभव करता। पहले जो 'रिसर्च' के प्रति उसकी उमंग थी, वह धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। अधिकतर उसका समय एकान्त में ही बीतता। पहले भी वह गंभीर था पर उसका मन प्रफुल्ल था पर अब तो मन रीता-सा हो गया और शायद ही उसके चेहरे पर मुस्कराहट आती थी।

ऐसी स्थिति भी जब असह्य हो गई तो उसे इसका हल इसी में दिखाई दिया कि वह किसी अलग कमरे में जाकर रहे, जो डाक्टर साहब की कोठी से दूर हो। उसकी आवश्यकताएं भी तो कितनी थीं! भोजन बाहर के एक वैष्णव भोजनालय में कर लेता था और इसके अलावा उसे कोई व्यसन था नहीं। कमरे में कुछ इनी-गिनी पुस्तकें रहती थीं और वह यदा-कदा इन्हीं से जूझता रहता था और इसी के लिए उसे एक ठौर की जरूरत थी।

उसने डाक्टर साहब की कोठी छोड़ देने का पक्का निश्चय कर लिया पर बिना डाक्टर साहब की आज्ञा के यह संभव भी नहीं था। उसने एक-दो बार दबी जबान से चाय पर इसकी चर्चा भी चलाई पर डाक्टर साहब ने कोई ध्यान नहीं दिया। इसी बीच एक और घटना घट गई।

उस दिन डाक्टर साहब कलकत्ता यूनिवर्सिटी गये हुए थे। आनन्द को हल्का-सा बुखार चढ़ आया था पर उसने घर में किसी को भी कहा नहीं। सिर में जोरों का दर्द था, एक-दो बार 'एस्प्रो' भी ली, पर शायद कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। दर्द ज्यों का त्यों रहा।

वह दोपहर को ही पुस्तकालय से लौट आया था और चुपचाप अपने कमरे में आकर पड़ गया था। बाहर का दरवाजा उसने बन्द कर दिया था।

आंखें बंद किये वह काफी देर तक पड़ा रहा, पर तभी एक खटके से

उसकी आँख खुल गई। उसने आँखें खोलकर देखा—मिसेज भारद्वाज दबे पाँव कमरे के अन्दर आ रही हैं।

एक बार तो जी चाहा कि फटकार कर उसे कमरे से बाहर निकाल दे पर फिर वह चुप रह गया। गुरु की पत्नी को कुछ भी कहना नैतिक नियमों के सर्वथा विपरीत था और फिर उसकी ही कोठी में फटकारना कहाँ तक न्याय-संगत था, इसलिये वह चुप ही रहा, पर उसका आदर भी उसके दिल में अब रत्ती मात्र भी रहा नहीं था। नमस्कार करना तो दूर, वह आमने-सामने से भी कतराता था। वह चुपचाप आँखें बंद किये पड़ा रहा।

मिसेज भारद्वाज धीरे-धीरे उसके पलंग के पास आई, और कुछ क्षणों तक चुपचाप खड़ी रही। न हिली न डुली, एकटक से सोये हुए आनन्द को देखती रही, और फिर एकाएक झुककर उसने आनन्द का हल्के-से चुम्बन ले लिया।

आनन्द एकदम से सकपका गया और हड़बड़ाकर आँखें खोल दीं, सामने ही मिसेज भारद्वाज खड़ी थीं। आँखें लाल अँगारा सी हो रही थीं; सारा शरीर जैसे फुँक रहा था।

आनन्द पलंग पर उठ बैठा, उसके रोम-रोम में आग लग चुकी थी।

मिसेज भारद्वाज जरा-सी लड़खड़ाई, शायद पिये हुये थीं। जरा जोर से बोली, 'इसलिये बुलाया था मुझे?'

इस अप्रत्याशित प्रश्न से आनन्द हक्का-बक्का रह गया, वह कुछ कहे, इससे पहले ही मिसेज भारद्वाज की तीखी आवाज सुनाई दी, 'शर्म नहीं आती ऐसी हरकत करते हुये?'

आनन्द एकदम से पलंग पर से उठ खड़ा हुआ, उसने आँख उठाकर देखा, द्वार पर मिसरानी और गोपाल नौकर खड़े-खड़े मुस्करा रहे थे।

'मैंने तो तुझे बच्चे के समान समझा और तू मुझसे ही नहीं चूका, बता, किसलिये मुझे यहाँ बुलाया था?'

'मैं···मैंने···' आनन्द हकला-सा गया।

'हरामखोर ! बदमाश !! मुझसे ही इश्क भिड़ाते या ऐसा गंदा प्रस्ताव रखते तेरी जबान जल न गई ? क्या मुझे ऐसे-वैसे खानदान की समझ लिया है ! दूसरा कोई होता तो नौकरों से खाल उधड़वा लेती। तूने समझा, डाक्टर साहब तो घर पर नहीं हैं और···' कहते-कहते उसकी आँखें निकली पड़ रही थीं।

'पर मैं···'

'अब सफाई और किसीको देना, मैं तेरे झांसे में नहीं आने की। यहाँ डाक्टर साहब नहीं हैं जो तेरी हरकतों को नजरअन्दाज कर दें। आने दे कलकत्ता से डाक्टर साहब को वापस···यह गोपाल और मिसरानी रहे गवाहीदार—' और कहती-कहती दनदनाती हुई कमरे से बाहर निकल गई। गोपाल और मिसरानी भी उसके पीछे-पीछे हट गये थे।

आनन्द को यह त्रिया-चरित्र कुछ समझ में नहीं आ रहा था। यह तो उसने अनुमान लगा लिया कि उसने डाक्टर साहब को आँसुओं की भाषा में [illegible] कुछ कहा था, उसका बदला इसने आज इस प्रकार से लिया है। पर [illegible] इतनी भी आगे बढ़ सकती है इसका अनुमान आनन्द को नहीं था।

वह हक्का-बक्का जड़वत् वहीं खड़ा रह गया जैसे पत्थर की गूँगी मूर्ति बन गया हो। अब···? डाक्टर साहब के आते ही यह रो-रोकर कहानी सुनायेगी। गोपाल और मिसरानी को गवाह के तौर हाजिर करेगी और तब ? तब डाक्टर साहब क्या सोचेंगे ? मैं अपना मुँह डाक्टर साहब को कैसे दिखा सकूँगा ? क्या डाक्टर साहब मुझ पर विश्वास रखेंगे ; स्त्री के आँसुओं से वे बिलकुल नहीं पसीजेंगे ? क्या उनके दिल में मेरे प्रति सन्देह की एक भी लकीर नहीं खिचेगी ? नहीं···नहीं··· वह चिल्ला उठा, अपने सिर के बाल नोच डाले और कटे वृक्ष की तरह धड़ाम से पलंग पर गिर पड़ा। आँखों से आंसुओं की धार बह निकली। उसकी कनपटियाँ जल रही थीं, दिल हाहाकार कर रहा था और आँखों के आगे अन्धेरा-सा छाता जा रहा था।

काफी समय तक वह यों ही बदहवास-सा उसी पलंग पर पड़ा रहा।

शाम होते न होते उसने कपूर साहब की कोठी के नीचे का एक कमरा किराये पर ले लिया और किताबें तथा बिस्तर समेटकर वहीं ले गया। कपूर साहब उसके तर्कों से प्रसन्न और सौम्य स्वभाव से प्रभावित थे, अतः तुरन्त प्रस्ताव करते ही उसे कमरा मिल गया। पर वह अपने दिमाग की घुमड़न कैसे मिटाये ? दिल की चीत्कार किसे सुनाये क्या करे वह ? डाक्टर साहब पूछेंगे तब···? तब···?? तब···???

धीरे-धीरे दिन बीतते गये। डाक्टर साहब आये, एक-दो रोज तो वह यूनीवर्सिटी भी नहीं गया, पर एक दिन पकड़ा ही गया। डाक्टर साहब ने अपने कमरे में सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए पूछा, 'कपूर साहब की कोठी में कमरा किराये पर लिया है ?'

आनन्द नीची नजर किये बैठा रहा। उसके हृदय में भयंकर अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ था। क्या मिसेज भारद्वाज ने झूठी कहानी गढ़कर डाक्टर साहब को सुना दी है या कुछ भी नहीं कहा है, वह एकाएक कुछ भी निर्णय नहीं कर सका। डाक्टर साहब के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा, 'जी···

'क्यों ?' बिलकुल सरल रूप से प्रश्न पूछा गया था।

आनन्द चुपचाप बैठा रहा ! क्या जवाब दे ? कुछ बोला न··· !

'तुम्हारे रहने से मुझे काफी मदद थी आनन्द ! पर तुम समझे नहीं और भाग छूटे,' भावाकुल से धीरे-धीरे डाक्टर भारद्वाज बोले, 'खैर ! जैसी तुम्हारी इच्छा !'

आनन्द को ऐसा लगा कि यदि इस समय धरती फट जाय, तो वह उसमें समा जाय। डाक्टर साहब का कथन ही इतना सारगर्भित और गहराई लिये हुये था कि एकाएक कुछ भी उत्तर देते नहीं बनता था। तो क्या डाक्टर साहब को मिसेज भारद्वाज के करेक्टर का पूरा पता है ? या यों ही प्रसंगवश कह दिया है, क्या विचार हैं डाक्टर साहब के···' आनन्द कुछ अनुमान न लगा सका।

'तो क्या मैं इतना गया गुजरा हूं कि तुम्हें कपूर को कोठी की शरण लेनी पड़ी ?' बिल्कुल बच्चों के से भाव में डाक्टर साहब ने हँसते हुये कहा।

बात आनन्द को छू गई, गला भर आया और आँखों से झर-झर आँसू बह चले। आनन्द उठकर डाक्टर साहब के चरणों में गिर पड़ा, गला भर आया।

डाक्टर साहब ने स्नेह से आनन्द के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'मैं जानता हूँ, तुझे मेरे घर का वातावरण रास न आया। पर पगले, यों भागने से काम थोड़े ही होता है ! परिस्थितियाँ तो संघर्ष हेतु बनी हैं, फिर इससे घबराना क्या और भागना क्या ?' डाक्टर साहब का स्नेहिल हाथ फिर रहा था।

घण्टी बज गई। डाक्टर साहब का पीरियड था वे उठ खड़े हुए। बोले, 'कोई बात नहीं आनन्द ! दुनिया रंगबिरंगी है, कई तरह के रंग हैं इसमें, यथाशक्ति सभी को पहचानने की कोशिश करो...' और कहते-कहते डाक्टर भारद्वाज मोटा पर्दा हटा कमरे से बाहर निकल गये।

और आनन्द उसी कमरे में मुंह बाये काफी समय तक डा॰ साहब के कथन पर विचार करता ही रहा था।

धीरे-धीरे आनन्द ने अपने आपको व्यवस्थित किया, उसने फिर 'रिसर्च' की तरफ ध्यान दिया। दिन-भर वह किताबों और नोट्स में खो-सा गया :

वह सुबह पाँच बजे ही उठ जाता और घण्टा डेढ़ घण्टा यमुना किनारे प्रातः भ्रमणार्थ घूमने निकल जाता। करीब साढ़े सात के आस-पास वह घर लौटता स्नान पूजादि से निवृत्त हो हल्का नाश्ता कर पुस्तकालय चला जाता। भोजन बाहर ही करता था। दिन-भर उसका पुस्तकालय और यूनीवर्सिटी में ही बीतता। शाम को वह किसी पार्क में चला जाता, या कहीं मिलने जुलने चला जाता। रात भी वह काफी समय तक पढ़ता रहता, यही उसकी दिनचर्या बन गई थी।

अपने-आपको वह भरसक व्यस्त रखने की चेष्टा रखता पर फिर भी जब कभी भी उसे जरा-सा भी अवकाश मिलता, तो उसके दिमाग पर मिसेज भारद्वाज का व्यवहार और डाक्टर साहब के कथन उभर जाते और वह घण्टों खोया रहता।

आखिर हारकर सिर झटककर वह इन विचारों को परे धकेलता।

आज वह जरा जल्दी उठ गया था। प्रातः साढ़े चार पौने पाँच का समय था। अपने कमरे से निकल वह प्रातः भ्रमणार्थ यमुना की ओर बढ़ गया। प्रातः कालीन मंद-मंद हवा चल रही थी पर उसका दिमाग डाक्टर साहब के उस दिन के कहे हुए वाक्यों के इर्द-गिर्द ही चक्कर काट रहा था। क्या डाक्टर साहब को पत्नी के चरित्र का पता है ? यदि हाँ तो फिर वे इतने अधिक संयत कैसे हैं ? फिर उन्होंने कई रंगों से रंगीन दुनिया का उदाहरण उसे क्यों दिया था ? यह वाक्य कहने का क्या तात्पर्य था ? और फिर मैं उनकी कोठी में रहकर किस प्रकार से उन्हें सहायता पहुँचा रहा था ? क्या डाक्टर साहब को यह भरोसा था कि मेरे रहते कोठी में गलत व्यक्तियों के प्रवेश पर रोक रहेगी, या यों ही उन्होंने कह दिया था ? आनन्द जितना ही ज्यादा सोचता वह उतना ही ज्यादा उलझता जाता था।

इस समय वह घाट की ओर यमुना के किनारे-किनारे चल रहा था। बहते हुए पानी की कल-कल ध्वनि उसके हृदय में आनन्द भर रही थी और शीतल पवन उसे प्रफुल्लित कर रहा था। पूर्णिमा का चाँद अपने पूर्णाकार में आकाश में विहँस रहा था, और उसकी शीतल चाँदनी रात को भी दिन के समान उज्ज्वल बना रही थी।

तभी वह चौंका। उसकी नजरें सामने गईं, उसने देखा कि एक छाया-मूर्ति जल्दी-जल्दी घाट की दीवार पर चढ़ रही है, सीढ़ियाँ न होने से वह उस पर चढ़ने का असफल प्रयत्न कर रही है।

वह ठिठक गया। इस समय यहाँ कौन हो सकता है ? जिस प्रकार से यह दीवार पर चढ़ने का प्रयत्न कर रहा है, उससे स्पष्ट है कि यह कोई

स्त्री होनी चाहिए पर इस समय और अकेली स्त्री इस दीवार पर चढ़कर क्या कर रही है ? अवश्य कुछ न कुछ गड़बड़ है, इसके विचार कुछ अच्छे प्रतीत नहीं होते, शायद यह आत्महत्या···और आत्महत्या शब्द सोचते ही वह काँप-सा गया।

पर तभी वह छायामूर्ति दीवार पर चढ़ गई। दीवार करीब चौदह-पन्द्रह फीट ऊँची थी और ऊपर से फीट भर चौड़ी थी। दिन को कुछ शौकीन तैराक इस पर चढ़कर पानी में गोते लगाया करते हैं और उन्होंने दीवार में जगह-जगह गड्ढे बना लिये हैं और कहीं-कहीं पर कीलें खोंप दी हैं, जिस पर वे पैर रख कर ऊपर चढ़ते हैं।

आनन्द के देखते-देखते वह स्त्री उस दीवार पर चढ़ गई। आनन्द ने एक मिनट सोचा और फिर वह फुर्ती से उस दीवार के पास पहुँच गया और आसानी से ऊपर चढ़ गया। उसने देखा कि छायामूर्ति धीरे-धीरे उससे पाँच-सात गज आगे चल रही है।

छायामूर्ति दीवार के बीचों-बीच जाकर ठिठकी, जहाँ से छलाँग लगाने पर यमुना में सबसे गहरा पानी मिलता था। कुछ समय वह चुपचाप यमुना के श्याम जल को देखती रही, फिर [illegible] आकाश की ओर हाथ उठाये और छलांग लगाने ही वाली थी कि लपक कर आनन्द ने हाथ पकड़ लिया।

'छोड़ दो ! छोड़ दो मुझे !!' वह जल में कूदने के लिए कसमसाई।

आनंद की पकड़ मजबूत थी। उसका मुँह दूसरी ओर था।

एक बार फिर उसने हाथ छुड़ाकर कूदना चाहा पर अपने प्रयत्न में असफल रही। उसका मुँह आँसुओं से भरा हुआ था, 'मुझे मत बचाओ ! कौन हो तुम ! छोड़ दो मुझे !' और कहते-कहते उसने चेहरा आनन्द की ओर घुमाया।

आनन्द एकदम से चौंक पड़ा। वह मीना थी।

एक क्षण तो वह सकते की हालत में खड़ा रहा, फिर बोला, 'मीना,

तुम ? क्या कर रही थी यहाँ ?'

'मुझे मरने दो आनन्द, मत बचाओ मुझे। दुनिया मेरा जीना बरदाश्त नहीं कर रही है।'—मीना फफक रही थी।

'पर मीना ! तुम में इतनी कायरता कहाँ से आ गई ! तुम जानती हो कि तुम क्या करने जा रही थीं ?'

'आत्महत्या ! और मेरे लिये यही रास्ता बाकी बचा है आनन्द !'

'पर यह मानव की सबसे भारी कमजोरी है मीना ! जो दब्बू और कायर होते हैं, वे इस प्रकार का रास्ता चुनते हैं। तुम तो···'

'मैं टूट गई हूँ। परास्त हो गई हूँ दुनिया से। ऐसा लग रहा है जैसे सारा अन्धेरा मेरे ही बाँट पड़ा है। अब मुझमें शक्ति नहीं है कि मैं जूझ सकूँ, दुनिया का सामना कर सकूँ।'

आनन्द मीना का हाथ पकड़े दीवार पर घसीटता-सा नीचे उतरने की जगह की ओर लेता गया। बोला, 'पर मरने से भी तो इसका हल नहीं निकल सकता। आज तुम कूद कर मर जातीं सुबह तक तुम्हारी [illegible] और फूली लाश कहीं अट[illegible] पड़ी मिलती, जिस पर गिद्ध और कौए मंडरा रहे होते, सोचो क्या ह[illegible]त होती तुम्हारी इस देह की···'

अपनी घिनौनी और भयंकर लाश की दशा सुन मीना काँप-सी उठी। बोली, 'मरने के बाद क्या होता है, यह कौन देखने आता है···?'

'पर किसकी मृत्यु···? उसकी···जो प्रबल तर्कशास्त्री हो, अपने सिद्धान्तों और मान्यताओं के आगे सभी को तुच्छ समझने वाली···रूप और यौवन में गरूर रखने वाली और सारी दुनिया को एक ठोकर में उछालने वाली···सोचो मीना···क्या ऐसे व्यक्तित्व की यह स्थिति सहनीय है ?'

मीना की आँखों से आँसू बहते रहे, बोली, 'सब कुछ समाप्त हो गया आनन्द ! एक भ्रम था, मृग-मरीचिका थी, जिसमें मैं भटक रही थी और रंगीन स्वप्नों के ताने-बाने में उलझती हुई मस्त थी, लोग मेरी प्रशंसा करते थे और मैं दुनिया पर व्यंग्य से मुस्कराती रहती थी, पर···पर एक

ही झटके से यह ताना-बाना टूट गया और मेरे सामने दुनिया असलीस्वरूप में आ गई। नाते-रिश्ते वालों का वास्तिविक मुखौटा मुझे दीख गया। सब कुछ ढोंग···सब···सब···

दीवार से नीचे उतर कर आनन्द और मीना यमुना की रेती पर आ गये। पूर्व में ऊषा की लाली और अधिक खुल गई थी, लोगों की चहल-पहल शुरू हो गई थी।

सिसकती-सी मीना को यमुना के किनारे बजरे पर बिठाकर उसके सामने बैठता हुआ आनन्द बोला, 'ऐसा लग रहा है, तुम्हें कुछ गंभीर तथ्यों से जूझना पड़ा है, जिससे कि तुम्हें आत्महत्या जैसा पग उठाने को मजबूर होना पड़ा। क्या जीवन से इस कदर ऊब गई थी कि···'

आनन्द की सान्त्वना पा मीना की आँखों से रुके हए आँसू बह निकले। जब कुछ स्वस्थ हुई तो उसने अपने साथ बीती सारी घटना ज्यों की त्यों आनन्द को सुना दी, कुछ भी छिपाया नहीं। महेन्द्र का धोखा, नारंग की कपट-लीला, रेखा की [illegible]फाई और पिता का गुस्सा सभी कुछ राई-रत्ती सुना दिया।

आनन्द प्रभावित हुए बिना न रह सका। सत्य हमेशा प्रभावित करता है। जीवन में पहली बार उसे मीना पर मोह आया। उसके दिमाग में तुरन्त मिसेज भारद्वाज का व्यवहार घूम गया। तो क्या आज की मध्यर्गीय और उच्च पीढ़ी इस कदर टूट रही है? क्या इनमें नैतिकता का लवलेश ही नहीं रहा है? क्या पश्चिम के अन्धानुकरण में हम इतने वह गये हैं कि अपने वास्तविक मूल्यों से ही हम अपरिचित हो रहे हैं।' और सोचते-सोचते उसने मीना पर दृष्टि डाली। —कितनी भोली है यह, दुनियाँ की रंगीनियों में खोना चाहती थी, पर आस-पास की चकाचौंध से ही इस प्रकार पिट गई कि यमुना में शरण लेने को बाध्य हो गई। मीना की पूरी बात सुनकर बोला—क्या तुम्हें भरोसा है कि तुम्हें गर्भ है?

'डाक्टर ने ऐसा ही कहा है?'

'हो सकता है वह झूठ बोला हो।'

'पर मुझे डेढ़ मास से रजोधर्म नहीं हुआ है।'—और कहती-कहती स्वयं ही सकुचा गई।

आनन्द ने कोई उत्तर नहीं दिया, सोचता रहा।

'मुझे बचाकर उचित नहीं किया आनन्द बाबू! मुझे तो तुमने शान्ति से मरने भी नहीं दिया।'

'पर क्यों? मरण क्यों इतना प्रिय हो रहा है?'—आनन्द की आवाज कुछ ऊंची उठ गई।

'आज-कल में जब मेरी चर्चा दिल्ली में फैलेगी, तो लोग क्या कहेंगे? क्या नारंग चुपचाप बैठा रहेगा, वह मेरे फोटुओं का गलत उपयोग नहीं करेगा? मुझे बताओ आनन्द! कौन मुझे स्वीकार करेगा, इतना सब कुछ सुनने के बाद भी कौन मुझसे शादी के लिये 'हां' भरेगा···'

आनन्द एक क्षण रुका, उसके सामने आँसू की लकीरें बनती और मिटती जा रही थीं। उसी जोश में बोला, 'मैं! इतना सब कुछ सुनने के बाद भी मैं तुमसे शादी के लिये प्रस्तुत हूँ, पर आत्महत्या तो कोई इलाज नहीं।'

मीना चकित रह गई आनन्द के कथन पर! उसे विश्वास नहीं हुआ कि उसके सामने वही आनन्द शादी का प्रस्ताव रख रहा है, जो आज तक नारी जाति और शादी से भागता रहा है। क्या उसने जो कुछ सुना है, सही है! वह हक्की-बक्की रह गई, मुंह से निकला··· 'ओह! पर आनन्द तुम्हारा समाज···'

आनन्द ने जो कुछ कह दिया था, वह जोश में एकदम से कह गया था पर जो कुछ कह दिया गया, उससे विमुख होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। बोला, 'मैं आज तक समाज को समझता आया हूँ, अब संघर्ष भी करूँगा। मानवता की रक्षा के लिए मैं सब कुछ कर गुजरने को तैयार हूँ पर मानव को नष्ट होने मैं नहीं देख सकता···'

मीना ने एक क्षण समझा और दूसरे ही क्षण उसका सिर आनन्द की छाती से जा लगा। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। पर ये आँसू दुःख

के नहीं, प्रसन्नता के थे।

आनन्द निश्चल, निर्द्वन्द्व बैठा रहा।

लोगों का आवागमन बढ़ गया था। आनन्द उठ खड़ा हुआ, उसके साथ ही साथ मीना भी उठ खड़ी हुई। घाट से बाहर आकर आनन्द ने संकेत से एक टैक्सी रोकी और पूछा, 'किधर को जाने का विचार है?'

मीना चकित रह गई इस प्रश्न पर। टुकुर-टुकुर आनन्द का मुँह ताकने लगी।

'मेरे पूछने का तात्पर्य है कि क्या राय साहब के घर जाओगी? या···'

मीना दो मिनट खड़ी रही, फिर बोली, 'पिताजी का घर तो मैं छोड़ चुकी हूँ, वहाँ जाने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।'

आनन्द टैक्सी में बैठ गया और पास ही मीना भी आकर बैठ गई। आनन्द ने अपने घर का पता बता दिया।

मीना ने आश्चर्य से आनन्द की ओर देखा बोली, 'तो क्या डाक्टर साहब की कोठी छोड़ दी है?'

'हाँ मीना! और अब मैं कपूर साहब की कोठी में ही एक मरा किराये पर लेकर उसमें रह रहा हूँ। डाक्टर साहब की कोठी स्वेच्छा से मैंने छोड़ी है!' और आनन्द एकबारगी चुप रह गया।

मीना ने भी कोई प्रश्न नहीं किया। टैक्सी गन्तव्य स्थल की ओर दौड़ती रही।

कपूर साहब की कोठी के सामने टैक्सी रुकवा, उसमें से पहले मीना को बाहर निकल जाने को कहा और फिर खुद भी बाहर आ टैक्सी को किराया दे उसे विदा कर दिया।

दोनों कमरे में आ गये। आनन्द के सामने अब एक और चिन्ता आकर खड़ी हो गई कि मीना को काल के जबड़ों से तो छुड़ा लिया पर समाज को क्या जवाब दिया जाय? इसके साथ ही साथ यह भी विचार उठ रहा था कि क्या इस घटना की सूचना राय साहब को दे दी जाय

या नहीं। सुबह हो गई है, और जब राय साहब मीना के कमरे में जाकर देखेंगे कि मीना भाग गई है, तो वे क्या-क्या नहीं करेंगे? ऐसी स्थिति में मुझ पर सन्देह कर पहले से सांठ-गांठ का आरोप लगाकर लड़की भगाने का दोष भी मेरे सिर पर थोप सकते हैं?

उसने अपनी शंका स्पष्ट रूप से मीना के सामने रख दी। पर मीना निश्चल थी। कुछ घंटे पहले की कायर मीना न मालूम कहीं लुप्त हो गई थी और न वह अश्रुपूरित नयनों वाली मीना थी, बल्कि इस समय की मीना जो आनन्द देख रहा था, वह दृढ़ निश्चयी, सरल और वही पहले वाली मीना थी, पर एक बात का अन्तर स्पष्ट दिखाई दे रहा था। पहले की मीना में अल्हड़ता और चंचलता थी, पर अब की इस समय की मीना के चेहरे पर गंभीरता और शांति थी।

आनंद का प्रस्ताव सुनकर भी मीना चौंकी नहीं। बोली—पिताजी और मां से कोई लेना-देना नहीं है। पिछली सर्दियों से मैं इक्कीस साल की हो गई हूं। और पूर्णतया बालिग हूँ। मुझे स्वयं पर निर्णय लेने का पूरा हक है और उस हक के अ पर मैंने जो भी निर्णय लिया है, वह उचित, न्यायसंगत और समय कूल है।'

मीना के दृढ़ निश्चय से आनन्द प्रभावित हुआ, पर फिर भी बोला, 'यदि राय साहब ने यहाँ आकर हो-हल्ला मचाया तो···क्या उन्हें सूचना देना भी ठीक नहीं।'

'नहीं, तुम सूचना दे दो कि मैं यहाँ हूँ और स्वेच्छा से यहाँ आई हूँ।' मीना उसी दृढ़ स्वर में बोली।

आनन्द स्नान वगैरह कर नित्यक्रिया से निपट यूनीवर्सिटी चला गया और तुरन्त डाक्टर भारद्वाज के कमरे में उनसे मिला। आज सुबह के बाद जो भी घटना और जिस प्रकार से घटना घटित हुई, उसे सही-सही वर्णन कर दिया, कुछ भी गोपनीय नहीं रखा।

पूरी बात सुनकर डाक्टर साहब बोले, 'सबसे पहले तो तुम इसकी सूचना फोन से राय को दे दो।'

आनन्द ने टेबल पर पड़े फोन को उठा लिया। राय साहब घर पर ही मिले। स्वर उनका परेशान और झल्लाया हुआ था, पर आनन्द की सूचना से ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उन पर से कोई बड़ा-सा बोझ हट गया हो। उनका स्वर नम्र और सरल हो गया था।

घटना पर राय साहब ने न तो कोई टिप्पणी की और न किसी प्रकार का उत्तर ही दिया। फोन रख दिया गया।

'एक बात है आनन्द! तुमने अभी मीना के संबन्ध में जो बात बताई वह मुझे रुचती नहीं है। हाँ! मीना चंचल है, अल्हड़ है, पर वह गलत कदम नहीं उठा सकती, इसका मुझे भरोसा है, और मुझे तो डाक्टरों पर भी भरोसा नहीं रहा है। मेरी तो सलाह है कि क्यों न किसी प्रसिद्ध वैद्य को ले जाकर मीना को दिखा दें, जिससे बात सत्या-सत्य सही पता लग सके।'

आनन्द के लिये तो डाक्टर साहब की राय देव वाक्य के समान थी। डाक्टर भारद्वाज और आनन्द दोनों उठ खड़े हुए और कार में जा बैठे।

दिल्ली के प्रसिद्ध वैद्य त्रिलोक चन्द शास्त्री डाक्टर स... मित्रों में से थे। डाक्टर भारद्वाज ने उन्हें साथ ले लिया और आनन्द के कमरे पर चले गये।

त्रिलोक चंद शास्त्री पचपन-साठ साल के अनुभवी वैद्य थे। दिल्ली में उनका सम्मान था और बड़े-बड़े डाक्टर उनका लोहा मानते थे। उन्होंने ध्यान से मीना का नीरीक्षण किया और उनके चेहरे पर सन्तोष की रेखाएं उभर आईं।

बोले, 'मीना को किसी प्रकार का गर्भ नहीं है। वायु के प्रकोप से रजस्वला धर्म रुक गया है और गर्भ का सन्देह होने लगा है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जो सन्देह आप लोगों को है वह निर्मूल है!'

दोनों ने संतोष की साँस ली। मीना को वहीं छोड़ वैद्य, डाक्टर भारद्वाज और आनन्द तीनों राय साहब की कोठी पर पहुँचे।

राय साहब अंग्रेजी की कोई पुस्तक पढ़ रहे थे, इन्हें आया देख अभ्यर्थना के लिये उठ खड़े हुए।

कुर्सियों पर बैठ आनन्द ने पूरा किस्सा सुना दिया, जो सुबह से अब तक घटित हुआ था, उसके बाद डाक्टर भारद्वाज ने मीना का परीक्षण और वैद्यजी की राय सुना दी। वैद्यजी ने अपने कथन की पुष्टि की और कहा कि मैंने जो कुछ निर्णय दिया है वह गलत नहीं हो सकता, इसके पीछे चालीस साल का अनुभव है।

राय साहब भी वैद्य जी से पूर्णतया परिचित थे और उनकी चिकित्सा तथा रोग-निर्णय के कायल थे। ऐसा लगा, जैसे साहब के सिर पर से भारी बोझ हट गया हो। उन्हें आनन्द के रूप में देवराय दिखाई दिया, जिसने उनके उजड़ते हुए घर को बचाया था।

इसी समय डाक्टर साहब ने आनन्द और मीना के विवाह की और उसने जो मीना को वायदा दिया था, वह भी सुना दिया। राय साहब तो तैयार ही थे। आनन्द जैसा जमाई पाकर वे फूले न समाये।

उसी समय वे सभी कमरे पर गये। पिताजी ... मीना उनके चरणों पर गिर पड़ी और फफक पड़ी। राय साहब ने उसे उठाकर छाती से लगा दिया।

समझा-बुझाकर राय साहब मीना को अपने घर ले गये।

हफ्ते भर के बाद शुभ दिन को आनन्द और मीना का विवाह हो गया। शहर के करीब-करीब सभी गण्यमान्य सज्जन आमन्त्रित थे। खर्च करने में कोई कसर न रखी। दूल्हे के पिता बने डाक्टर भारद्वाज, विवाह के उपलक्ष्य में उन्होंने भी एक शानदार पार्टी दी।

दिल्लीवासियों में से जिसने भी उस विवाह को देखा या सुना, सराहा ही। इतनी धूमधाम से उन्होंने शादी इससे पूर्व देखी ही नहीं थी।

विवाह-मंडप से जब दोनों नीचे उतरे तो दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न थे। जब भीड़ खान-पान के कार्यों में व्यस्त हो गई तो मीना ने मुस्कराते हुए कहा, 'तुम तो शादी से बिदकते थे न; कहते थे न कि औरत

तो जहर की मीठी पुड़िया है और विवाह मनुष्य के पैरों में पड़ने वाली बेड़ी। फिर अब ?'

'पर तुम भी तो विवाह को ढकोसला समझ उम्र-भर स्वच्छन्द विचरण के स्वप्न देखती थीं न !' आनन्द ने विनोद में उत्तर दिया।

'तभी तो मैंने कहा था न कि अपने दोनों का जीवन स्वच्छन्द भाव से बहने दो, कोई न कोई हल निकल ही आयेगा।'

'और उसका हल कितने सुलझे हुए रूप में सामने आया !' आनन्द के इस कथन पर दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

आमंत्रित सज्जनों के कहकहों में इन दोनों युगलप्रेमियों के कहकहे भी मिल गये।